Success Pana Chahte Hai . Com

शासन प्रणालियों के विभिन्न प्रकार
Different Types of Government Systems

राजनीतिक व्यवस्था दुनिया के हर समाज में हमेशा से रही है, किन्तु सरकारों या शासन प्रणालियों की संरचना हमेशा एक सी नहीं रही है। शासन प्रणालियों के विभिन्न रूप देखे जाते हैं, जो वर्तमान में भी मौजूद है। इसे निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है –

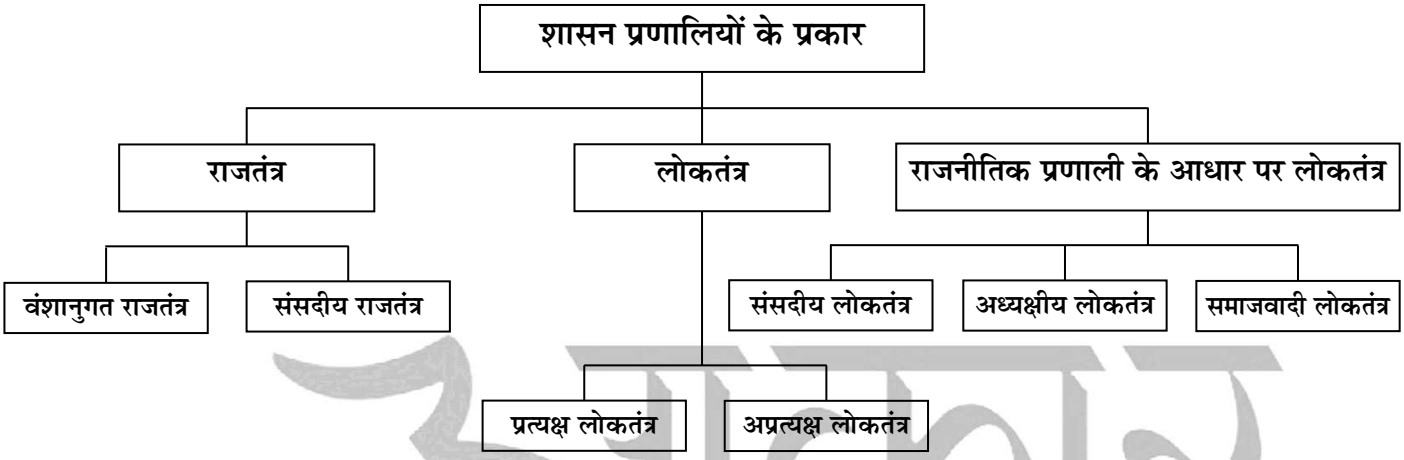

- **राजतंत्र**

यह प्राचीन शासन प्रणाली थी। वर्तमान में कुछ सुधारों के साथ यह अभी-भी कई देशों में लागू है। इसके 2 प्रकार हैं –

1) **वंशानुगत राजतंत्र** – जब शासन की सम्पूर्ण शक्तियां वंशानुगत रूप से एक ही व्यक्ति के हाथ में केन्द्रित होती है, तो ऐसे शासन को राजतंत्र या तानाशाही कहा जाता है। उदाहरणार्थ – सऊदी अरब, ब्रुनेई आदि।

2) **संसदीय राजतंत्र** – संसदीय राजतंत्रात्मक शासन प्रणाली में राज्याध्यक्ष का महत्व सिर्फ प्रतिकात्मक होता है। वास्तव में उसका शासन पर कोई प्रभाव नहीं होता। उदाहरणार्थ – ब्रिटेन में क्राउन का शासन।

- **लोकतंत्र**

शासन की वह प्रणाली, जिसमें सम्पूर्ण शक्ति जनता के हाथों में केन्द्रित होती है, उसे लोकतंत्र/जनतंत्र/प्रजातंत्र कहा जाता है। समकालीन विश्व में अधिकांश देशों की राजव्यवस्था लोकतंत्र के ढांचे पर ही कार्य करती है। जनता और शासन के सम्पर्क के आधार पर लोकतंत्र 2 प्रकार का होता है –

1) **प्रत्यक्ष लोकतंत्र** – इस शासन प्रणाली में जनता सीधे-सीधे शासन प्रणाली में भाग लेती है। प्राचीन यूनान के नगर राज्यो में ऐसी व्यवस्था दिखाई पड़ती थी। इनमें किसी भी महत्वपूर्ण मुद्दे के लिए सभी स्वतंत्र नागरिकों की बैठक होती थी और उसमें बहुमत की राय के आधार पर निर्णय किया जाता था। वर्तमान उदाहरणार्थ – स्विट्जरलैण्ड।

2) **अप्रत्यक्ष/प्रतिनिधि लोकतंत्र** – इस शासन प्रणाली में देश के सम्पूर्ण भू-भाग को जनसंख्या की दृष्टि में कई हिस्सों में विभाजित किया जाता है और प्रत्येक हिस्से की जनता अपने एक प्रतिनिधि को चुनकर भेजती है। इस प्रकार जनता द्वारा चुने गए सभी प्रतिनिधि मिलकर शासन व्यवस्था का संचालन करते हैं। ऐसी व्यवस्था उन देशों में लागू की जाती है, जहां की जनसंख्या इतनी ज्यादा है कि वहां के सभी नागरिक एकसाथ बैठक कर निर्णय ले सके।

भारत में वर्तमान में प्रत्यक्ष लोकतंत्र की व्यवस्थाएं लागू नहीं है, किन्तु पिछले कुछ वर्षों में चुनाव सुधारों के पक्ष में चलने वाले आन्दोलनों ने ऐसी कुछ मांगें रखी हैं। हाल ही में अन्ना हजारे द्वारा चलाए गए 'जनलोकपाल आन्दोलन' के माध्यम से भी ऐसी कुछ मांगें प्रस्तुत की गई थीं। वापस बुलाने का अधिकार, खारिज करने का अधिकार, सूचना का अधिकार, पंचायतों को अधिक शक्ति देने का प्रस्ताव, समाज द्वारा नए कानून की पहल करने की कोशिश जैसे कई मुद्दे इसमें शामिल थे।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

राजनीतिक प्रणाली के आधार पर लोकतंत्र

कार्यपालिक और विधायिका के संबंधों की दृष्टि से लोकतंत्र मुख्यत: 2 प्रकार का होता है – संसदीय लोकतंत्र एवं अध्यक्षीय लोकतंत्र। आधुनिक परिसंकल्पना में इस लोकतंत्र में समाजवादी लोकतंत्र भी शामिल किया जा सकता है।

1) **संसदीय लोकतंत्र** – इस प्रणाली पर आधारित लोकतंत्र की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं –

- इसमें कार्यपालिका विधायिका से स्वतंत्र नहीं होता, बल्कि विधायिका में जिस दल को आधे से अधिक सदस्यों का समर्थन हासिल होता है, उसी दल का एक प्रतिनिधि समूह मंत्रिपरिषद् के रूप में कार्यपालिका बन जाता है। भारतीय राजव्यवस्था भी इसी प्रणाली पर आधारित है।
- संसदीय प्रणाली में राज्याध्यक्ष का महत्व सिर्फ प्रतीकात्मक या नाममात्र का होता है, उसका वास्तविक रूप से शासन पर कोई प्रभाव नहीं होता। उदाहरणार्थ – ब्रिटेन के राजा या भारत के राष्ट्रपति भी भूमिका प्रतीकात्मक ही रहता है।
- संसदीय प्रणाली में विधायिका आमतौर पर 2 सदनों में विभाजित होता है, जबकि उच्च सदन का निर्वाचन आमतौर पर विभिन्न प्रांतों को प्रतिनिधित्व देने के लिए या फिर ऐसे गणमान्य नागरिकों तथा विद्वानों को सांसद बनाने के लिए किया जाता है, जो निर्वाचन की सामान्य प्रक्रिया में या तो रूचि नहीं लेते या फिर व्यवहारिक राजनीति में सहजता महसूस नहीं करते।
- संसदीय प्रणाली में विधानमण्डल का कार्यकाल निश्चित तो होता है, किन्तु राजनीतिक कार्यपालिका, अर्थात् – मंत्रिमण्डल को यह हक होता है कि यदि वह चाहे, तो राज्याध्यक्ष को विधानमण्डल भंग करने की सलाह देकर नए चुनाव आयोजित करवाए।

2) **अध्यक्षीय लोकतंत्र**

- इस शासन प्रणाली में राष्ट्रपति का चयन सीधे जनता द्वारा किया जाता है। राष्ट्रपति केवल प्रतीकात्मक या नाममात्र का राज्याध्यक्ष नहीं होता, वह वास्तविक राज्याध्यक्ष में होता है। इसका अर्थ यह है कि राज्य की ओर से सभी प्रमुख निर्णय वह स्वयं लेता है, वह किसी अन्य की सलाह के अनुसार निर्णय लेने को बाध्य नहीं होता।
- राष्ट्रपति, जो कि कार्यपालिका का प्रमुख होता है, वह विधानमण्डल से एकदम पृथक होता है, उसका अंग नहीं होता। इसलिए विधानमण्डल सामान्य स्थितियों में उसे हटा नहीं सकता। केवल विरलतम स्थितियों में विधानमण्डल महाभियोग के माध्यम से राष्ट्रपति को हटा सकता है, किन्तु यह प्रक्रिया मनमाने तौर पर नहीं हो सकती।
- राष्ट्रपति पर यह बाध्यता नहीं होती कि वह विधायिका के सदस्यों में से अपने मंत्रिमण्डल का चयन करे। वह किसी भी ऐसे व्यक्ति को मंत्री बना सकता है, जो उसकी दृष्टि में वह विभाग या मंत्रालय संभालने के लिए सर्वाधिक योग्य हो।
- चूंकि कार्यपालिका और विधायिका एक-दूसरे से पृथक होती है, इसलिए कार्यपालिका के प्रमुख, अर्थात् – राष्ट्रपति को संसदीय व्यवस्था की तरह यह शक्ति नहीं होती कि वह अपने विवेक के अनुसार विधानमण्डल को भंग कर सके।

भारतीय संविधान निर्माता इस प्रश्न को लेकर अत्यंत सजग थे कि भारत के लिए अध्यक्षीय प्रणाली बेहतर होगी या संसदीय प्रणाली काफी सोच-विचार के बाद उन्होंने संसदीय प्रणाली को चुना, जिसके 2 प्रमुख कारण थे। प्रथम, भारतीय जनता को ब्रिटिश शासन के तहत् संसदीय प्रणाली का पर्याप्त अनुभव हो चुका था तथा द्वितीय भारत में विद्यमान क्षेत्रीय, सामाजिक तथा धार्मिक वैविध्य को देखते हुए संसदीय प्रणाली ज्यादा बेहतर प्रतीत हो रही थी।

3) **समाजवादी लोकतंत्र** – शासन का वह भाग, जो भूतपूर्व सोवियत संघ में था और वर्तमान चीन में है। इस प्रणाली को समान्यत: 'समाजवादी दल की तानाशाही' के रूप में जाना जाता है, किन्तु इस देशों के साम्यवादी विचारक दावा करते हैं कि असली लोकतंत्र उन्हीं के पास है। वे इसे 'साम्यवादी लोकतंत्र' कहना पसंद करते हैं। उनका तर्क है कि लोकतंत्र की वास्तविक पहचान चुनाव प्रणाली आदि संस्थाओं व व्यवस्थाओं से नहीं होती, बल्कि इस बात से होती है कि शासन के केन्द्र में सचमुच आम आदमी है या नहीं। उदार लोकतंत्र कहने को लोकतंत्र है, किन्तु वस्तुत: वह धनतंत्र है, क्योंकि अत्यधिक महंगी चुनाव प्रक्रिया के कारण सिर्फ अमीर लोग ही चुनाव का खर्च उठाने में समर्थ होते हैं।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

वास्तविक लोकतंत्र के लिए चुनाव आदि प्रपंचों की जरूरत नहीं होती, बल्कि ऐसे शासन की जरूरत होती है, जो आम जनता के हितों के प्रति अत्यन्त प्रतिबद्ध हो। इसलिए साम्यवादी दल की तानाशाही दिखने में चाहे लोकतंत्र के विरुद्ध प्रतीत हो, भीतरी स्तर पर यही प्रणाली लोकतंत्र के मूल्यों का वहन करती है। ध्यातव्य है कि इस प्रणाली में एक ही दल होता है – साम्यवादी दल। शेष दलों के गठन पर प्रतिबंध होता है। यदि अन्य दल होते भी है, तो उनके अस्तित्व की शर्त होती है कि वे साम्यवादी दल के निर्देशन के अन्तर्गत कार्य करेंगे। चीन में ऐसी ही व्यवस्था है। सामान्यत: साम्यवादी लोकतंत्र में आयोजित होने वाले चुनावों में एक ही उम्मीदवार खड़ा होता है, इसलिए चुनाव का संबंध हार–जीत से नहीं, सिर्फ इस बात से होता है कि चुने गए नेता की लोकप्रियता का स्तर क्या है।

शासन के अंग

किसी भी सरकार या राजव्यवस्था के सामने मूलत: 3 चुनौतियां होती हैं – कानून बनाना, कानूनों के अनुसार शासन कार्य का संचालन करना एवं व्यक्तियों के आपसी विवादों या व्यक्ति एवं सरकार के विवादों के समाधान के लिए न्याय व्यवस्था संचालित करने की चुनौती। प्रत्येक शासन व्यवस्था में इन 3 मूल चुनौतियों के समाधान के लिए उपाय किए जाते हैं। जिन 3 व्यवस्थाओं के माध्यम से इन चुनौतियों का समाधान किया जाता है, वे शासन के अंग कहलाते हैं। शासन के 3 अंग निम्नलिखित हैं –

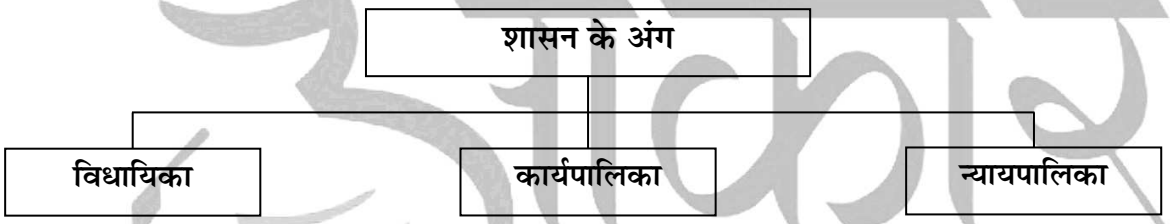

- **विधायिका (Legislature)**

विधायिका का कार्य कानून निर्माण करना है। वर्तमान सार्वजनिक व्यवस्थाओं में विधायिका आमतौर पर 2 सदनों से मिलकर बनती है, जैसे – भारत में लोकसभा और राज्यसभा। इनमें से एक सदन जनता द्वारा सीधे चुना जाता है और उसकी कानूनों के निर्माण में प्रमुख भूमिका होती है। भारत में लोकसभा इसी भूमिका में है। दूसरे सदन की जरूरत मुख्यत: उन देशों में होती है, जो संघात्मक ढांचे के अनुसार संगठित होते हैं। संघात्मक ढांचे को सुरक्षित बनाए रखने के लिए एक–दूसरे सदन में सभी राज्यों या प्रांतों के कुछ सदस्यों को लिया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में 'सीनेट' और भारत में 'राज्यसभा' की यही भूमिका है। चूंकि अधिकांश कानूनों के निर्माण के लिए इस सदन की भी सहमति आवश्यक होती है, इसलिए इस सदन की उपस्थिति से यह सुनिश्चित होता रहता है कि केन्द्र सरकार राज्यों की शक्तियों को छीन न ले। ध्यातत्व है कि ब्रिटेन की राजनीतिक व्यवस्था इसका एक महत्वपूर्ण अपवाद है। वहां की राजनीतिक प्रणाली एकात्म है, इसलिए वस्तुत: वहां दूसरे सदन की जरूरत नहीं है, किन्तु जब भी वहां लॉर्ड्स सभा के रूप मे दूसरा सदन रखा गया है, हालांकि उसका मूल कार्य अपनी परम्पराओं को सुरक्षित रखना तथा कुछ अतिविशिष्ट व गणमान्य लोगों को संसद लोगों को संसद में शामिल होने का मौका देना है, न कि प्रांतों या स्थानीय इकाइयों के अधिकारों की रक्षा करना।

राज्यों या प्रान्तों की विधायिकाएं आमतौर पर एकसदनीय है। इस सदन को 'विधानसभा' कहते हैं। संविधान में व्यवस्था है कि यदि किसी राज्य विशेष में जरूरत महसूस की जाए, तो दूसरे सदन के तौर पर 'विधानपरिषद्' की स्थापना की जा सकती है। विधायिका के एक अंग के रूप में भारतीय राष्ट्रपति संसद के दोनों सदन के तैर पर विधेयकों पर अपनी सहमति प्रदान करता है।

- **कार्यपालिका (Executive)**

शासन के दूसरे अंग को कार्यपालिका कहते है। इसका आशय उस व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह से होता है, जो विधायिका द्वारा निर्मित कानूनों के अनुसार शासन चलाता है, अर्थात् – कानूनों को लागू करता है। यह 2 प्रकार की होती है –

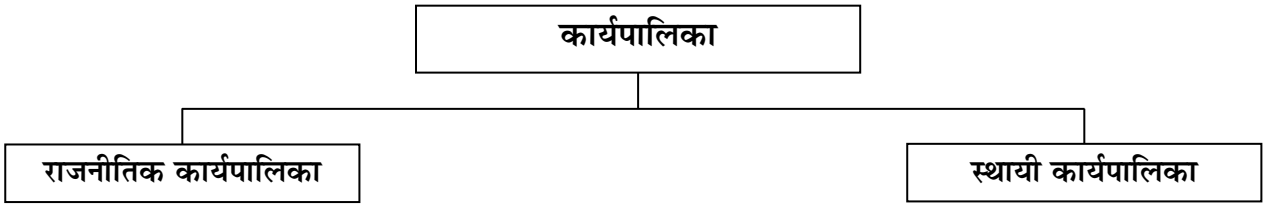

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

1) **राजनीतिक कार्यपालिका (Political Executive)** - कार्यपालिका के सर्वोच्च स्तर पर होती है, जिसे जनता निश्चित अवधि के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चुनती है। उदाहरणार्थ - भारत में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल या अमेरिका में राष्ट्रपति।

2) **स्थायी कार्यपालिका (Permanent Executive)** - इसमें वे उच्च पदाधिकारी शामिल होते हैं, जो अधिकारीतंत्र के अंग होते हैं तथा जिनका कार्यकाल किसी तरह के निर्वाचन पर निर्भर नहीं होता। उदाहरणार्थ - भारत में भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा अन्य सिविल सेवाओं के अधिकारी। स्थायी कार्यपालिका को राजनीतिक कार्यपालिका के निर्देशों के अनुरूप कार्य करना होता है। इसमें शामिल लोगों को प्रशासन के क्षेत्र में विशेष दक्षता हासिल होती है, इसलिए जिन बिन्दुओं पर राजनीतिक कार्यपालिका ऐसी दक्षता से वंचित होती है, वहां स्थायी कार्यपालिका के सदस्य उसकी सहायता करते हैं।

- **न्यायपालिका (Judiciary)**

शासन का तीसरा अंग न्यायपालिका कहलाता है, जिसके कई कार्य हैं। इसका प्रमुख कार्य यह है कि विधायिका द्वारा निर्मित कानूनों के अनुसार विभिन्न विवादों का समाधान करें, किन्तु वर्तमान में न्यायपालिका की भूमिका काफी हद तक विधायिका के समान भी होने लगी है। इसका कारण है कि कई कानून इतने जटिल और अस्पष्ट होते हैं कि न्यायपालिका को उनकी मौलिक व्याख्या करनी पड़ती है। ये व्याख्याएं स्वत: कानून का दर्जा प्राप्त कर लेती हैं, जिन्हें न्यायाधीश-निर्मित-कानून या निर्णय-कानून कहते हैं। वर्तमान में इन्हें कानूनों की एक पृथक शाखा के रूप में महत्व दिया जाता है। ध्यातव्य है कि उच्च स्तर के न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णय निचली अदालतों के लिए पूर्वनिर्णय होते हैं तथा उनके लिए बाद के किसी भी समान मामले में उन पूर्वनिर्णयों को आधार बनाना जरूरी होता है।

आकार IAS
Shaping Your Dreams

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

संविधान सभा
Constituent Assembly

संविधान ऐसा मौलिक दस्तावेज, अर्थात् – नियमों, कानूनों, सिद्धान्तों एवं विचारधाराओं का सम्मुचय होता है, जिसके आधार पर किसी देश की शासन व्यवस्था संचालित की जाती है। विश्व के आधुनिक संविधानों में अमेरिका प्रथम देश है, जिसने लिखित संविधान की रचना की और इसे मार्च, 1789 ई. में लागू किया गया।

❐ भारतीय संविधान की मांग (Dimand for the Constitution of India)

1885 ई. में कांग्रेस के गठन के बाद भारत की स्वतंत्रता की मांग में ही संविधान बनाने की मांग भी छिपी हुई थी। संविधान सभा के गठन की प्रथम अभिव्यक्ति 1895 ई. लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के निर्देशन में तैयार किए गए स्वराज विधेयक में मिलती है। 1916 ई. में होमरूल आन्दोलन के दौरान घरेलू शासन संचालन की मांग की गई। 1922 ई. में महात्मा गांधी ने यह विचार व्यक्त किया कि "भारतीय संविधान भारतीयों की इच्छा अनुसार ही होगा।"

1924 ई. में मोतीलाल नेहरू द्वारा ब्रिटिश सरकार से भारतीय संविधान निर्माण के लिए संविधान सभा के गठन की मांग की गई। 1928 ई. में नेहरू रिपोर्ट के माध्यम से मौलिक अधिकार, निर्वाचन प्रणाली और डोमेनियन इस्टेट्स की मांग की गई। **संविधान सभा के विचार का औपचारिक रूप से प्रतिपादन साम्यवादी नेता एम. एन. राय द्वारा किया गया**। नेहरू के ही प्रयासों से 1935 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने पहली बार भारत के संविधान के निर्माण हेतु आधिकारिक रूप से संविधान सभा के गठन की मांग की, जिसके परिणामस्वरूप दिसम्बर, 1936 ई. में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में संविधान सभा के अर्थ एवं महत्व की व्याख्या की गई।

कांग्रेस द्वारा संविधान सभा के गठन की मांग की ब्रिटिश सरकार द्वारा लगातार उपेक्षा की जाती रही। इसी बीच द्वितीय विश्व युद्ध की आवश्यकताओं एवं अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के चलते ब्रिटिश सरकार ने इस मांग को सैद्धान्तिक रूप से स्वीकार कर लिया, जिसे **1940 ई.** के **अगस्त प्रस्ताव** के नाम से जाना जाता है। अगस्त प्रस्ताव की इस असफलता के बाद **मार्च, 1942 ई.** में ब्रिटिश सरकार ने कैबिनेट मंत्री **सर स्टैफोर्ड क्रिप्स** को एक नए प्रारूप प्रस्ताव के साथ भारत भेजा, किन्तु कांग्रेस ने इसे अस्वीकर कर दिया।

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद **मार्च, 1946 ई.** में ब्रिटेन के नए प्रधानमंत्री क्लीमेंट एटली द्वारा ब्रिटिश मंत्रीमण्डल के 3 सदस्यों (**लॉर्ड पेथिक लॉरेन्स – अध्यक्ष**, **सर स्टैफोर्ड क्रिप्स** एवं **ए. बी. एलेक्जेंडर**) को भारत भेजा। इसे कैबिनेट मिशन कहा गया, जिसने अन्ततः भारतीय संविधान सभा के गठन का मार्ग प्रशस्त किया।

❐ संविधान सभा के गठन के संबंध में कैबिनेट मिशन के प्रस्ताव (Proposal of Cabinet Mission)

कैबिनेट मिशन प्रस्ताव के अनुसार भारतीय संविधान सभा का गठन निम्नानुसार होना था –

1) संविधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या 389 निश्चित की गई, जिनमें से 296 ब्रिटिश प्रांतों के प्रतिनिधि (292 ब्रिटिश प्रांत से तथा 4 ब्रिटिश कमिश्नरी क्षेत्र – दिल्ली, कुर्ग, अजमेर एवं बलुचिस्तान से) तथा 93 देशी रियासतों के प्रतिनिधि होंगे।

2) प्रत्येक प्रांत व देशी रियासतों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में सीटें आवंटित की जाएंगी। सामान्यतः प्रत्येक 10 लाख लोगों पर 1 सीट आवंटित की जानी थी (वर्तमान जनसंख्या लगभग 36 करोड़ 10 लाख थी)।

3) संविधान सभा के सदस्यों की संख्या का निर्धारण तत्कालीन भारत की जनसंख्या से किया गया था। मिशन के प्रस्ताव के तहत् सदस्यों का निर्वाचन प्रांतीय विधानसभाओं के सदस्यों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से किया जाना था।

4) प्रत्येक ब्रिटिश प्रांत को दी गई सीटों का निर्धारण 3 प्रमुख समुदायों के बीच उनकी जनसंख्या के अनुपात में किया जाना था, जो निम्नलिखित हैं – 213 सामान्य, 79 मुसलमान तथा 4 सिक्ख (कुल 296)।

5) देशी रियासतों के प्रतिनिधियों का चयन रियासतों के प्रमुखों द्वारा किया जाना था।

❐ भारतीय संविधान सभा का गठन (Formation of the Constitution Assembly)

कैबिनेट मिशन प्रस्ताव में मुस्लिम लीग की अलग पाकिस्तान की मांग को खारिज कर दिया गया था। अतः मुस्लिम लीग द्वारा इस योजना का विरोध किया गया, जबकि कांग्रेस ने इसका समर्थन किया था। विभिन्न आलोचनाओं व मतभेदों के बावजूद 6 जून, 1946 ई. को मुस्लिम लीग एवं 25 जून, 1946 को कांग्रेस ने इस योजना को स्वीकार कर लिया।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

जुलाई, 1946 ई. में कैबिनेट मिशन योजना के अनुसार संविधान सभा का चुनाव हुआ। इस चुनाव में कांग्रेस को 208, मुस्मिल लीग को 73 तथा छोटे दलों व निर्दलीय सदस्यों को 15 सीटें प्राप्त हुईं।

संविधान सभा के लिए सम्पन्न हुए चुनाव में मुस्लिम लीग की स्थिति कमजोर हो गई, अत: मुस्लिम लीग ने संविधान सभा का बहिष्कार करने का निर्णय लिया तथा पाकिस्तान के लिए पृथक संविधान सभा के गठन की मांग की। यहां उल्लेखनीय है कि देशी रियासतों को आवंटित की गई 93 सीटें नहीं भर पाई, क्योंकि उन्होंने स्वयं को सविधान सभा से अलग रखने का निर्णय लिया था।

इसी बीच चुनाव परिणामों के पश्चात् 2 सितम्बर, 1946 ई. को पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में अन्तरिम सरकार का गठन किया गया। इस सरकार ने मुस्लिम लीग के नेता शामिल नहीं हुए, किन्तु बाद में 26 अक्टूबर, 1946 ई. को मुस्लिम लीग के 5 सदस्यों को शामिल करते हुए अंतरिम सरकार का पुनर्गठन किया गया।

संविधान सभा चुनाव, 1946

दल	**प्राप्त सीटें**
कांग्रेस	208
मुस्लिम लीग	73
यूनियनिस्ट पार्टी	1
यूनियनिस्ट मुस्लिम	1
यूनियनिस्ट शिड्यूल कास्ट	1
कृषक प्रजा पार्टी	1
सिख (कांग्रेस के अतिरिक्त)	1
साम्यवादी	1
अनुसूचित जाति	1
स्वतंत्र	8
कुल	**296**

अन्तरिम सरकार

जवाहरलाल नेहरू	कार्यकारी परिषद के उपाध्यक्ष विदेश मामले तथा राष्ट्रमण्डल
बल्लभभाई पटेल	गृह, सूचना तथा प्रसारण
बलदेव सिंह	रक्षा
जान मथाई	उद्योग तथा आपूर्ति
सी. राजगोपालाचारी	शिक्षा
सी. एच. भाभा	कार्य, खान तथा बन्दरगाह
राजेन्द्र प्रसाद	खाद्य तथा कृषि
आसफ अली	रेलवे
जगजीवन राम	श्रम
लियाकत अली खां	वित्त
आई. आई. चुन्दरीगर	वाणिज्य
अब्दुल रब नश्तर	संचार
जोगेन्द्रनाथ मण्डल	विधि
गजनफर अली खां	स्वास्थ्य

❐ संविधान सभा की बैठक (Working of the Constituent Assembly)

9 दिसम्बर, 1946 ई. को संविधान सभा की प्रथम बैठक नई दिल्ली स्थित कॉन्सिल चेम्बर के पुस्तकालय भवन में हुई। इस बैठक में 211 सदस्यों ने भाग लिया, क्योंकि मुस्लिम लीग ने स्वतंत्र पाकिस्तान की मांग उठाते हुए इस बैठक का बहिष्कार किया, जबकि देशी रियासतों ने इसमें शामिल होने से पहले ही इनकार कर दिया था। **इसी दिन संविधान सभा ने सबसे वरिष्ठ सदस्य सच्चिदानन्द सिंहा को सभा का अस्थायी अध्यक्ष चुना। 11 दिसम्बर 1946 ई. को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद विधिवत संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष बनाए गए।** एच. सी. मुखर्जी को उपाध्यक्ष चुना गया। संविधान सभा की बढ़ती महत्ता व स्वीकृति के कारण धीरे-धीरे देशी रियासतों के प्रतिनिधि भी इसमें शामिल होने लगे।

आगे चलकर 3 जून, 1947 ई. को माउन्ट बेटेन ने भारत विभाजन की योजना प्रस्तुत की, जिसके पश्चात् अधिकांश देशी रियासतों के प्रतिनिधि संविधान सभा में शामिल हो गए। भारत विभाजन के परिणामस्वरूप संविधान सभा को पुनर्गठित कर इसकी संख्या 324 नियत की गई।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

संविधान सभा के प्रमुख सदस्य

कांग्रेसी सदस्य	जवाहरलाल नेहरू, बल्लभभाई पटेल, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, अबुल कलाम आजाद, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, आचार्य जे. बी. कृपलानी, पंडित गोविन्दवल्लभ पंत, पुरुषोत्तमदास टंडन, के. एम. मुंशी, टी. टी. कृष्णामाचारी, बालगोविन्द खरे।
गैर-कांग्रेसी सदस्य	डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, एन. गोपालस्वामी आयंगर, पंडित हृदयनाथ कुंजरू, सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर, टेकचंद बख्शी, प्रो. के. टी. शाह, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, डॉ. जयकर।
महिला सदस्य	अम्मू स्वामीनाथन, एनी मस्केरेने, बेगम एजाज़ रसूल, दक्षयानी वेलायुदन, दुर्गाबाई देशमुख, हंसा मेहता, कमला चौधरी, लीला रे, मालती चौधरी, पूर्णिमा बनर्जी, राजकुमारी अमृत कौर, रेणुका रे, सरोजिनी नायडू, सुचेता कृपलानी, विजयलक्ष्मी पंडित।
मध्य प्रांत व बरार से शामिल सदस्य	पं. रविशंकर शुक्ल, सेठ गोविन्ददास, हरिसिंह गौर, राजकुमारी अमृत कौर, अम्बिकाचरण शुक्ल, बी. ए. माण्डलोई, ठाकुर छेदीलाल, हरि विष्णु कामथ, घनश्याम सिंह गुप्ता, काजी करीमुद्दीन, गणपतराव दानी आदि।

❐ संविधान का निर्माण (Making of the Constitution)

11 दिसम्बर, 1946 ई. को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को संविधान सभा का स्थायी अध्यक्ष तथा **बी. एन. राव को संवैधानिक सलाहकार** नियुक्त किया गया। संविधान सभा की कार्यवाही जवाहरलाल नेहरू द्वारा 13 दिसम्बर, 1946 ई. को प्रस्तुत **उद्देश्य प्रस्ताव** (Objective Resolution) के साथ प्रारंभ हुई। उद्देश्य प्रस्ताव को संविधान सभा द्वारा 22 जनवरी, 1947 ई. को स्वीकृति मिली। यही उद्देश्य प्रस्ताव संविधान की **प्रस्तावना** (Preamble) का आधार बना।

उद्देश्य प्रस्ताव की स्वीकृति के बाद संविधान सभा ने संविधान निर्माण हेतु अनेक समितियों का गठन किया। इन सभी समितियों में सबसे महत्वपूर्ण समिति प्रारूप समिति थी। प्रारूप समिति का गठन 29 अगस्त, 1947 ई. को हुआ था। इस समिति में 7 सदस्य थे तथा डॉ. भीमराव अम्बेडकर इसके अध्यक्ष थे। प्रारूप समिति ने संविधान के प्रारूप पर विचार करने के पश्चात् 21 फरवरी, 1948 ई. को अपनी रिपोर्ट संविधान सभा के समक्ष प्रस्तुत की।

संविधान निर्माता समिति एवं उनके अध्यक्ष

समिति	अध्यक्ष
प्रारूप समिति	डॉ. भीमराव अम्बेडकर
संघीय संविधान समिति	जवाहरलाल नेहरू
संघ शक्ति समिति	जवाहरलाल नेहरू
राज्य समिति	जवाहरलाल नेहरू
प्रांतीय संविधान समिति	बल्लभभाई पटेल
मूल अधिकार एवं अल्पसंख्यक समिति	बल्लभभाई पटेल
मूल अधिकार उपसमिति	जे. बी. कृपलानी
अल्पसंख्यक उपसमिति	एच. सी. मुखर्जी
प्रक्रिया नियम समिति	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
झण्डा समिति	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
देशी रियासत समझौता समिति	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
संचालन समिति	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
कार्य संचालन समिति	डॉ. के. एम. मुंशी
सर्वोच्च न्यायालय समिति	एस. वारदाचारियार
संविधान समीक्षा आयोग	एम. एन. वैंकटचलैया

संविधान सभा में संविधान का प्रथम वाचन 4 नवम्बर, 1948 ई. को प्रारंभ हुआ, जो 9 नवम्बर, 1948 ई. तक चला। दूसरा वाचन 15 नवम्बर, 1948 ई. से 17 अक्टूबर, 1949 ई. तक चला तथा संविधान के प्रारूप पर व्यापक विचार-विमर्श हुआ। 4 नवम्बर, 1948 ई. को डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने संविधान का अन्तिम प्रारूप पेश किया। इस बार संविधान पहली बार पढ़ा गया। संविधान सभा में संविधान का तीसरा वाचन 14 नवम्बर, 1949 ई. से 26 नवम्बर, 1949 ई. तक चला। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने 'द कॉन्सटिट्यूशन ऐज सैटल्ड बाई द असेंबली बी पास्ड' प्रस्ताव पेश किया। इस दिन संविधान सभा के कुल 299 सदस्यों में से 284 सदस्य उपस्थित थे, जिन्होंने संविधान पर हस्ताक्षर किए। इस प्रकार संविधान सभा द्वारा संविधान को पारित कर दिया गया।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

संविधान बनाने में कुल 2 वर्ष 11 माह एवं 18 दिन का समय लगा और इस दौरान कुल 11 अधिवेशन हुए। 11वें अधिवेशन के अंतिम दिन 26 नवम्बर, 1949 ई. को संविधान को अंगीकृत किया गया। इस समय संविधान में कुल 395 अनुच्छेद तथा 8 अनुसूचियां थीं। संविधान निर्माताओं ने लगभग 60 देशों के संविधानों का अवलोकन किया तथा इसके निर्माण पर कुल 64 लाख रुपए खर्च हुए। 24 जनवरी, 1950 ई. को संविधान सभा की अंतिम बैठक हुई। इसके बाद संविधान सभा ने 26 जनवरी, 1950 ई. से नई संसद के निर्माण तक भारत की अंतरिम संसद के रूप में कार्य किया।

प्रारूप समिति

1) **डॉ. भीमराव अम्बेडकर**
2) एन. गोपाल स्वामी आयंगर
3) के. एम. मुंशी
4) अल्लादी कृष्ण स्वामी अय्यर
5) सैयद मो. सादुल्ला
6) बी. एल. मित्र (थोड़े समय बाद हट गए और इनके स्थान पर एन. माधव राव सदस्य बने)
7) डी. पी. खेतान (इनकी आकस्मिक मृत्यु होने के कारण टी. टी. कृष्णभाचारी को सदस्य बनाया गया)

संविधान सभा ने ही 24 जनवरी, 1950 ई. को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को भारत के पहले राष्ट्रपति के रूप में चुना। उल्लेखनीय है कि 26 नवम्बर, 1949 ई. को संविधान के 15 अनुच्छेदों (5, 6, 7, 8, 9, 60, 324, 366, 367, 379, 380, 388, 391, 392 एवं 393) को तत्समय ही लागू कर दिया गया तथा शेष भाग को 26 जनवरी, 1950 ई. को लागू किया गया।

❒ संविधान सभा के अन्य कार्य (Other Functions of the Constituent Assembly)

संविधान सभा ने संविधान निर्माण के अलावा कुछ अन्य महत्वपूर्ण कार्य भी किए, जो निम्नलिखित हैं –

1) 22 जुलाई, 1947 ई. को राष्ट्रीय ध्वज को अपनाया।
2) मई, 1949 ई. को राष्ट्रमण्डल में भारत की सदस्यता को औपचारिक रूप से स्वीकार किया।
3) 24 जनवरी, 1950 ई. को राष्ट्रगान (जन-गण-मन...) एवं राष्ट्रगीत (वंदे मातरम्...) को अपनाया।
4) 24 जनवरी, 1950 को अपनी अंतिम बैठक में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को भारत के प्रथम राष्ट्रपति के रूप में चुना।

❒ भारतीय संविधान की विशेषताएं (Characteristics of the Indian Constitution)

भारतीय संविधान की विशेषताएं निम्नलिखित हैं –

1) **सबसे विशाल लिखित संविधान (Most Comprehensive Written Constitution)** – संविधान को मूलत: 2 वर्गों में बांटा जाता है – लिखित एवं अलिखित। भारत का संविधान विश्व का सबसे विशाल लिखित संविधान है। वर्तमान में इसमें 1 प्रस्तावना एवं 450 अनुच्छेद हैं, जो 24 भागों में विभाजित (यद्यपि अनुच्छेद की संख्या अभी-भी 395 तथा भाग की संख्या 22 है) हैं और 12 अनुसूचियां भी हैं।
2) **नम्यता एवं अनम्यता का समन्वय (Blend of Rigidity & Flexibility)** – संविधान की नम्यता और अनम्यता उसके संशोधन की प्रक्रिया पर निर्भर करती है। जिस संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया जटिल, उसे अनम्य और जिसमें सरल, उसे नम्य संविधान कहा जाता है। भारतीय संविधान लिखित होते हुए भी परिवर्तनशील है। संविधान के कुछ ही प्रावधानों में संशोधन के लिए साधारण प्रक्रिया का, जबकि अधिकांशत: प्रावधानों में संसद की विशेष प्रक्रिया का पालन किया जाता है।
3) **धर्मनिरपेक्ष राज्य (Secular State)** – भारतीय संविधान धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को अपनाता है। इसके अनुसार भारत का कोई राजकीय धर्म नहीं होगा तथा सभी धर्मों का समान रूप से सम्मान करेगा।
4) **एकात्मकता की ओर झुकाव के साथ संघात्मक संविधान (Federal Constitution with Unitary Bias)** – भारतीय संविधान की प्रकृति संघात्मक है, किन्तु असामान्य परिस्थितियों में इसका स्वरूप एकात्मक हो जाता है। अत: भारतीय संविधान में संघात्मक और एकात्मक दोनों व्यवस्थाओं की विशेषताएं मौजूद हैं।
5) **संसदीय शासन प्रणाली (Parlimentary System)** – संघात्मक संविधान के अन्तर्गत प्रमुखत: 2 प्रकार की सरकारों की स्थापना की जा सकती है – संसदीय तथा अध्यक्षात्मक। संसदीय व्यवस्था विधायिका तथा कार्यपालिका के मध्य समन्वय एवं सहयोग के सिद्धान्त पर आधारित होती है, जबकि अध्यक्षीय प्रणाली में शक्ति के पृथक्करण पर आधारित होती है। भारतीय संविधान संसदीय सरकार की स्थापना करता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

6) **स्वतंत्र एवं एकीकृत न्यायपालिका (Integrated & Independent Judiciary)** - संघात्मक व लिखित संविधान में न्यायपालिका का स्वतंत्र होना अतिआवश्यक है। स्वतंत्र न्यायपालिका का लोकतंत्र का आधार स्तम्भ है। यह विधायिका एवं कार्यपालिका पर नियंत्रण स्थापित कर रोक व संतुलन के सिद्धान्त को लागू करती है। उल्लेखनीय है कि भारतीय संविधान संघात्मक होने के बावजूद एकीकृत न्यायपालिका की स्थापना करता है।

7) **मौलिक अधिकार (Fundamental Right)** - व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए जिन अधिकारों का प्राप्त होना आवश्यक है, उन्हें हम मूल अधिकार कहते हैं। भारतीय संविधान भी भाग 3 में मूल अधिकारों की घोषणा करता है।

8) **राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त (Directive Principles of State Policy)** - सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की स्थापना हेतु राज्य के कुछ कर्तव्य माने गए हैं, जिन्हें राज्य के नीति निदेशक तत्व कहा जाता है। भारतीय संविधान के भाग 4 में इनका उल्लेख किया गया है।

9) **मौलिक कर्तव्य (Fundamental Duties)** - अधिकार एवं कर्तव्य एक-दूसरे के पूरक होते हैं। अधिकार प्राप्ति के साथ ही प्रत्येक व्यक्ति का अपने राष्ट्र व समाज के प्रति कुछ कर्तव्य भी होते हैं, जिन्हें पूरा करना उसका दायित्व होता है। यद्यपि मूल संविधान में मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख नहीं था। इन्हें स्वर्णसिंह समिति की सिफारिश पर 1976 में 42वें संविधान संशोधन द्वारा शामिल किया गया है।

10) **संविधान की सर्वोच्चता (Supremacy of Constitution)** - भारतीय संविधान संविधान की सर्वोच्चता को स्थापित करता है, अर्थात् - संविधान से ऊपर कोई कानून नहीं है। सरकार या राज्य संविधान के विरुद्ध कोई भी विधि या नियम नहीं बना सकती है।

11) **एकल नागरिकता (Single Citizenship)** - सामान्यत: संघात्मक संविधान में दोहरी नागरिकता होती है - एक संघ की तथा दूसरी राज्यों की। किन्तु भारतीय संविधान संघात्मक होते हुए भी एकल नागरिकता के सिद्धान्त को अपनाता है।

12) **सार्वभौम वयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise)** - भारतीय संविधान सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार को अपनाता है। 18 वर्ष की आयु के ऊपर प्रत्येक व्यक्ति को धर्म, जाति, लिंग, साक्षरता तथा सम्पत्ति के आधार पर बिना भेदभाव किए मतदान का अधिकार है।

13) **आपातकालीन प्रावधान (Emergency Provisions)** - देश की एकता, अखण्डता एवं सम्प्रभुता को बनाए रखना प्रत्येक लोकतांत्रिक सरकार का कर्तव्य होता है। यदि उसके समक्ष असमान्य परिस्थितियां (युद्ध, आक्रमण एवं सशस्त्र विद्रोह) उत्पन्न हो जाए, तो उससे निपटने के लिए विशेष प्रावधान की अवश्यकता होती है। इसी आशय को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान भाग 18 में आपतकालीन प्रावधानों की व्यवस्था करता है।

14) **त्रि-स्तरीय सरकार (Three Tier Government)** - भारतीय संविधान की सबसे प्रमुख विशेषता त्रि-स्तरीय सरकार (केन्द्र, राज्य एवं पंचायती राज्य) की स्थापना है, जो विश्व के किसी भी संविधान में नहीं है।

15) **लोकतांत्रिक गणराज्य (Democratic Republic)।**

16) **सम्प्रभु राज्य (Sovereign State)।**

17) **समाजवादी व लोककल्याणकारी राज्य (Socialist & Welfare State)।**

(बिन्दु 15, 16 एवं 17 की व्याख्या प्रस्तवाना में देंखे।)

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

भारतीय संविधान के स्रोत
Sources of Indian Constitution

भारत शासन अधिनियम, 1935	- संघीय व्यवस्था (Federal System) - राज्यपाल का कार्यालय (Governor's Office) - न्यायपालिका का ढांचा (Structure of the Judiciary) - लोक सेवा आयोग (Public Service Commission) - आपातकालीन उपबंध (Emergency Provisions) - शक्तियों के वितरण की 3 सूचियां (Three Lists for Distribution of Powers)
ब्रिटेन का संविधान	- संसदीय व्यवस्था (Parliamentary System) - राज्याध्यक्ष का प्रतीकात्मक या नाममात्र का महत्व (Symbolic or Nominal Importance of the Head of State) - विधायी प्रक्रिया (Legislative Process) - एकल नागरिकता (Single Citizenship) - मंत्रिमण्डल प्रणाली (Cabinet System) - परमाधिकार रिटे (Prerogative Writs) - संसदीय विशेषाधिकार (Parliamentary Privileges) - द्विसदनवाद (Bicameralism)
अमेरिका का संविधान	- मूल अधिकार (Fundamental Rights) - न्यायपालिका की स्वतंत्रता (Indepenence of Judiciary) - न्यायिक पुनरीक्षण या पुनर्विलोकन का सिद्धान्त (The Principle of Judicial Review) - उपराष्ट्रपति का पद (The Post of Vice-Persident) - उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को पद से हटाया जाना और राष्ट्रपति पर महाभियोग (Removal of the Judges of Supreme Court and High Courts and Impeachment of the President)
आयरलैण्ड का संविधान	- राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्त (Directive Principles of State Policy) - राष्ट्रपति की निर्वाचन पद्धति (Method of President's Election) - राज्यसभा के लिए सदस्यों का नामांकन (Nomination of Members to the Council of States)
कनाडा का संविधान	- सशक्त केन्द्र के साथ संघीय व्यवस्था (Federal System With a Powerfull Centre) - अवशिष्ट शक्तियों का केन्द्र निहित होना (Vesting of Residuary Powers in the Centre) - केन्द्र द्वारा राज्य के राज्यपालों की नियुक्ति (Appointment of State's Governors by the Centre) - उच्चतम न्यायालय का परामर्शी न्याय-निर्णयन (Advisory Jurisdiction of the Supreme Court)

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

ऑस्ट्रेलिया का संविधान	- समवर्ती सूची (Concurrent List) - व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतंत्रता (Freedom of Trade, Commerce and Intercourse) - संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक (Joint Sitting of both Houses of Parliament)
जर्मनी का वाइमर संविधान	- आपातकाल के समय मूल अधिकारों का स्थगन (Suspension of Fundamentals Rights During Emergency)
सोवियत संघ (भूतपूर्व) का संविधान	- मूल कर्तव्य (Fundamental Duties) - प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय का आदर्श (Ideal of Social, Economic and Politcal Justice in Preamble)
फ्रांस का संविधान	- गणतंत्रात्मक ढांचा (Republican Structure) - स्वतंत्रता, समता और बंधुता के आदर्श (Ideals of Liberty, Equality and Fraternity)
दक्षिण अफ्रीका का संविधान	- संविधान में संशोधन की प्रक्रिया (Procedure of Amendment in the Constitution) - राज्यसभा के सदस्यों का निर्वाचन (Election of the Members of Rajya Sabha)
जापान का संविधान	- विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया (Procedure Established by Law)

भारतीय संविधान के विभिन्न भाग तथा विषय
Different Parts and Subject of Indian Constitution

भाग (PART)	विषय (SUBJECT)	अनुच्छेद (ARTICLES)
I	संघ व उसके राज्य क्षेत्र (The Union and its Territory)	1 - 4
II	नागरिकता (Citizenship)	5 - 11
III	मूल अधिकार (Fundamental Rights)	12 - 35
IV	राज्य की नीति के निदेशक तत्व (Directive Principles of State Policy)	36 - 51
IV-A	मूल कर्त्तव्य (Fundamental Duties)	51 A
V	संघ (The Union)	52 - 151
VI	राज्य (The States)	152 - 237
VIII	संघ राज्य क्षेत्र (The Union Territories)	239 - 242
IX	पंचायतें (The Panchayats)	243 - 243 O
IX - A	नगर पालिकाएं (The Municipalities)	243 P - 243 Z G
IX - B	सहकारी समितियां (The Cooperative Societies)	243 Z H - 243 Z T
X	अनुसूचित और जनजातीय क्षेत्र (The Schedules and Tribal Areas)	244 - 244 A
XI	संघ और राज्यों के बीच संबंध (Relations Between the Union and the States)	245 - 263
XII	वित्त, संपत्ति, संविदायें और वाद (Finance, Property, Contracts and Suits)	264 - 300 A

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

भाग (PART)	विषय (SUBJECT)	अनुच्छेद (ARTICLES)
XIII	भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर व्यापार, वाणिज्य एवं समागम (Trade, Commeree Intercourse within the Territory of India)	301 - 307
XIV	संघ और राज्यों के अधीन सेवाएं (Services under the Union and the States)	308 - 323
XIV - A	अधिकरण (Tribunals)	323 A - 323 B
XV	निर्वाचन (Elections)	324 - 329 A
XVI	अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जानजातियों, पिछड़े वर्गों एवं आंग्ल-भारतीयों के संबंध में विशेष उपबंध (Special Provisions Relating to Schedules Castes, Sheduled Tribes, Backward Class and Anlo-Indians)	330 - 342
XVII	राजभाषा (Official Language)	343 - 351
XVIII	आपात् उपबंध (Emergency Provisions)	352 - 360
XIX	प्रकीर्ण (Miscelleneous)	361 - 367
XX	संविधान का संशोधन (Amendment of the constitution)	368
XXI	अस्थायी, संक्रमणकालीन और विशेष उपबंध (Temporary, Transitional and Special Provisions)	369 - 392
XXII	संक्षिप्त नाम, प्रारंभ, हिन्दी में प्राधिकृत पाठ और निरसन (Short Title Commencement, Authoritative Text in Hindi and Repeals)	393 - 395

संविधान की अनुसूचियां
Schedules of the Constitution

क्रम (Sequenc)	विषय (Subject)	संबंद्ध अनुच्छेद (Related Articles)
प्रथम अनुसूची First Schedule	1) राज्यों के नाम एवं उनके राज्य क्षेत्र। 2) संघ राज्य क्षेत्रों के नाम और उनकी सीमाएं।	अनुच्छेद 1 तथा 4।
दूसरी अनुसूची Second Schedule	निम्नलिखित पदाधिकारियों के वेतन-भत्तों तथा पेंशन आदि से जुड़े प्रावधान 1) भारत का राष्ट्रपति 2) राज्यों के राज्यपाल 3) लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष 4) राज्यसभा के सभापति और उप-सभापति 5) राज्य विधानसभाओं के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष 6) राज्य विधान-परिषदों के सभापति और उप-सभापति 7) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश 8) उच्च न्यायालय के न्यायाधीश 9) भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक	अनुच्छेद 59, 65, 75, 97, 125, 248, 158, 164, 186 एवं 221
तीसरी अनुसूची Third Schedule	इसमें निम्नलिखित पदाधिकारियों तथा प्रत्याशियों द्वारा ली जाने वाली शपथों या प्रतिज्ञानों के प्रारूप दिए गए हैं। ये पदाधिकारी हैं - 1) संघ के मंत्री	अनुच्छेद 75, 84, 99, 124, 148, 164, 173, 188 एवं 219

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

क्रम (Sequenc)	विषय (Subject)	संबंद्ध अनुच्छेद (Related Articles)
	2) संसद के चुनावों के प्रत्याशी 3) संसद के सदस्य 4) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश 5) भारत का नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक 6) राज्यों के मंत्री 7) राज्य विधानमण्डल के चुनावों के प्रत्याशी 8) राज्य विधानमण्डल के सदस्य 9) उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश	
चौथी अनुसूची Fourth Schedule	राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों के लिए राज्यसभा में स्थानों का आवंटन।	अनुच्छेद 4 एवं 80
पांचवी अनुसूची Fifth Schedule	अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन तथा नियंत्रण से जुड़े प्रावधान	अनुच्छेद 244
छठी अनुसूची Sixth Schedule	असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्यों के जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में उपबंध	अनुच्छेद 244 एवं 275
सातवीं अनुसूची Seventh Schedule	संघ सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची में शामिल विषय। मूल संविधान में इन सूचियों में क्रमशः 97, 66 तथा 47 विषय थे; पर अब 100 (संघ सूची), 61 (राज्य सूची) तथा 52 (समवर्ती सूची) विषय हैं।	अनुच्छेद 246
आठवीं अनुसूची Eighth Schedule	संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त भाषाओं की सूची। वर्तमान में ये 22 भाषाएं हैं, जो मूल संविधान में 14 थीं। ये भाषाएं हैं - असमिया, बांग्ला, बोडो, डोगरी, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मैथिली, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, संथाली, सिंधी, तमिल, तेलुगु तथा उर्दू। सिंधी भाषा को 1967 के 21वें संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया था। कोंकणी, मणिपुरी, और नेपाली को 71वें संशोधन अधिनियम (1992) द्वारा और बोडो, डोगरी, मैथिली व संथाली को 92वें संशोधन अधिनियम (2003) द्वारा जोड़ा गया।	अनुच्छेद 344 एवं 351
नौवीं अनुसूची Ninth Schedule	इस अनुसूची को पहले संविधान संशोधन अधिनियम (1951) द्वारा जोड़ा गया था। इसका उद्देश्य यह था कि भूमि सुधारों तथा जमींदारी उन्मूलन के लिए बनाए जाने वाले अधिनियमों, नियमों, विनियमों आदि को न्यायालय के पुनर्विलोकन की शक्ति से बाहर किया जा सके। इसमें वर्तमान में 282 प्रविष्टियां हैं, जो कई संविधान संशोधनों द्वारा शामिल की गई हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया है कि 24 अप्रैल, 1973 (केशवानन्द भारती मामले के निर्णय की तिथि) के बाद नौवीं अनुसूची में शामिल किए जाने वाले अधिनियमों आदि की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है।	अनुच्छेद 31(ख)

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

क्रम (Sequenc)	विषय (Subject)	संबंद्ध अनुच्छेद (Related Articles)
दसवीं अनुसूची Tenth Schedule	इसमें दल-बदल के आधार पर संसद और विधानसभा के सदस्यों सदस्यों की निरर्हता से संबंधित उपबंध हैं। इस अनुसूची को 52वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1985 द्वारा इसमें संशोधन भी किया गया है। इसे 'दल बदल विरोधी कानून' भी कहा जाता है।	अनुच्छेद 101 एवं 191
ग्यारहवीं अनुसूची Eleventh Schedule	इसमें पंचायतों की शक्तियां व जिम्मेदारियां बताई गई हैं। इसमें 29 विषय हैं। इस अनुसूची को 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा जोड़ा गया था।	अनुच्छेद 243(छ) Art. 243(G)
बारहवीं अनुसूची Twelth Schedule	इसमें नगरपालिकाओं की शक्तियां व जिम्मेदारियां बताई गई हैं। इसमें 18 विषय हैं। इस अनुसूची को 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा जोड़ा गया था।	अनुच्छेद 243(ब) Art. 243(W)

आकार IAS
Shaping Your Dreams

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

संविधान की प्रस्तावना
Preamble of the Constitution

WE, THE PEOPLE OF INDIA, having solemnly resolved to constitute India into a **SOVEREIGN SOCIALIST SECULAR DEMOCRATIC REPUBLIC** and to secure to all its citizens :

JUSTICE, social, economic and political;

LIBERTY of thought, expression, belief, faith and worship;

EQUALITY of status and of opportunity; and to promote among them all

FRATERNITY assuring the dignity of the individual and the unity and integrity of the Nation;

In OUR CONSTITUENT ASSEMBLY this twenty-sixth day of November, 1949, do **HEREBY ADOPT, ENACT AND GIVE TO OURSELVES THIS CONTITUTION.**

हम, भारत के लोग, भारत को **एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए, तथा उसके समस्त **नागरिकों को;**
सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, **धर्म**
और उपासना की **स्वतंत्रता,**
प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**
प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सब में
व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता
और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली
बंधुता बढ़ाने के लिए,
दृढ़ संकल्प होकर अपनी **इस संविधान सभा** में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत दो हजार छह विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

कोई भी राष्ट्र बिना संविधान के एक व्यवस्थित शासन की कल्पना नहीं कर सकता है। प्राय: प्रत्येक संविधान के प्रारंभ में एक प्रस्तावना होती है, जिसमें शासन व्यवस्था के मूल आधारों, उसके दर्शन, उद्देश्यों, लक्ष्यों, आदर्शों, प्रयोजन आदि का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाता है। प्रस्तावना से ही संविधान निर्माताओं की मंशा का पता चल जाता है कि वे किस प्रकार का संविधान बनाना चाहते थे तथा संविधान निर्माताओं के क्या उद्देश्य थे या वे किन उच्चादर्शों की स्थापना संविधान में करना चाहते थे। इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि "प्रस्तावना संविधान के निर्माताओं के विचार को जानने की कुंजी है।"

भारतीय संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसम्बर, 1946 ई. को हुई और 13 दिसम्बर, 1946 ई. को पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा संविधान सभा में उद्देश्य प्रस्ताव (Objective Resolution) प्रस्तुत किया गया। इस प्रस्ताव में स्वतंत्र भारत के लिए बनाए जाने वाले संविधान के मूल सिद्धान्तों एवं शासन व्यवस्था की एक रूपरेखा प्रस्तुत की गई थी। उक्त प्रस्ताव को संविधान सभा ने 22 जनवरी, 1947 ई. को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया। प्रस्तावना की शब्दावली में अनेक शब्द और पद ऐसे हैं, जिनमें भारतीय और पाश्चात्य सभी विचारधाराओं के सर्वश्रेष्ठ तत्व समाहित हैं, जो प्रयोग की दृष्टि से सार्वभौम हैं। प्रस्तावना में निरूपित तथ्यों, सिद्धान्तों और आदर्शों की छाप समूचे भारतीय संविधान पर दृष्टिगोचर होती है। सारत: प्रस्तावना संविधान की आत्मा है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रस्तावना की विषयवस्तु को हम 4 भागों में बांट सकते हैं –

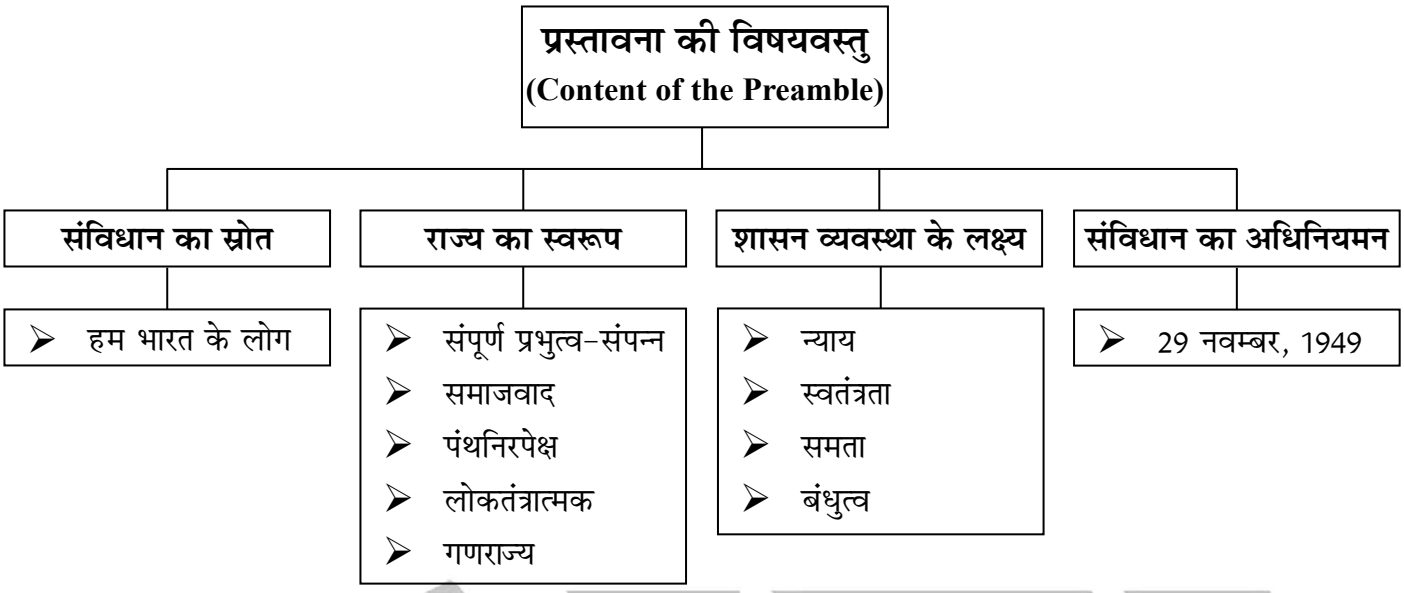

- **संविधान का स्रोत (Source of Constitution)**

संविधान की प्रस्तावना '**हम भारत के लोग**' शब्दों से प्रारंभ होती है, जो इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि भारतीय संविधान का स्रोत जनता है और राजनीतिक सत्ता अंतिम रूप से जनता में है, जिसका प्रयोग करते हुए जनता ने स्वेच्छा से संविधान का निर्माण तथा अपनी पसंद की शासन व्यवस्था को स्थापित किया है।

प्रस्तावना के अंतिम भाग में भी इसी तथ्य की पुष्टी की गई है कि हम भारत के लोग..... इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं। इससे इस तथ्य का बोध होता है कि संविधान किसी वैदेशिक सत्ता या किसी वर्ग विशेष द्वारा भारत पर आरोपित नहीं किया गया है, वरन् जनता स्वयं इसे बनाया है, इसे स्वीकार किया है और स्वयं अपने को दिया है। दूसरे शब्दों में जनता शासक भी है और शासित भी।

- **राज्य का स्वरूप (Nature of State)**

प्रस्तावना का दूसरा भाग इस बात को निश्चित करता है कि राज्य और सरकार का स्वरूप क्या होगा। इसे बताने के लिए प्रस्तावना में पांच शब्दों का प्रयोग किया गया है, जो कि निम्नलिखित हैं –

1) **सम्पूर्ण प्रभुत्व-संपन्न (Sovereign)** – सम्पूर्ण प्रभुत्व संपन्न शब्द से तात्पर्य है कि भारत अपने आन्तरिक एवं बाह्य मामलों में पूरी तरह स्वतंत्र होगा। भारत अपने वैदेशिक मामलों में पूर्णत: स्वतंत्र होगा, वह किसी भी देश से मित्रता और संधि कर सकता है। स्वतंत्रता के पश्चात् भी भारत राष्ट्रमण्डल (Commonwealth) का सदस्य है, किन्तु यह सदस्यता भारत की सम्प्रभुता पर कोई भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती है। भारत ने इसकी सदस्यता को अपनी इच्छा से स्वीकार किया और वह जब चाहे इसकी सदस्यता से अपने को अलग कर सकता है। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता भी उसकी सम्प्रभुता को सीमित नहीं करती है।

2) **समाजवादी (Socialist)** – समाजवाद शब्द 42वें संविधान संशोधन द्वारा जोड़ा गया है। इसे लोकतांत्रिक समाजवाद कहा जा सकता है, जिसमें अर्थव्यवस्था के स्तर पर निजी उद्यमशीलता (Private Enterpreneurship) और सहकारी नियंत्रण जैसे तत्व साथ-साथ अस्तित्व में होते हैं। समाजवादी व्यवस्था में उत्पादन के मुख्य साधनों पर सरकार का नियंत्रण होता है, जिसमें उत्पादन के साधनों का प्रयोग समाजिक हित में किया जाता है। समाजवाद के आदर्श को प्राप्त करने के लिए संविधान के भाग 4 में राज्य को निर्देश दिया गया है कि वह अपनी आर्थिक नीति को विशेषत: इस प्रकार संचालित करें कि समाज में धन एवं उत्पादन साधनों के स्वामित्व एवं नियंत्रण का इस प्रकार वितरण हो कि उससे सर्वसाधारण का लोककल्याण हो सकें।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

3) **पंथनिरपेक्ष (Secular)** - पंथनिरपेक्ष शब्द भी 42वें संविधान संशोधन द्वारा जोड़ा गया है। पंथनिरपेक्ष राज्य से तात्पर्य ऐसे राज्य से है, जो किसी विशेष धर्म को राजकीय धर्म के रूप में मान्यता प्रदान नहीं करता, वरन् सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करता है और उन्हें समान संरक्षण प्रदान करता है। प्रत्येक व्यक्ति किसी भी धर्म को मानने, आचरण करने तथा प्रचार करने के लिए स्वतंत्र है। भारतीय संविधान के भाग 3 में समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14-15-16) तथा धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28) भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य बनाते हैं।

4) **लोकतंत्रात्मक (Democratic)** - लोकतंत्रात्मक शब्द इस बात का परिचायक है कि सरकार की शक्ति का स्रोत भारत की जनता है। लोकतंत्रात्मक सरकार जनता की, जनता के लिए तथा जनता के द्वारा स्थापित सरकार है। जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि देश का शासन चलाते हैं तथा वे अंतिम रूप से जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

विश्व में मुख्यत: दो प्रकार के लोकतांत्रिक शासन प्रणालियां प्रचलित हैं - प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष। भारत ने अप्रत्यक्ष प्रतिनिधि प्रणाली को अपनाया। चूंकि भारत का क्षेत्रफल तथा जनसंख्या बहुत अधिक है, इसलिए स्वाभाविक है कि यहां प्रत्यक्ष लोकतंत्र चलाया जाना संभव नहीं है।

5) **गणराज्य (Republic)** - विश्व के लोकतांत्रिक राज्य को दो भागों में बांटा जा सकता है - वंशानुगत लोकतंत्र तथा लोकतंत्रात्मक गणराज्य। वंशानुगत लोकतंत्र में राज्य का प्रमुख वंशानुगत होता है, जैसे - ब्रिटेन। वहीं लोकतंत्रात्मक गणराज्य में राष्ट्र प्रमुख वंशानुगत न होकर जनता द्वारा एक निश्चित अवधि के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होता है, जैसे - अमेरिका, फ्रांस आदि। भारत ने लोकतंत्रात्मक गणतंत्र प्रणाली को स्वीकार किया है। अत: भारत का राष्ट्रपति वंशानुगत न होकर जनता द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होता है। यहां उल्लेखनीय है कि लोकतंत्रात्मक गणराज्य में सभी पदों पर नागरिकों के सभी वर्गों को शामिल होने का अधिकार होता है।

- **शासन व्यवस्था के लक्ष्य (Objectives)**

प्रस्तावना का तीसरा भाग इस बात को सुनिश्चित करता है कि राज्य के लक्ष्य क्या हैं? इसे बताने के लिए प्रस्तावना में चार लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं -

1) **न्याय (Justice)** - प्रस्तावना में पहला लक्ष्य जनता को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय निर्धारित किया गया है।

- **सामाजिक न्याय (Social Justice)** - सामाजिक न्याय से अभिप्राय यह है कि प्रत्येक नागरिक को सामाजिक विकास का लाभ प्राप्त हो। सभी नागरिकों को उनके धर्म, जाति, वंश, लिंग आदि के आधार पर भेदभाव किए बिना अपने विकास के समान अवसर उपलब्ध हो। यदि कोई पिछड़ा व कमजोर वर्ग (महिलाएं, वृद्धजन, बच्चे, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति आदि) अपने विकास हेतु समान अवसर का लाभ नहीं उठा पाता है, तो सामाजिक न्याय की मांग है कि राज्य उनकी उन्नति एवं विकास हेतु विशेष प्रावधान (आरक्षण) करें।
- **आर्थिक न्याय (Economic Justice)** - आर्थिक न्याय से अभिप्राय यह है कि उत्पादन के साधनों का इस तरह वितरण किया जाए कि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण न कर सके और उत्पादन के साधनों का सार्वजनिक हित में प्रयोग किया जाए। आर्थिक न्याय में अपेक्षा की जाती है कि राज्य सभी लोगों को न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। निजी सम्पत्ति विवश लोगों के शोषण का साधन न बन जाए। निजी सम्पत्ति की मात्रा व्यक्ति की अपनी प्रतिभा एवं परिश्रम के साथ जुड़ी होनी चाहिए न कि किसी विशेषाधिकार के साथ।
- **राजनीतिक न्याय (Political Justice)** - राजनीतिक न्याय से अभिप्राय है कि बिना किसी भेदभाव के सभी नागरिकों को राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने का समान अवसर तथा अधिकार मिले। कानून का शासन, नागरिक स्वतंत्रताएं, सार्वभौम वयस्क मताधिकार, राजनीतिक संस्थाएं आदि राजनीतिक न्याय की आवश्यक शर्तें हैं।

सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय की स्थापना के लिए राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों (अनुच्छेद 38-39) में विशेष रूप से निर्देश दिए गए हैं। अनुच्छेद 38 में कहा गया है कि राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

सर्वोच्च न्यायालय ने भी अपने एक निर्णय में कहा है कि अनुच्छेद 21 में दिए गए जीवन के अधिकार के अन्तर्गत समाजिक न्याय का भी समावेश होता है। अत: सामाजिक न्याय एक मूल अधिकार है। अनुच्छेद 39 में भी सम्पत्ति के न्यायपूर्ण वितरण, उत्पादन साधनों का सर्वसाधारण के हित के लिए प्रयोग, समान कार्य के लिए समान वेतन, स्त्रियों एवं बच्चों के हितों के संरक्षण आदि के द्वारा सामाजिक, आर्थिक न्याय की स्थापना की गई है।

2) **स्वतंत्रता (Liberty)** - भारतीय संविधान निर्माताओं ने स्वतंत्रता शब्द का प्रयोग सकारात्मक अर्थ में किया है। उन्होंने स्वतंत्रता को इसलिए स्वीकार किया है, क्योंकि इसके माध्यम से व्यक्ति एवं राष्ट्र दोनों का विकास होता है। इसके लिए प्रस्तावना में भारत के नागरिकों को विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म तथा उपासना की स्वतंत्रता प्रदान की गई है। इसके लिए संविधान के भाग 3 में व्यापक प्रावधान किए गए हैं तथा इन स्वतंत्रताओं के संरक्षण के लिए स्वतंत्र न्यायपालिका की स्थापना की गई है।

3) **समता (Equality)** - प्रतिष्ठा एवं अवसर की समता प्रस्तावना द्वारा निर्धारित तीसरा प्रमुख लक्ष्य है। समानता का अर्थ ऐसी स्थिति से है, जिसमें किसी व्यक्ति या समूह के पास कोई विशेषाधिकार न हो। व्यापक अर्थों में सभी व्यक्तियों को समान परिस्थितियां मिलनी चाहिए, ताकि वे मानवोचित गरिमा के साथ समाज में उपलब्ध अवसरों तक समान पहुंच बना सके।

वस्तुत: मनुष्यों में बुद्धि, स्वास्थ्य, रूप-रंग, आयु, लिंग आदि के आधार पर प्राकृतिक असमानता पाई जाती हैं। समता की यह मांग है कि इन आधारों पर किसी भी व्यक्ति से सामाजिक भेदभाव न किया जाए। प्रत्येक नागरिक को विकास के समान अवसर मिलने चाहिए। उल्लेखनीय है कि संविधान का लक्ष्य आनुपातिक समता न होकर न्यायपूर्ण समता है। दूसरे शब्दों में संरक्षणात्मक विभेदीकरण अर्थात् - आरक्षण द्वारा समाज के दलित, पिछड़े एवं उत्पीड़ित तबके के लिए न्यायपूर्ण समता की स्थापना करना।

भारतीय संविधान निर्माताओं ने समता को संविधान मौलिक अधिकारों (अनुच्छेद 14-18) के अन्तर्गत रखा है, जिसमें सभी व्यक्तियों को कानून के समक्ष समता और कानून के समान संरक्षण की व्यवस्था की गई है। धर्म, जाति, लिंग, जन्म, स्थान आदि के आधार पर भेदभाव का निषेध तथा सामाजिक समानता को अधिक पूर्णता देने के लिए अस्पृश्यता का निषेध किया गया है। इसके साथ ही राज्य के नीति निदेशक तत्वों में भी समानता के लक्ष्य को साकार किया गया है।

4) **बंधुत्व (Fraternity)** - बंधुत्व को व्यक्ति की गरिमा तथा राष्ट्र की एकता व अखण्डता को सुनिश्चित करने वाले सिद्धान्त के रूप में प्रस्तावना का चौथा लक्ष्य घोषित किया गया है। एकता का साधारण अर्थ यह है कि देश के विभिन्न क्षेत्रों मे रहने वाले विभिन्न धर्म और जातियों के लोग आपस में मिल-जुलकर रहे। अखण्डता शब्द संविधान के 42वें संशोधन द्वारा जोड़ा गया है। अखण्डता से तात्पर्य भू-भागीय एकता से है, ताकि विभिन्न क्षेत्र एक-दूसरे से जुड़े रहे। व्यक्ति की गरिमा शब्द के अन्तर्गत व्यक्ति की प्रधानता का अर्थ निहित है और यह सर्वाधिकारी राज्य का निषेध करता है। इस विचार के अनुसार राज्य व्यक्ति के लिए है, व्यक्ति राज्य के लिए नहीं। वास्तव में राज्य व्यक्ति के लिए है और उसका कर्तव्य यह है कि प्रत्येक नागरिक का आदर करे और ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करें, जिसमें हर व्यक्ति स्वतंत्रतापूर्वक अपना विकास कर सके। यदि सभी व्यक्ति एक-दूसरे का परस्पर आदर करेंगे, तो स्वाभाविक रूप से उनमें बंधुता की भावना उत्पन्न होगी।

वस्तुत: भारत को एक लम्बे समय तक साम्प्रदायिक घृणा के वातावरण का सामना करना पड़ा था। उसे एक राष्ट्र की भाँति जीवंत रखने के लिए आवश्यक था कि सभी प्रकार साम्प्रदायिक एवं समाज विरोधी भावनाओं का उन्मुलन किया जाए। अत: प्रस्तावना में बन्धुत्व को इसी पवित्र लक्ष्य की प्राप्ति के लिए लाया गया है। बन्धुत्व की भावना के विकास के साथ ही हम देश में व्याप्त साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाषावाद इत्यादि समस्याओं का समाधान कर सकते हैं। बन्धुत्व की भावना को बढ़ावा देने के लिए ही भारतीय संविधान में एकल नागरिकता को अपनाया है। यहां उल्लेखनीय है कि संविधान में बन्धुत्व का अन्तर्राष्ट्रीय पक्ष भी रखा गया है, जो हमें विश्व बन्धुत्व की संकल्पना 'वसुधैव कुटुम्बकम्' प्राचीन आदर्श की ओर ले जाता है। इसे संविधान के अनुच्छेद 51 में निर्देशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **संविधान का अधिनियमन (Enactment of the Constitution)**

प्रस्तावना के अंत में संविधान को अंगीकृत करने का उल्लेख किया गया है। इसमें कहा गया है कि ''हम भारत के लोग... संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई. को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।''

❐ उद्देशिका का महत्व (Importance of Preamble)

प्रस्तावना को संविधान की आत्मा कहा गया है। संविधान सभा के एक सदस्य के. एम. मुंशी ने प्रस्तावना को संविधान की राजनीतिक कुंडली कहा था, जिसका अर्थ यह है कि संविधान की वास्तविकताएं और उसकी मूल विशेषताएं एवं दर्शन प्रस्तावना में प्रदर्शित होता है। संविधान की प्रस्तावना संविधान की व्याख्या का आधार प्रस्तुत करती है। यह संविधान का दर्पण है, जिसमें संविधान की सम्पूर्ण तस्वीर दिखाई देती है। यह संविधान का चहेरा है, जिसमें संविधान की पहचान होती है।

प्रस्तावना के महत्व को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत समझ सकते हैं –

1) जब कोई संविधान का अनुच्छेद अस्पष्ट और उसका सही अर्थ जानने में कठिनाई हो, तो स्पष्टीकरण के लिए प्रस्तावना की भाषा का सहारा लिया जा सकता है।
2) जब संविधान के किन्हीं दो अनुच्छेदों में कोई विरोधाभास या टकराहट उत्पन्न हो, तो वहां संविधान निर्माताओं के आशय को समझने के लिए प्रस्तावना की सहायता ली जा सकती है।
3) प्रस्तावना का महत्व इस बात से भी स्पष्ट होता है कि यह संविधान के स्वरूप, कार्यप्रणाली तथा राजनीतिक व्यवस्था को प्रकट करने के साथ-साथ भावी भारत के स्वरूप को भी चित्रित करती है।
4) प्रस्तावना प्रत्येक सरकार को नीति निर्माण करने में मार्गदर्शन करती है। सरकार से यह अपेक्षा की जाती है कि विभिन्न संवैधानिक व कानूनी उपबंध को लागू करते समय वह प्रस्तावना में दिए गए आदर्शों व लक्ष्यों को प्राथमिकता प्रदान करें।
5) प्रस्तावना उन आदर्शों एवं लक्ष्यों का वर्णन करती है, जिसे प्राप्त करना भारत राज्य का उद्देश्य है। इसी के आधार पर जनता सरकार के कार्यों का निष्पक्ष तरीके से मूल्यांकन कर सकती है। वह देख सकती है कि क्या सरकार ने इन लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु कितना सार्थक प्रयास किया है।
6) न्यायपालिका भी न्याय निर्णय करते समय प्रस्तावना के मूल्यों को ही आधार बनाती है।
7) प्रस्तावना प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व विकास हेतु आवश्यक दशाओं का उल्लेख करती है, जिसमें स्वतंत्रता, समानता और न्याय प्रमुख हैं। साथ ही साथ बंधुत्व की भावना को बढ़ाकर राष्ट्र की एकता व अखण्डता को सुनिश्चित करती है।

- **उद्देशिका व संविधान में संबंध (Relation between Constitution & Preamble)**

प्रस्तावना संविधान का अंग है या नहीं? इस प्रश्न पर काफी विवाद रहा है। संविधान सभा की कार्यवाही देखने से यह पता चलता है कि संविधान निर्माताओं ने इसे संविधान के अंग के रूप में स्वीकार किया था, किन्तु बेरूबारी मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने मत व्यक्त किया कि प्रस्तावना संविधान का अंग नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार यह भले ही संविधान निर्माताओं के सोच को प्रकट करने वाली कुंजी है, किन्तु इसके न रहने से संविधान के मूल उद्देश्य में कोई अन्तर नहीं पड़ता है। यह न तो सरकार की शक्ति को प्रदान करने का स्रोत है और न ही उसकी शक्ति को किसी भी प्रकार से संकुचित करती है।

कालान्तर में केशवानन्द भारती केस में सर्वोच्च न्यायालय ने पूर्व की व्याख्या को अस्वीकार कर दिया और यह निर्धारित किया कि प्रस्तावना संविधान का अंग है। वास्तव में प्रस्तावना भारतीय संविधान के मौलिक संरचना का एक महत्वपूर्ण एवं विशेष भाग है। संविधान की भाषा अस्पष्ट एवं संदिग्ध हो, तो ऐसी अवस्था में प्रस्तावना का सहारा लिया जा सकता है, अर्थात् – प्रस्तावना भारतीय संविधान की आत्मा है।

- **प्रस्तावना की आलोचना (Criticism of Preamble)**

विभिन्न विचारक प्रस्तावना की आलोचना करते हैं, जिसे निम्नलिखित बिन्दुओं के तहत समझा जा सकता हैं –

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

1) प्रस्तावना न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है। अत: इसका कोई कानूनी महत्व नहीं है।

2) प्रस्तावना में स्पष्टता का अभाव है, क्योंकि इसमें आदर्शों एवं लक्ष्यों को सही ढंग से परिभाषित नहीं किया गया है। जैसे – पंथनिरपेक्षता, समाजवाद आदि शब्द विवादित विषय के रूप में रहे हैं।

3) प्रस्तावना सैद्धान्तिक आदर्श तो प्रस्तुत करती है, लेकिन कार्य विधि की चर्चा व्यवहार में स्पष्ट नहीं की।

4) प्रस्तावना सिद्धान्तत: न तो विधायिका शक्ति का स्रोत है और न ही उसकी शक्तियों पर प्रतिबंध लगाती है।

- **निष्कर्ष (Conclusion)**

नि:संदेह रूप से प्रस्तावना का कानूनी महत्व न हो, लेकिन अनौपचारिक महत्व ज्यादा है। यह सरकार के लिए मार्गदर्शक का काम करती है और संविधान के विभिन्न उपबंधों की व्याख्या करने तथा मतभेद को सुलझाने में भी सहायता करती है। साथ ही सरकार संवैधानिक उपबंधों को लागू करते समय प्रयास करती है कि प्रस्तावना में दिए गए आदर्शों एवं लक्ष्यों की सर्वोत्तम प्राप्ति हो सके। इस प्रकार प्रस्तावना साध्य है, जिसकी पूर्ति संविधान के माध्यम से हो सकती है।

आकार IAS
Shaping Your Dreams

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

भारत संघ और उसका राज्यक्षेत्र
The Union of India and Its Territory

भारतीय संविधान के भाग 1 में यह बताया गया है कि भारत के राज्यक्षेत्र (Indian Territory) में किस-किस प्रकार की इकाइयां होंगी और उनका भारत संघ के साथ क्या संबंध होगा। इस भाग का उल्लेख अनुच्छेद 1 से 4 तक में किया गया है, जो निम्नलिखित है –

- **अनुच्छेद - 1 : संघ का नाम और राज्यक्षेत्र (Name and territory of the Union)**

  अनुच्छेद - 1(1) में कहा गया है कि भारत, अर्थात् - इंडिया **राज्यों का संघ** होगा (India, that is Bharat, shall be Union of States)। यह अनुच्छेद दो बातों को स्पष्ट करता है - **1)** देश का नाम और **2)** शासन पद्धति का प्रकार।

1) देश का नाम - इसमें भारत, अर्थात् - इंडिया का प्रयोग किया गया है, जिससे यह प्रश्न उठता है कि एक ही देश के दो नामों का उल्लेख करने की क्या आवश्यकता थी? संविधान सभा में देश के नाम को लेकर एकमत नहीं थे। कुछ सदस्य भारत की प्राचीन परम्परा और संस्कृति पर बल दे रहे थे। अत: वे इसके परम्परागत् नाम भारत को रखना चाहते थे। दूसरी ओर कुछ सदस्य आधुनिक नाम इंडिया रखना चाहते थे। यहां उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्र संघ, अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं तथा अन्तराष्ट्रीय समझौतों में राष्ट्र के नाम के रूप में इंडिया का प्रयोग किया गया था। अत: संविधान सभा ने सर्वसम्मति से दोनों नामों को स्वीकार कर लिया।

2) शासन पद्धति का प्रकार - संविधान सभा में इस बात पर भी काफी विवाद था कि भारत को कौन-सी शासन प्रणाली को अपनाना चाहिए? संविधान सभा के समक्ष केन्द्र और राज्य के संबंध के आधार पर दो प्रकार की शासन प्रणालियां उपलब्ध थीं - एकात्मक ढांचा (Unitary Structure) और संघात्मक ढांचा (Federal Structure)। एकात्मक ढांचे के तहत् समस्त शक्तियां एवं कार्य केन्द्र सरकार में निहित होती हैं, जैसे - ब्रिटेन, फ्रांस, जापान, चीन आदि। दूसरी ओर संघात्मक ढांचे में शक्ति एवं कार्य का विभाजन केन्द्र व राज्य सरकार के मध्य होता है। दोनों अपने अधिकार क्षेत्रों का प्रयोग स्वतंत्रतापूर्वक करते हैं, जैसे - अमेरिका, कनाड़ा, ऑस्ट्रेलिया, ब्राजील आदि।

संविधान सभा में ज्यादा सहमति इस बात पर थी कि भारत में संघात्मक ढांचे की तरह केन्द्र और राज्यों के मध्य शक्तियों का वितरण होना चाहिए। किन्तु तत्कालीन समय में स्वतंत्र भारत के समक्ष राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता को बनाए रखना भी बहुत बड़ी चुनौती थी। अत: हम राज्यों को संघात्मक ढांचे की तरह इतनी स्वतंत्रता नहीं दे सकते थे कि आगे चलकर राष्ट्रीय एकता पर खतरा उपस्थित हो जाए। वहीं दूसरी ओर कुछ सदस्य भारत को एक सशक्त राष्ट्र बनाने हेतु मजबूत केन्द्र (एकात्मक ढांचे की ओर झुकाव) के पक्ष में थे। परन्तु भारत की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विविधता को ध्यान में रखते हुए एकात्मक ढांचा सफल नहीं हो सकता था।

इस प्रकार दोनों शब्दों के प्रयोग से बचते हुए संविधान सभा ने भारत को '**राज्यों का संघ**' (Union of States) घोषित किया। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने संघीय राज्य शब्द के स्थान पर राज्यों का संघ शब्द का प्रयोग करने के पीछे दो कारण बताए हैं –

1) भारत संघ राज्यों के बीच किसी समझौते का परिणाम नहीं है, जैसे - अमेरिकी संघ।

2) किसी भी राज्य को भारत संघ से पृथक होने का अधिकार नहीं है।

- **अनुच्छेद 1(3)** के अनुसार भारत के राज्यक्षेत्र को (Territory) को तीन वर्गों में बांटा गया है –

1) राज्यों का क्षेत्र (The Territories of the States)।

2) संघ राज्यक्षेत्र (The Union Territories)।

3) ऐसे अन्य राज्यक्षेत्र, जिन्हें किसी भी समय भारत सरकार द्वारा अधिग्रहित किया जाए (Such Other Territories as may be Acquried)।

संविधान की प्रथम अनुसूची में सभी राज्यों एवं संघ शासित राज्यों के नाम, उनके क्षेत्र विस्तार आदि दिया गया है। वर्तमान में 29 राज्य तथा 7 संघ शासित प्रदेश हैं। भारत द्वारा अर्जित राज्यक्षेत्रों की सूची में वर्तमान में कोई क्षेत्र शामिल नहीं है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **अनुच्छेद - 2 : नए राज्यों का प्रवेश या स्थापना (Admission or Establishment of new States) -**

संसद, विधि द्वारा ऐसे निर्बंधनों और शर्तों पर, जो वह ठीक समझे, संघ में नए राज्यों का प्रवेश या उसकी स्थापना कर सकेगी। इस अनुच्छेद के तहत् संसद को दो प्रकार की शक्तियां प्राप्त हैं -

1) नए राज्यों को भारत संघ में शामिल करने की शक्ति।

2) नए राज्यों को स्थापित करने की शक्ति।

पहली शक्ति का संबंध उन राज्यों के प्रवेश से है, जो पहले से अस्तित्व में हैं। जबकि दूसरी शक्ति का संबंध उन राज्यों को स्थापित करने से है, जो अभी स्थापित नहीं हैं, किन्तु भविष्य में स्थापित किया जा सकता है। इस अनुच्छेद के तहत् सिक्किम को भारत मे मिलाकर उसे पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया। यहां उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद 2 में राज्यों की तुलना में केन्द्र का अधिक महत्व दिखाई देता है, क्योंकि नए राज्यों का भारत संघ में शामिल करने के लिए संसद को राज्यों की अनुमति की आवश्यकता नहीं है।

- **अनुच्छेद - 3 :नए राज्यों का निर्माण और वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन (Formation of new States and Alteration of areas, boundaries or names of existing states)**

इस अनुच्छेद के द्वारा संसद को यह शक्ति दी गई है कि वह विधि के द्वारा -

1) किसी राज्य में से उसका राज्य क्षेत्र अलग करके अथवा दो या अधिक राज्यों को या राज्यों के भागों को मिलाकर अथवा किसी राज्य क्षेत्र को किसी राज्य के भाग के साथ मिलाकर नए राज्य का निर्माण कर सकेगी;

2) किसी राज्य का क्षेत्र बढ़ा सकेगी;

3) किसी राज्य का क्षेत्र घटा सकेगी;

4) किसी राज्य की सीमाओं में परिवर्तन कर सकेगी;

5) किसी राज्य के नाम में परिवर्तन कर सकेगी।

ध्यातव्य है कि राज्यों की सीमाओं और नामों में परिवर्तन करने के लिए संसद को एक निश्चित प्रक्रिया का पालन करना होता है, जो निम्नलिखित है -

1) नए राज्य के निर्माण, नाम, क्षेत्र या सीमा बदलने संबंधी कोई विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश से ही संसद में पेश किया जा सकता है।

2) राष्ट्रपति ऐसे विधेयक को संबंधित राज्य की विधानमण्डल के पास विचारार्थ भेजेगा। राष्ट्रपति इसके लिए समय-सीमा भी निर्धारित करेगा।

3) राज्य विधानमण्डल निश्चित समय-सीमा के अंदर अपनी राय राष्ट्रपति को प्रस्तुत करेगा। यहां उल्लेखनीय है कि राष्ट्रपति विधानमण्डल द्वारा दी गई राय को मानने के लिए बाध्य नहीं है। वह इसे स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है।

इस तरह यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 3 के अन्तर्गत राज्य के निर्माण संबंधी शक्ति केवल संसद के पास है, जो केन्द्र के शक्तिशाली और राज्यों के कमजोर होने की ओर संकेत करता है। दूसरे शब्दों में संसद राज्य विधानमण्डल की अनुमति के बिना भी नए राज्यों के नाम, सीमा, क्षेत्र आदि में परिवर्तन कर सकती है।

संघ सरकार राज्य को समाप्त कर सकती है, किन्तु राज्य सरकार संघ को समाप्त नहीं कर सकती है। इसीलिए भारत को विनाशी राज्यों का अविनाशी संघ (an indestructible union of destructible states) कहा जाता है। वहीं दूसरी ओर अमेरिका में संघीय सरकार नए राज्यों का निर्माण या उनकी सीमाओं में परिवर्तन बिना संबंधित राज्यों की अनुमति के नहीं कर सकती है। इसलिए अमेरिका को अविनाशी राज्यों का अविनाशी संघ (an indestructible union of indestructible states) कहा जाता है।

वस्तुत: इस प्रावधान के पीछे संविधान सभा भारत को एक मजबूत राष्ट्र बनाना चाहती थी। संविधान सभा जानती थी कि स्वतंत्रता के पश्चात् भी राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में राज्यों के पुनर्गठन का प्रश्न बार-बार खड़ा होगा। अत: ऐसी परिस्थितियों में केन्द्र का मजबूत होना अतिआवश्यक है, ताकि वह सरलतापूर्वक इन समस्याओं का समाधान कर सके।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **अनुच्छेद - 4**

इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि अनुच्छेद - 2 के तहत् नए राज्यों का प्रवेश या गठन तथा अनुच्छेद - 3 के तहत् नए राज्यों के निर्माण, सीमाओं, क्षेत्रों और नाम में परिवर्तन को संविधान के अनुच्छेद 368 के तहत् संशोधन नहीं माना जाएगा। इसका अर्थ यह है कि इस तरह के प्रावधान को संसद साधारण बहुमत तथा साधारण विधायी प्रक्रिया के तहत् पारित कर सकती है।

भारतीय राज्यक्षेत्र का एकीकरण एवं पुनर्गठन
Integration and Reorganisation of Indian Territory

आज विश्व के मानचित्र पर 200 से अधिक राष्ट्र हैं, जिनमें से अधिकांश को एक आधुनिक राष्ट्र बनने के लिए अनेक आन्तरिक व बाह्य समस्याओं से गुजरना पड़ा है। ठीक इसी तरह आज भारत हमें एक सशक्त राष्ट्र के रूप में नजर आता है, उसे भी एक आधुनिक राष्ट्र बनने में कई आन्तरिक व बाह्य समस्याओं से गुजरना पड़ा है।

स्वतंत्रता के पूर्व भारत विभिन्न देशी रियासतों, फ्रांसीसी, पुर्तगाली तथा ब्रिटिश उपनिवेश का ढीला-ढाला समूह मात्र था। संविधान सभा के गठन के बाद भारत के सामने सबसे विकट समस्या यही थी कि भारत का एकीकरण कैसे किया जाए? इतना विशाल भौगोलिक क्षेत्रफल, जातीय असमानता, धार्मिक विविधता, भाषायी विभिन्नता और बहुसंस्कृतिवाद जैसी कई गंभीर समस्याएं थीं। अत: भारत का एकीकरण कई चरणों में हुआ है, इसे हम निम्नलिखित ढंग से समझ सकते हैं।

भारत का एकीकरण

देसी रियासतों का एकीकरण	यूरोपीय उपनिवेशों का भारत में विलय	अन्य क्षेत्रों का भारत में विलय	राज्यों का पुनर्गठन

❐ देसी रियासतों का एकीकरण (Integration of Princely States)

स्वतंत्रता पूर्व भारतीय भू-भाग पर ब्रिटिश प्रांतों के अलावा देसी रियासतों का अस्तित्व था, जो भारत के कुल भू-भाग के 40 प्रतिशत था। ब्रिटिश प्रांतों पर ब्रिटिश सरकार का प्रत्यक्ष शासन था, जबकि देसी रियासतों पर ब्रिटिश सरकार का अप्रत्यक्ष शासन था। इन देसी रियासतों को आंतरिक स्वतंत्रता तो थी, किन्तु उनके बाह्य संबंध एवं विदेशी मामलों पर ब्रिटिश सरकार का नियंत्रण था।

भारत की स्वतंत्रता के साथ दो प्रश्न महत्वपूर्ण रूप से जुड़े हुए थे - **1)** भारत का विभाजन और **2)** देसी रियासतों का भविष्य। इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए ब्रिटिश सरकार ने 18 जुलाई, 1947 ई. में भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 को पारित किया, जिसके प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित थे -

1) इस अधिनियम द्वारा भारत का विभाजन कर दो स्वतंत्र डोमिनियनों भारत और पाकिस्तान का सृजन किया गया, जिन्हें ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से अलग होने की स्वतंत्रता थी।

2) इस अधिनियम द्वारा भारतीय रियासतों पर ब्रिटिश सम्प्रभुता की समाप्ति की घोषणा की गई।

3) इस अधिनियम में भारतीय रियासतों को यह स्वतंत्रता दी कि चाहे तो वह भारतीय डोमिनियन या पाकिस्तान डोमिनियन के साथ मिल सकती है या स्वतंत्र रह सकती है।

अब यह देखना महत्वपूर्ण था कि 600 देसी रियासतें किस प्रकार व्यवहार करेंगी? क्योंकि प्रस्तावित अधिनियम के पश्चात् देसी रियासतें पूर्णरूप से स्वतंत्र थीं। अब इनकी इच्छा पर था कि वह पाकिस्तान में मिले या भारत में अथवा अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखे। किन्तु देसी रियासतों के लिए व्यवहारिक परिस्थितियां अलग थीं, क्योंकि इन देसी रियासतों में से ज्यादातर रियासतें छोटी राजनीतिक व आर्थिक दृष्टि से शक्तिहीन और चारों ओर से भारत से घिरी हुई थी। अत: यह स्वाभाविक था कि इन देसी रियासतों का विलय भारतमें हो, परन्तु प्रश्न यह था कि किन शर्तों के साथ तथा भारत में इनकी क्या स्थिति होगी। यह फैसला भारत और इन रियासतों को 15 अगस्त, 1947 तक करना था।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

इस संदर्भ में सरदार वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में जून, 1947 ई. को रियासती मंत्रालय का गठन किया गया, जिसमें वी. पी. मेनन को सचिव बनाया गया। इस विकट परिस्थिति में सरदार पटेल ने कश्मीर, जूनागढ़ तथा हैदराबाद की रियासतों को छोड़कर सभी रियासतों से 15 अगस्त, 1947 ई. तक भारत में अपनी सूझबूझ से स्थायी समझौता करके विलय करवा लिया। हैदराबाद और कश्मीर जैसी बड़ी रियासतों ने आखिरी मौके तक भारत या पाकिस्तान के साथ विलय न करके भारतीय राजनीतिक-भूक्षेत्र की एकीकरण योजना में अडंगा लगाया। दूसरी तरफ जूनागढ़ का नवाब अपनी रियासत के प्रति इतना उदासीन था कि वह समय रहते भारत व पाकिस्तान में से किसी के साथ भी अपना भविष्य तय ही नहीं कर पाया।

- **जम्मू-कश्मीर समस्या**

जम्मू-कश्मीर राज्य में मुस्लिम सम्प्रदाय के लोग बहुसंख्यक है, किन्तु वहां का शासक एक हिन्दू महाराजा हरि सिंह था। महाराजा हरि सिंह ने विभाजन के बाद कश्मीर की प्रभुसत्ता को बनाए रखने के उद्देश्य से भारत और पाक के साथ '**यथास्थिति बनाए रखने के समझौते**' का प्रस्ताव दोनों सरकार के पास भेजा।

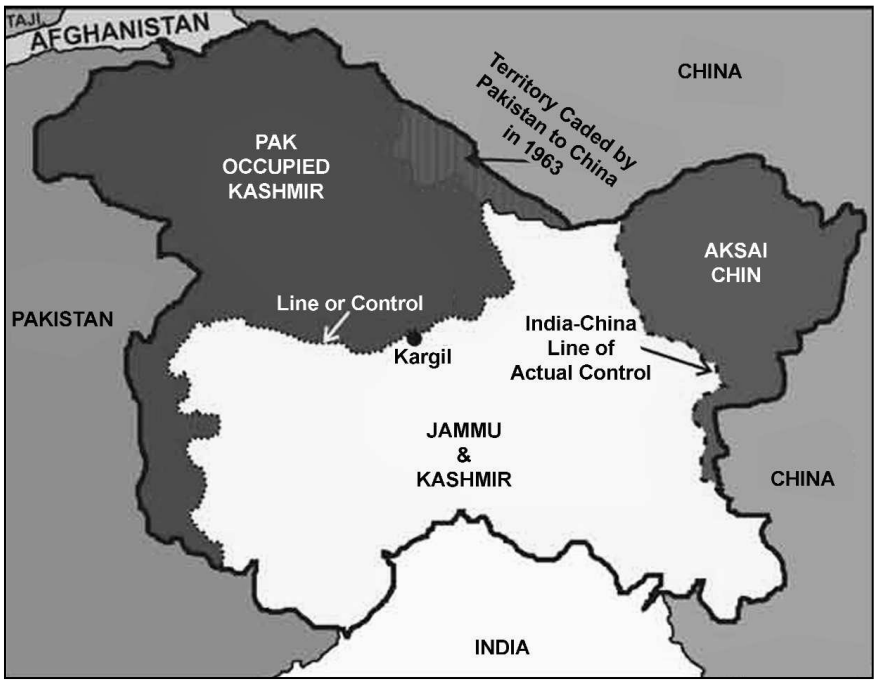

भारत सरकार ने उनके प्रस्ताव पर विचार-विमर्श किया, परन्तु पाकिस्तान ने इसे एक अवसर के रूप में देखा तथा कश्मीर को हस्तगत करने के उद्देश्य से महाराजा पर दबाव बनाया तथा जम्मू-कश्मीर को आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति बंद कर दी। परन्तु महाराजा ने जल्दबाजी में कोई निर्णय लेने से इनकार कर दिया।

परिणामस्वरूप 22 अक्टूबर, 1947 को पाकिस्तान सेना के कर्नल अकबर खान के नेतृत्व में कबायली छापामारों ने जम्मू-कश्मीर पर आक्रमण (ऑपरेशन गुलमर्ग) कर दिया। इस आक्रमण से राजा हरि सिंह इतने भयभीत हो गए कि उन्होंने भारत से सहायता की मांग की। 24 अक्टूबर को लॉर्ड माऊण्टबेटन की अध्यक्षता में रक्षा समिति की बैठक हुई, जो इस निष्कर्ष पर पहुंची कि सर्वप्रथम महाराजा हरि सिंह को भारत के साथ विलय के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेना चाहिए, तभी भारत मदद कर सकेगा। परिणामस्वरूप 26 अक्टूबर, 1947 ई. को हरि सिंह ने विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए।

विलय पत्र में यह व्यवस्था की गई थी कि जम्मू-कश्मीर के संदर्भ में भारत को प्रतिरक्षा, विदेशी मामलों तथा संचार के अधिकार प्राप्त होगा तथा युद्ध समाप्ति के पश्चात् जनमत संग्रह करवाया जाएगा। इसके पश्चात् भारत की सेना ने कश्मीर रियासत के लगभग 2/3 भू-भाग को आक्रमणकारियों से खाली करा लिया, किन्तु 1/3 भू-भाग पर पाकिस्तान का कब्जा बना रहा। अब भारत सरकार ने यह महसूस किया कि कश्मीर के मुद्दे पर यह तनाव भारत-पाकिस्तान के मध्य एक खुले युद्ध के रूप में न बदल जाए।

अत: भारत ने 31 दिसम्बर, 1947 को यह मामला संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) में उठाया। 1 जनवरी, 1949 ई. को UNO के प्रस्ताव के अनुसार सभी मोर्चो पर युद्ध विराम लागू कर दिया गया। युद्ध विराम रेखा, जो अब '**नियंत्रण रेखा**' (LOC) कहलाती है। इसके अनुसार 32,000 वर्ग मील क्षेत्र पाकिस्तान के कब्जे में रह गया, जिसे **पाक अधिकृत कश्मीर/आजाद कश्मीर** (Pak Occupied Kashmir) का नाम दिया। जब 26 जनवरी, 1950 ई. को भारत का संविधान लागू किया गया, तब जम्मू-कश्मीर को संविधान के अनुच्छेद 370 के अधीन विशेष स्थिति प्रदान की गई। यद्यपि यह अस्थायी प्रावधान था, लेकिन आज तक इस संबंध में कोई स्थायी व्यवस्था नहीं की जा सकी है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

- **जूनागढ़ का विलय**

जूनागढ़ की स्थिति कश्मीर से विपरीत थी। यहां बहुसंख्यक जनता हिन्दू तथा नवाब मुस्लिम था। जूनागढ़ की भौगोलिक स्थिति को देखा जाए, तो वह भारत के पक्ष में थी। यहां का नवाब 15 अगस्त तक कोई निर्णय नहीं कर पाया था। जब यहां की स्थिति अराजक हो गई, तो नवाब ने अपनी रुचि पाकिस्तान के विलय में दिखाई, लेकिन जनता ने इसके विरुद्ध भारत विलय में रुचि दिखाई। जनता ने नवाब के विरुद्ध विद्रोह कर दिया तथा नवाब को मजबूर होकर पकिस्तान भागना पड़ा।

तत्पश्चात् जूनागढ़ के दीवान (शाहनवाज भूट्टो) ने भारत के साथ विलय का प्रस्ताव रखा, जिसे भारत ने स्वीकार कर लिया। आगे चलकर जनवरी 1948 ई. में एक जनमत संग्रह द्वारा जूनागढ़ की जनता ने भी अपने भारत में विलय को मंजूरी प्रदान कर दी।

- **हैदराबाद का विलय**

हैदराबाद की स्थिति भी जूनागढ़ की तरह ही थी। यह रियासत भी चारों ओर से भारत से घिरी हुई थी। यहां हिन्दू बहुसंख्यक में थे, जबकि शासक निजाम मुसलमान था। निजाम चाहता था कि हैदराबाद एक स्वतंत्र राज्य बने रहे, जिसे पाकिस्तान ने अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन दिया। लेकिन इसी बीच कट्टरपंथी नेता कासिम रिजवी के नेतृत्व में रज़ाकारों (मुस्लिम सैन्य संगठन) ने राज्य में आतंक फैलाकर कानून व्यवस्था समाप्त कर दी। रज़ाकारों ने राज्य की हिन्दू जनता पर भयंकर अत्याचार करना प्रारंभ कर दिया तथा भय उत्पन्न कर हैदराबाद में एक प्रकार की अव्यवस्था पैदा कर दी। अत: इन विपरीत पस्थितियों में सितम्बर 1948 ई. को गृह मंत्री सरदार पटेल के सीधे नियंत्रण में '**ऑपरेशन पोलो**' के नाम से कार्यवाही की गई। हैदराबाद ने भारतीय सेना के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया, परिणामस्वरूप भारत में उसका विलय हो गया।

❐ यूरोपीय उपनिवेशों का भारत में विलय (Accession of European Colonies to India)

ब्रिटिश के अलावा फ्रांस व पुर्तगाल के उपनिवेश भी भारत में थे।

- **फ्रांस**

फ्रांस के पास पांडिचेरी, कराइकल, यनम, माहे और चन्द्र नगर क्षेत्र थे। नवम्बर 1954 ई. तक भारत का फ्रांसीसी उपनिवेशों पर व्यवहारिक नियंत्रण स्थापित हो गया था। कालान्तर 1956 ई. में भारत व फ्रांस के मध्य विलय संबंधी औपचारिक संधि हुई, जिसे फ्रांसीसी संसद द्वारा अनुमोदित कर दिया गया।

- **पुर्तगाल**

पुर्तगाल के पास दमन एवं दीव, दादर नागर हवेली तथा गोवा के क्षेत्र थे। पुर्तगाल सरकार ने इन उपनिवेशों को अधिकारिक तौर पर पुर्तगाली क्षेत्र घोषित किया, किन्तु इन क्षेत्रों की जनता को पुर्तगाली शासन स्वीकार नहीं था। परिणामस्वरूप यहां की जनता ने विद्रोह कर पुर्तगाली शासन को उखाड़ फेका। पुर्तगाली सरकार ने विद्रोहियों का बहुत ही क्रूर ढंग से दमन किया।

पुर्तगाली दमन व शोषण के विरुद्ध 18 दिसम्बर, 1961 ई. को भारतीय सेना ने पुर्तगाली क्षेत्रों पर आक्रमण कर दिया। पुर्तगाल इस मामले को संयुक्त राष्ट्र में ले गया, किन्तु सोवियत संघ के वीटो के कारण उसका मामला खारिज हो गया। अन्तत: 19 दिसम्बर, 1961 ई. को पुर्तगाल ने आत्मसमर्पण कर दिया तथा दमन एवं दीव, दादर नागर हवेली तथा गोवा के क्षेत्रों का भारत में विलय हो गया।

❐ अन्य क्षेत्रों का भारत में विलय (Accession of Other Territories to India)

अन्य क्षेत्रों में अण्डमान-निकोबार, लक्ष्यद्वीप तथा सिक्किम आदि का विलय है। भारत की स्वतंत्रता के तुरंत बाद वल्लभ भाई पटेल ने भारतीय नौ-सेना को लक्ष्यद्वीप भेजकर उसे भारत का अंग घोषित किया। वहीं दूसरी ओर स्वतंत्रता से पूर्व अण्डमान-निकोबार पर आजाद हिन्द फौज ने अपना शासन स्थापित कर लिया था। अत: स्वतंत्रता के पश्चात् अण्डमान-निकोबार पर नियंत्रण कर उसे भारत में मिला लिया गया।

सिक्किम का विलय 1975 ई. में हुआ। स्वतंत्रता के समय ही सिक्किम की जनता भारत में विलय चाहती थी, किन्तु राजतंत्र होने के कारण ऐसा नहीं हो पाया। आगे चलकर सिक्किम में लोकतंत्र की मांग उठने लगी तथा जनता ने राजतंत्र को समाप्त कर भारत में अपने विलय की प्रतिबद्धता को दर्शाया। सिक्किम विधानसभा ने जनता का सम्मान करते हुए एक जनमत संग्रह करवाया, जिसमें भारत

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

के विलय के पक्ष में बहुमत प्राप्त हुआ। परिणामस्वरूप भारतीय संसद में 36वां संविधान संशोधन विधेयक पारित किया, जिसके तहत् सिक्किम को भारत के अन्य राज्यों के समकक्ष बनाया गया।

❐ राज्यों का पुनर्गठन (Reorganisation of States)

स्वतंत्रता के साथ ही भारत में देसी रियासतों का विलय तथा भारत का विभाजन हुआ। इन दोनों घटनओं ने भारत के भूगोल पर व्यापक प्रभाव डाला तथा उसे बेमेल (अव्यवस्थित) बना दिया, जिसके कारण कई सांस्कृतिक व प्रशासनिक समस्याएं उत्पन्न होने लगी। अत: समय के साथ पर इन राज्यों के पुनर्गठन की मांग उठने लगी, किन्तु यह पुनर्गठन भाषायी आधार पर किया जाए या प्रशासनिक कुशलता के आधार पर, इस बात को लेकर मतभेद था।

वस्तुत: ब्रिटिश काल से ही भाषायी आधार पर राज्य के पुनर्गठन की मांग उठती रही है। सर्वप्रथम 1912 ई. में भाषायी आधार पर बिहार, उड़ीसा तथा असम का गठन किया गया था। 1913 ई. में भाषायी आधार पर तेलगु राज्य की स्थापना के लिए आन्ध्र महासभा की स्थापना की गई थी। इसके अलावा समय-समय पर राजनीतिक कारणों से कांग्रेस ने भी भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का समर्थन किया था।

स्वतंत्रता के पश्चात् भाषावार राज्य निर्माण के जिस विचार का समर्थन कांग्रेस ने किया था, अब वह देशव्यापी हो चुका था। आन्ध्र, तेलंगाना, बम्बई, मैसूर आदि स्थानों पर यह आन्दोलन का रूप लेता जा रहा था। इस मत की गंभीरता को परखते हुए संविधान सभा के सभापति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने नवम्बर, 1947 ई. को सेवानिवृत्त न्यायाधीश **एस. के. धर** की अध्यक्षता में एक चार सदस्यीय आयोग की नियुक्ति की। आयोग ने 19 दिसम्बर, 1948 ई. को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। आयोग ने क्षेत्रीय भाषा के आधार पर प्रांतों के गठन के विचार को स्वीकृति प्रदान नहीं की तथा प्रशासनिक सुविधा के सिद्धान्त को समर्थन दिया।

धर आयोग की रिपोर्ट का जनता द्वारा तीव्र विरोध हुआ। परिणामस्वरूप कांग्रेस कार्यसमिति ने अपने जयपुर अधिवेशन 1948 में राज्य पुनर्गठन हेतु पुन: एक समिति के गठन की घोषणा की, जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल तथा पट्टाभि सीतारमैया इस समिति के सदस्य थे। इस समिति ने 1 अप्रैल, 1949 ई. को अपनी रिपोर्ट पेश की, जिसमें भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की मांग को अस्वीकार कर दिया गया। नेहरू का मानना था कि अभी-अभी धर्म के आधार पर भारत का विभाजन हुआ है। भाषा जहां हमें जोड़ती है, वहीं भाषा हमें तोड़ भी सकती है। अत: भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन स्थगित कर दिया जाना चाहिए। इसके बदले देश की सुरक्षा, एकता और आर्थिक सम्पन्नता पर बल दिया जाना चाहिए। लेकिन साथ ही यह भी कहा गया कि जनता अगर व्यापक रूप से इस मांग को उठाती है, तो लोकतांत्रिक व्यवस्था के अनुरूप जनभावना का सम्मान करते हुए इस मांग पर विचार किया जाना चाहिए। अन्तत: संविधान सभा ने ब्रिटिश प्रांतों एवं देसी रियासतों का एकीकरण करके भारत में 4 प्रकार ('ए', 'बी', 'सी', 'डी') के राज्यों का गठन किया।

जे. बी. पी. समिति की रिपोर्ट जनमत को संतुष्ट नहीं कर सकी। संविधान लागू होने के बाद भी भाषायी आधार पर स्वायत्तता के लिए कई आन्दोलन हुए, लेकिन सबसे आक्रामक आन्दोलन आंध्र इलाके में तेलगु भाषी लोगों ने किया। तेलगु भाषियों के वरिष्ठ गांधीवादी कांग्रेसी नेता पोट्टी श्रीरामुलु के नेतृत्व में व्यापक आन्दोलन शुरू किया। 58 दिनों के आमरण अनशन के बाद 15 दिसम्बर, 1952 ई. को श्रीरामुलु की मृत्यु हो गई, जिससे आन्दोलन और भड़क गया। परिणामस्वरूप 19 दिसम्बर, 1952 ई. में नेहरू को तेलगु भाषियों के लिए पृथक आन्ध्र प्रदेश राज्य की घोषणा करनी पड़ी। अक्टूबर 1953 ई. को आन्ध्र प्रदेश राज्य का गठन हो गया। स्वतंत्रता के बाद भाषा के आधार पर गठित यह भारत का प्रथम राज्य था।

श्रीरामुलु पोट्टी के आमरण अनशन का देश के इतिहास व भूगोल पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। कालान्तर में पूरे देश के नक्शे को भाषायी आधार पर परिवर्तित कर दिया। अगर जवाहरलाल नेहरू आधुनिक भारत के निर्माता है, तो शायद श्रीरामुलु पोट्टी को इसका नक्शाकार कहा जाना चाहिए।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **राज्य पुनर्गठन आयोग**

भाषा के आधार पर आन्ध्र प्रदेश के गठन के बाद अन्य भाषा-भाषियों की मांग की अवहेलना नहीं की जा सकती थी। इसलिए केन्द्र सरकार ने 22 दिसम्बर, 1953 ई. को राज्य पुनर्गठन आयोग की नियुक्ति की घोषणा की। इस आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति फजल अली तथा सदस्य हृदयनाथ कुंजरू एवं के. एम. पणिककर थे। आयोग ने अक्टूबर, 1955 को अपनी रिपोर्ट केन्द्र सरकार को सौंपी। आयोग की प्रमुख सिफारिशे निम्नलिखित थीं -

1) **केवल** भाषा और संस्कृति की आधार पर राज्यों का पुनर्गठन नहीं किया जाना चाहिए।
2) राज्यों का पुनर्गठन करते समय राष्ट्रीय सुरक्षा, वित्तीय एवं प्रशासनिक कुशलता तथा पंचवर्षीय योजना की सफलता को भी ध्यान में रखना चाहिए।
3) पूर्णत: भाषायी आधार पर राज्य का पुनर्गठन व्यवहारिक दृष्टिकोण से तार्किक भी नहीं है। क्योंकि कोई भी ऐसा राज्य बनाना प्राय: अव्यवहारिक है, जहां पूर्णत: एकभाषी लोग ही हों।
4) यदि किसी स्थान पर रहने वाली जनसंख्या का 70 प्रतिशत या उससे अधिक एक ही भाषा का प्रयोग करता हो, तो उसे एकभाषी राज्य के रूप में पुनर्गठित किया जा सकता है।
5) यदि किसी क्षेत्र में दूसरी भाषा बोलने वालों की जनसंख्या 30 प्रतिशत से अधिक हो, तो उस राज्य को एकभाषी राज्य के रूप में पुनर्गठित करने के स्थान पर प्रशासनिक सुविधा के आधार पर पुनर्गठित किया जाना चाहिए।
6) भारतीय राज्यों के 'ए', 'बी', 'सी', 'डी' राज्यों के वर्गीकरण को समाप्त कर भारतीय संघ को 16 राज्यों तथा 3 संघ शासित क्षेत्रों में विभाजित कर देना चाहिए।

केन्द्र सरकार ने आयोग की सिफारिशों को संशोधनों के साथ स्वीकार कर लिया तथा 1 नवम्बर, 1956 ई. को संसद ने राज्य पुनर्गठन अधिनियम लागू कर दिया गया। इस अधिनियम में 'ए', 'बी', 'सी', 'डी' राज्यों का विभेद समाप्त कर भारत को राज्य तथा संघ राज्य क्षेत्र में बांटा गया। इसके तहत् 14 राज्यों एवं 6 संघ शासित प्रदेशों का गठन किया गया, जो निम्नलिखित हैं -

- **14 राज्य** - आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, बम्बई, जम्मू एवं कश्मीर, केरल, मध्य प्रदेश, मद्रास, मैसूर, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, एवं पश्चिम बंगाल।
- **6 संघ शासित राज्य** - अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, लक्ष्य द्वीप समूह, मणिपुर एवं त्रिपुरा।

- **1956 ई. के बाद भारतीय राज्य क्षेत्र का पुनर्गठन**

भारत के लिए यह विडम्बना ही रही कि 1956 ई. में राज्य पुनर्गठन अधिनियम लागू होने के बावजूद जातीवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद तथा पृथक्कतावाद जैसे तत्वों के आधार पर एक बार पुन: राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन और नए राज्यों के गठन का सिलसिला शुरू हो गया, जो निम्नलिखित है -

1) सर्वप्रथम 1 मई, 1960 ई. को मराठी एवं गुजराती भाषा-भाषियों के पारस्परिक संघर्ष के कारण सरकार ने बम्बई राज्य का बंटवारा कर के महाराष्ट्र व गुजरात नाम से 2 अलग-अलग राज्यों का गठन किया।
2) नागा आन्दोलन के कारण असम को विभाजित करके 1962 ई. में नागालैण्ड राज्य की स्थापना की गई।
3) 1966 ई. में पंजाब को विभाजित कर नए राज्य हरियाणा का गठन किया गया, जिसमें हिन्दी भाषी जनता का बाहुल्य था।
4) 25 जनवरी, 1971 ई. में हिमाचल प्रदेश को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया।
5) 1972 ई. में मेघालय, मणिपुर एवं त्रिपुरा को पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान किया गया।
6) मई, 1975 ई. में 36वां संविधान संशोधन द्वारा सिक्किम को पूर्ण राज्य की मान्यता दी गई।
7) 1987 ई. में मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश तथा गोवा को पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान किया गया।
8) 1, 9 एवं 15 नवम्बर, 2000 ई. में क्रमश: छत्तीसगढ़, उत्तराखण्ड एवं झारखण्ड राज्य की स्थापना की गई।
9) 3 जून, 2014 ई. को आन्ध्र प्रदेश को विभाजित कर नए राज्य तेलंगाना का गठन किया गया।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❒ भाषा के आधार पर राज्य का पुनर्गठन

वर्तमान में भारत में 29 राज्य एवं 7 केन्द्र शासित प्रदेश हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वर्तमान में भी कई क्षेत्रों में नए राज्यों के निर्माण की मांग लगातार उठ रही है, जैसे - महाराष्ट्र में विदर्भ, गुजरात में गोण्डवाना, बिहार में मिथिलांचल एवं भोजपुर, उड़ीसा में महाकौशल, असम में बोडोलैण्ड, पश्चिम बंगाल में गोरखालैण्ड, कर्नाटक में कोडगू, उत्तर प्रदेश में हरित प्रदेश (पश्चिमी उत्तर प्रदेश), अवध प्रदेश, ब्रज प्रदेश, पूर्वांचल एवं बुंदेलखण्ड आदि।

इनमें से कई राज्य वर्तमान में भाषा के आधार पर ही राज्यों के पुनर्गठन की मांग कर रहे हैं। प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या वर्तमान समय में भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन प्रासंगिक है? या दूसरे शब्दों में क्या भाषा के आधार पर राज्य का पुनर्गठन किया जाना चाहिए या नहीं?

- **पक्ष में तर्क**

1) भाषावादी राज्यों के समर्थकों का मानना है कि यदि भाषा के आधार पर राज्य का गठन किया जाए, तो प्रतिनिधि संस्थाएं बेहतर तरीके से कार्य करेंगी। लोकतंत्र की विभिन्न संस्थाएं, जैसे - व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, राजनीतिक दल, लोकसेवक आदि एक भाषा होने पर ही वांछित कार्य कर पाते हैं। इस प्रकार राज्य का भाषावादी आधार लोकतंत्र के सफल संचालन में सहयोगी बनाता है।

2) राज्य की भाषा एक होने पर प्रशासन सशक्त एवं कार्यकुशल बनता है। अनेक भाषाएं होने पर जब व्यवस्थापिका के सदस्य एक-दूसरे के विचारों को ही नहीं समझ पाते हैं, तो व्यवस्थापन में भी कृत्रिमता आ जाती है। लोकतंत्र में प्रशासन की सफलता जनता के व्यापक समर्थन पर निर्भर करती है और यह समर्थन तभी प्राप्त हो सकेगा, जब जनता और प्रशासन की लिखने और बोलने की भाषा एक ही हो।

3) भाषावादी राज्य में एक भाषा होने से राज्य को मजबूती मिलती है तथा सरकार की नीतियां जनसमर्थन प्राप्त कर पाती है। दूसरी ओर यदि राज्य में विभिन्न भाषाएं होंगी, तो बहुसंख्यक भाषी लोग सरकार की नीतियों के पक्ष में रहेंगे, जबकि दूसरी भाषा (अल्पसंख्यक) के लोग उसका विरोध करेंगे। बहुभाषी राज्य में प्राय: राजनीति नेतृत्व व प्रशासनिक पदों पर भाषायी बहुसंख्यकों का वर्चस्व हो जाता है। परिणामस्वरूप भाषायी अल्पसंख्यकों का शोषण होता है, जिससे समाज में एकता व सहयोग नहीं रह जाता है। फलत: राज्य कमजोर बनता है और सामान्य कार्यवाही करने में असक्षम हो जाता है। अनेक भाषाओं वाले राज्य में भेदभाव, तिरस्कार, पक्षपात आदि का बोलबाला हो जाता है, क्योंकि वहां भाषा का राजनीतिकरण कर उसे एक वोट बैंक में बदल दिया जाता है।

4) भाषा आधारित राज्य में संबंधित भाषा के विकास के लिए अनेक नीतियां अपनाई जाती हैं। राज्य साहित्यकारों और लेखकों को प्रोत्साहन देता है तथा जनता को भी भाषा के विकास के लिए प्रेरणा मिलती है।

5) एक भाषी राज्य बनने से समान शिक्षा नीति लागू करने में आसानी होती है। वहीं दूसरी ओर बहुभाषी राज्य में शिक्षा नीति को लागू करने में कई तरह की व्यवहारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

- **विपक्ष में तर्क**

1) भाषा के आधार पर राज्य का गठन सैद्धान्तिक रूप से तो सही प्रतीत होता है, किन्तु उसे व्यवहार में कभी-भी लागू नहीं किया जा सकता है। भारत एक बहुसांस्कृतिक राष्ट्र है, जहां विभिन्न प्रकार की संस्कृति, भाषा एवं बोलियां हैं। ऐसी स्थिति में हम कभी-भी एक भाषा-भाषी राज्य की सीमाएं नहीं खींच सकते हैं। व्यवहारिक तौर पर ऐसा राज्य बनाना संभव भी नहीं है, जहां समस्त लोग एक भाषी हो।

2) राज्य का गठन यदि भाषा के आधार पर किया जाए, तो इस आधार पर सम्भवत: देश में 100 राज्यों का निर्माण भी अपर्याप्त रहेगा और न ही यह आधार सभी को संतुष्ट कर सकता है।

3) भाषा के आधार पर छोटे-छोटे राज्यों का निर्माण होने के कारण क्षेत्रीय भावनाएं बढ़ती हैं। प्रत्येक भाषा-भाषी समुदाय अपने

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

क्षेत्र को पृथक राज्य बनाने के लिए ऐसे आंदोलन और तोड़फोड़ की कार्यवाही करता है, जिससे देश की शांति और व्यवस्था पर खतरा उत्पन्न हो जाता है। भाषा के आधार पर राज्यों की मांग प्राय: क्षेत्रीय भावनाओं एवं संकुचित स्वार्थों के आधार पर की जाती है, जिसके कारण राष्ट्रीय एकता खतरे में पड़ जाती है। भाषायी राज्यों के परिणामस्वरूप देश में अनेक राष्ट्रीयता पनपने लगती है, जो कभी अलगाववाद को भी जन्म दे देती है।

4) आज के इस वैश्वीकरण के युग में भाषा के आधार पर राज्य का निर्माण अतार्किक है, क्योंकि इससे संकुचित दृष्टिकोण का विकास होता है। इसके कारण अखिल भारतीय नेतृत्व विकसित नहीं हो सकेगा। भाषायी राज्य की जनता प्राय: अपने राज्य को पूर्णत: मानने लगती है। परिणामस्वरूप देश के अन्य राज्यों में रहने वाले लोगों के साथ अपनत्व की भावना का विकास नहीं हो पाता है।

5) भाषायी आधार पर राज्य बनाने से भाषा का राजनीतिकरण हो जाता है। क्षेत्रीय दल अपने राजनीतिक स्वार्थों को पूरा करने हेतु इसका दुरूपयोग करते हैं तथा अन्य भाषीय राज्यों के लोगों के साथ भेदभाव की नीति अपनाते हैं। जैसे - महाराष्ट्र में मराठी को लेकर आदि। दूसरा, ये क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय हितों की बजाय क्षेत्रीय हितों को प्राथमिकता देते हैं, जिससे राष्ट्र का अखिल भारतीय स्वरूप खण्डित होता है, जैसे - अखिल भारतीय प्रतियोगी परीक्षाओं में क्षेत्रीय भाषा का मुद्दा।

6) सामान्यत: भाषायी आधार पर राज्य का आकार छोटा होता है, लेकिन अनुभव यह बताता है कि छोटे राज्यों में प्रशासनिक भ्रष्टाचार, स्थानीयता, भाई-भतीजावाद एवं गुटबंधी का प्रभाव प्राय: अधिक रहता है।

7) एक भाषीय राज्य की बजाय बहुभाषीय राज्य दीर्घकालिक रूप से राष्ट्र हित में है। बहुभाषीय राज्य वर्तमान वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के दौर में बहुत प्रासंगिक है।

❐ क्या छोटे राज्य बनाए जाने चाहिए?

स्वतंत्रता के पश्चात् भाषा के आधार पर राज्य का पुनर्गठन किया गया, वहीं कुछ समय पश्चात् इसके पीछे अलगाववाद तथा क्षेत्रीयतावाद की भावना भी देखी गई। लेकिन वर्तमान में अब यह तर्क दिया जाता है कि छोटे राज्य प्रशासन और विकास की दृष्टि से बेहतर साबित होते हैं। अत: अब बेहतर प्रशासन के लिए छोटे राज्यों की मांग दिन-प्रतिदिन उठने लगी है। यह एक विवाद का विषय है कि राज्य के आकार तथा उसके प्रशासन के मध्य क्या कोई स्पष्ट संबंध है? इस संदर्भ में विभिन्न राजनीतिज्ञों द्वारा अलग-अलग प्रकार के तर्क दिए गए हैं।

◆ पक्ष में तर्क

1) क्षेत्रफल की दृष्टिकोण से भारत में कुछ राज्य यूरोप के कई देशों से बहुत बड़े हैं। अत: इनमें शांति तथा व्यवस्था ठीक ढंग से लागू नहीं हो पाती है, जिससे प्रशासन के समक्ष कई जटिल समस्याएं उत्पन्न होती हैं। जैसे - उत्तर प्रदेश (80 जिले)।

2) बड़े राज्यों में सामान्यत: सामाजिक-आर्थिक विषमता पाई जाती है। इसका प्रमुख कारण लोकतंत्र का विरोधाभास है। विभिन्न दल उन क्षेत्रों पर ज्यादा ध्यान देते हैं, जहां से उन्हें राजनीतिक लाभ प्राप्त होता है। अत: अन्य क्षेत्र उपेक्षित हो जाते हैं। जैसे - छत्तीसगढ़ तथा झारखण्ड, जो उपेक्षा के शिकार थे।

3) बड़े राज्य होने से भाषायी, जातीय व सांस्कृतिक विभिन्नताएं अधिक होती हैं, जिससे सरकार को नीति निर्माण में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। सरकार कितनी भी अच्छी नीति बना ले, कोई न कोई वर्ग या क्षेत्र असंतुष्ट रह ही जाता है।

4) बड़ा राज्य होने से राज्य सरकार व स्थानीय सरकार के मध्य बेहतर समन्वय नहीं हो पाता है, जिससे विकेन्द्रीकरण की अवधारणा ठीक ढंग से लागू नहीं हो पाती है।

5) बड़े राज्य होने से प्रशासनिक मशीनरी में जटिलता आती है तथा निर्णय में विलम्ब होता है, जबकि छोटा राज्य होने से प्रशासनिक गुणवत्ता अच्छी होती है तथा निर्णय त्वरित होते हैं।

6) छोटे राज्यों में लोकतंत्र ज्यादा बेहतर तरीके साकारित होता है। जनता अपने जनप्रतिनिधि तथा अधिकारियों से सरलतापूर्वक मिलकर अपनी समस्याओं को रख सकती है। दूसरे शब्दों में जनता की पहुंच आसान होती है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

7) छोटे राज्य अपनी क्षेत्रीय समस्याओं और प्राथमिकताओं को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं तथा उसके अनुसार बेहतर नीति का निर्माण कर सकते हैं।

8) छोटे राज्यों में पंचवर्षीय योजनाएं आसानी से लागू तथा क्रियान्वित की जा सकती हैं, जिससे सकारात्मक परिणामों की संभावनाएं बढ़ जाती हैं।

- **विपक्ष में तर्क**

1) बेहतर प्रशासन के तर्क के आधार पर छोटे राज्य के गठन का राजनीतिकरण हो गया है। विभिन्न क्षेत्रीय दल अपने राजनीतिक स्वार्थों के लिए आए दिन इस तरह की मांग करने लगते हैं। कई बार वे हिंसक मार्ग अपनाकर सार्वजनिक संपत्ति को नष्ट करते हैं, जिससे राष्ट्र की एकता-अखण्डता पर प्रश्न चिह्न लग जाता है।

2) सामान्यत: छोटे राज्य का गठन एक जाति, भाषा या क्षेत्र विशेष के आधार पर किया जाता है, जिससे क्षेत्रवाद को बढ़ावा मिलता है, जो दीर्घकालिक रूप से राष्ट्र के लिए उचित नहीं है।

3) प्राय: यह देखा गया है कि छोटे राज्यों में राजनीतिक अस्थिरता अधिक पाई जाती है। जैसे - झारखण्ड के गठन को अभी मात्र 15 वर्ष ही हुए हैं, किन्तु वहां 10 से अधिक मुख्यमंत्री बन चुके हैं।

4) छोटे राज्य आर्थिक रूप से सक्षम नहीं होते हैं। मिजोरम, नागालैण्ड, मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, सिक्किम, झारखण्ड आदि छोटे राज्य की परिभाषा पूरी करते हैं, किन्तु ये बिना केन्द्र की सहायता के कार्य करने में सक्षम नहीं है।

5) छोटे राज्य के पीछे यह तर्क दिया जाता है कि वहां बेहतर प्रशासन लाया जा सकता है, किन्तु हमें अनुभव यही बताता है कि छोटे राज्यों में सबसे अधिक भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद तथा लालफीताशाही है।

6) छोटे राज्य के निर्माण से क्षेत्रीय असंतुलन को बढ़ावा मिलता है। जैसे - झारखण्ड में कृषि भूमि अनुपातत: कम है, वनों और खनिजों की बहुतायतता है, जबकि बिहार में कृषि भूमि ज्यादा है, वन और खनिज की अनुपस्थिति है।

7) छोटे राज्य के निर्माण से राजनीतिक एवं प्रशासनिक खर्च बढ़ जाता है, जो कि भारत जैसे विकासशील देश के लिए सही नहीं है।

8) छोटे राज्य राष्ट्रीय राष्ट्रीय हितों की बजाय क्षेत्रीय हितों को प्राथमिकता देते हैं, जिससे राष्ट्र का अखिल भारतीय स्वरूप खण्डित होता है।

9) वर्तमान में वैश्वीकरण के युग में जहां सारा विश्व छोटा बनता जा रहा है, वहां छोटे राज्य की मांग तार्किक प्रतीत नहीं होती है।

राज्यों की पुनर्गठन की मांग को निष्पक्ष ढंग से देखा जाए, तो यह भौगोलिक विषमता, वृहद क्षेत्र, आर्थिक विषमता, भाषायी विविधता आदि की वजह से पैदा नहीं हुए है, बल्कि इसका मूल आधार प्रशासनिक भ्रष्टाचार, प्रशासन में राजनीतिक भ्रष्टचार तथा दलगत राजनीति का प्रभाव आदि ऐसी अनेक तथ्य जिम्मेदार हैं, जिनके कारण पिछड़े क्षेत्रों का विकास अवरुद्ध बना रहा है। जैसे-जैसे इन क्षेत्रों की राजनीतिक चेतना बढ़ रही है, वे इनका कारण इन तत्वों को मान रहे हैं। क्षेत्रीय दल भी ऐसे तत्वों को जिम्मेदार बताकर अपने राजनीतिक स्वार्थों की सिद्धि कर रहे हैं। वर्तमान में हमें राज्यों के पुनर्गठन की मांग को छोड़कर प्रशासनिक पारदर्शिता, प्रतिबद्धता, सूचना का अधिकार और ई-शासन पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

नागरिकता
Citizenship

भारत का संविधान नागरिकता से संबंधित पूरी विधि प्रस्तुत नहीं करता है। संविधान का भाग 2 केवल उन लोगों के बारे में उल्लेख करता है, जो संविधान लागू होने के समय, अर्थात् - 26 जनवरी, 1950 ई. में भारतीय नागरिक माने गए थे। भारतीय संविधान नागरिकता संबंधी शेष बातों के लिए कानून बनाने की शक्ति संसद को प्रदान करता है। अनुच्छेद-11 संसद को इस विषय पर विधि बनाने की शक्ति देता है। भारतीय संसद ने इस शक्ति का प्रयोग करते हुए 1955 ई. में भारतीय नागरिकता अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम में संविधान लागू होने के बाद नागरिकता की प्राप्ति व समाप्ति से संबंधित उपबंध दिए गए हैं।

प्राय: किसी भी देश में रहने वाले निवासियों को 4 वर्गों में विभाजित किया जाता है -

1) **नागरिक (Citizen)** - भारतीय संविधान में नागरिकता की कोई परिभाषा नहीं दी गई है। प्राय: नागरिक उस व्यक्ति को कहा जाता है, जो किसी राज्य में सामान्यत: स्थायी तौर पर निवास करता है तथा यह राज्य के पूर्ण सदस्य होते हैं और उनकी इसमें पूर्ण निष्ठा होती है। इन्हें उस राज्य के सभी राजनीतिक, सामाजिक व कानूनी अधिकार प्राप्त होते हैं तथा साथ ही उनसे राज्य द्वारा घोषित कर्तव्यों के पालन की अपेक्षा भी की जाती है। दूसरे शब्दों में नागरिकता संविधान द्वारा प्रदत्त वह अधिकार है, जो केवल नागरिकों को ही प्रदान किया जाता है। इनका उपयोग कोई विदेशी व्यक्ति नहीं कर सकता है।
2) **विदेशी व्यक्ति (Aliens)** - विदेशी व्यक्ति किसी अन्य देश के नागरिक होते हैं तथा उन्हें सभी राजनीतिक, सामाजिक व कानूनी अधिकार प्राप्त नहीं होते हैं। इनकी भी 2 श्रेणियां हैं - विदेशी मित्र व विदेशी शत्रु (Friendly & Enemy Aliens)।
3) **राज्यविहीन व्यक्ति (Stateless Person)** - राज्यविहीन व्यक्ति वह होता है, जिसके पास किसी भी देश की नागरिकता नहीं होती है या नागरिकता संबंधी वैध दस्तावेज नहीं होते हैं। उदाहरणार्थ - कोई बंग्लादेशी अवैध तरीके से भारत में प्रवास करता है तथा भारत में ही वैवाहिक संबंध स्थापित कर लेता है, तो उनकी संतान राज्यविहीन व्यक्ति कहलाएगी। असम में रहने वाले अनेक अवैध बांग्लादेशियों के बच्चों की स्थिति ऐसी ही है। सामान्यत: इस तरह के उदाहरण दो देशों की सीमाओं के आसपास ही पाए जाते हैं।
4) **शरणार्थी (Refugees)** - वह व्यक्ति, जिसने अपने मूल देश से अन्य देश को पलायन कर गया हो और इस पलायन का कारण कोई उत्पीडन या शोषण होता है। दूसरे शब्दों में जब किसी व्यक्ति या समूह को अपने धर्म, भाषा, राष्ट्रीयता, नस्ल आदि पर संकट नजर आता है, तो वह इससे बचने के लिए अन्य देश में शरण लेते हैं।

❐ भारतीय नागरिकों के विशेष अधिकार व कर्तव्य (Special Rights & Duties of Indian Citizens)

संविधान भारतीय नागरिकों को अन्य व्यक्तियों की तुलना में कुछ विशेष अधिकार देता है, जो केवल उन्हें ही प्राप्त होते हैं। ऐसे अधिकार व कर्तव्य निम्नलिखित हैं -

1) अनुच्छेद-15 - धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर विभेद के विरुद्ध अधिकार।
2) अनुच्छेद-16 - लोक नियोजन में अवसर की समानता का अधिकार।
3) अनुच्छेद-19 - वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, सम्मेलन, संघ, संचरण, निवास व व्यवसाय की स्वतंत्रता।
4) अनुच्छेद-29 व 30 - संस्कृति व शिक्षा संबंधी अधिकार।
5) संवैधानिक पदों पर नियुक्ति के अधिकार राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, सर्वोच्च तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, राज्यपाल, महान्यायवादी आदि।
6) मतदान करने का अधिकार।
7) संसद तथा राज्य विधानमण्डल की सदस्यता के लिए चुनाव लड़ने का अधिकार।

इन अधिकारों के साथ ही भारतीय नागरिकों से भाग 4(ए) के अनुच्छेद-51(ए) में दिए गए मूल कर्तव्यों के निर्वहन की भी अपेक्षा की जाती है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❒ भारतीय नागरिकता का स्वरूप (Nature of Indian Citizenship)

भारतीय संविधान भारत में एक संघीय व्यवस्था (Federal Structure) की स्थापना करता है, किन्तु यह एक नागरिकता को ही मान्यता देता है। राज्य की कोई अलग नागरिकता नहीं है। प्रत्येक नागरिक को सभी अधिकार, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां प्राप्त हैं, चाहे वह देश के किसी भी राज्य का निवासी हो। दूसरी ओर अमेरिका में स्थिति बिल्कुल भिन्न है, अमेरिकी संविधान संघीय सिद्धान्त को कठोरता से लागू किया गया है, वहां दोहरी नागरिकता है। अमेरिका में एक संघ की नागरिकता तथा दूसरी राज्य की नागरिकता जहां व्यक्ति पैदा हुआ हो। दोनों प्रकार की नागरिकता से भिन्न-भिन्न अधिकार व कर्तव्य नागरिकों को प्राप्त है।

भारत एक बहुसांस्कृतिक राष्ट्र है, जहां बहुत सारी जातियां, भाषायी विविधता तथा नस्लीय भिन्नता पाई जाती हैं। अतः भारत ने अपने देश में संघीय सिद्धान्त का आवश्यकतानुसार संशोधित रूप अपनाया है। एकल नागरिकता को मान्यता देकर भारत अपनी एकता व अखण्डता को बनाए रखना चाहता था तथा प्रत्येक नागरिक के हृदय में यह भावना को पैदा करना चाहता है कि वे सभी एक देश के ही निवासी है।

❒ भारतीय नागरिकता अधिनियम, 1955

भारतीय संविधान का अनुच्छेद-11 संसद को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह भारतीय नागरिकता के अर्जन तथा समाप्ति संबंधी अधिनियम बना सकती है। भारतीय संसद ने इस शक्ति का प्रयोग करते हुए 1955 में भारतीय नागरिकता अधिनियम पारित किया, जिसमें अभी तक कई बार संशोधन हो चुका है।

◆ नागरिकता का अर्जन (Acquisition of Citizenship)

भारतीय नागरिकता अधिनिय, 1955 के तहत 5 ऐसे तरीके बताए गए हैं, जिनके आधार पर कोई व्यक्ति भारत की नागरिकता प्राप्त कर सकता है, जो निम्नलिखित हैं -

1) **जन्म से (By Birth)** - प्रत्येक व्यक्ति जिसका जन्म संविधान लागू होने, अर्थात् 26 जनवरी, 1950 को या उसके बाद भारत में हुआ है, तो वह भारत का नागरिक होगा। बशर्ते उसके जन्म के समय उसके माता-पिता दोनों भारत के नागरिक हो या उसके माता-पिता में से कोई एक भारत का नागरिक हो तथा दूसरा, अवैध आप्रवासी (Illegal Immigrant) न हो।
(**अपवाद** - विदेशी राजनयिकों के बच्चे तथा शत्रुओं के अधीन भारत के किसी भाग में होने वाले बच्चे इस आधार पर नागरिकता प्राप्त नहीं कर सकेंगे।)

2) **वंश के आधार पर (By Descent)** - भारत के राज्य क्षेत्र से बाहर 26 जनवरी, 1950 ई. के बाद जन्म लेने के बाद भारत का नागरिक माना जाएगा, यदि उसके जन्म के समय माता या पिता में से कोई एक भारत का नागरिक हो।

3) **पंजीकरण द्वारा (By Registration)** - निम्नलिखित वर्गों में आने वाले लोग पंजीकरण द्वारा भारत की नागरिकता प्राप्त कर सकते हैं -
   - **a)** भारतीय मूल का वह व्यक्ति, जो नागरिकता प्राप्ति के आवेदन देने से पूर्व 7 वर्ष भारत में रह चुका हो,
   - **b)** वह व्यक्ति, जिसका विवाह भारतीय नागरिक से हुआ हो और पंजीकरण हेतु आवेदन से पूर्व वह 7 वर्षों से भारत में रह रहा हो,
   - **c)** भारतीय नागरिक के अवस्यक बच्चे,
   - **d)** राष्ट्रमण्डलीय देश के नागरिक जो भारत में रहते हो या भारत सरकार की नौकरी करते हो।

4) **देशीयकरण द्वारा (By Naturalisation)** - पूर्ण उम्र और क्षमता का कोई भी व्यक्ति, जो राष्ट्रमण्डल देश का निवासी न हो या भारतीय मूल का न हो, तो वह भारत सरकार देशीयकरण का प्रमाण प्राप्त कर भारतीय नागरिकता प्राप्त कर सकता है। इसके लिए उसे कुछ शर्तें पूरी करनी होती हैं। जैसे - उसे भारतीय संविधान की 8वीं अनुसूची में निर्दिष्ट भाषाओं में से किसी एक का ज्ञान होना चाहिए।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

5) **अन्य भू-भाग के अर्जन द्वारा (Incorporation of Other Territory)** - भारत यदि किसी विदेशी क्षेत्र को अपने भू-भाग में सम्मिलित करता है, तो उस क्षेत्र के निवासियों को स्वत: भारतीय नागरिकता प्राप्त हो जाएगी।

- **नागरिकता की समाप्ति (Termination of Citizenship)**

भारतीय नागरिकता अधिनियम, 1955 के अनुसार नागरिकता 3 तरीकों से समाप्त हो सकती है -

1) **स्वैच्छिक त्याग (Renunciation)** - कोई भारतीय नागरिक जो पूर्ण आयु एवं क्षमता का हो, तो वह अपनी नागरिकता के त्याग की घोषणा कर सकता है।

2) **समाप्ति (Termination)** - यदि भारत का कोई नागरिक स्वैच्छा से किसी अन्य देश की नागरिकता स्वीकार कर लेता है, तो उसकी भारतीय नागरिकता स्वत: समाप्त हो जाएगी।

3) **वंचित किया जाना (Deprivation)** - भारत सरकार किसी भी व्यक्ति को उसकी नागरिकता से वंचित कर सकता है, यदि उस व्यक्ति ने नागरिकता प्राप्त करने के लिए झूठे तथ्य दिए हो या फर्जी तरीक से नागरिकता प्राप्त की हो।

आकार IAS
Shaping Your Dreams

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

मूल अधिकार
Fundamental Rights

❐ मौलिक अधिकारों का अर्थ (Meaning of Fundamental Rights)

मौलिक अधिकारों की स्पष्ट एवं निश्चित अर्थ बताना कठिन है, क्योंकि देशकाल, परिस्थितियों में इसके अर्थ में बदलाव आया है। इंग्लैण्ड में मूल अधिकार वे अधिकार कहे जाते हैं, जो 'बिल ऑफ राइट्स' द्वारा जनता ने प्राप्त किए हैं। अमेरिका और फ्रांस में इन अधिकारों को नैसर्गिक और अप्रतिदेय अधिकारों के रूप में ही स्वीकार किया गया है। भारतीय संविधान में मूल अधिकारों की कोई परिभाषा नहीं दी गई है, किन्तु भारत में भी इन अधिकारों को नैसर्गिक और अप्रतिदेय अधिकार माना है।

वस्तुत: मूल अधिकार वह आधारभूत अधिकार है, जो नागरिकों के बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक ही नहीं, वरन् अपरिहार्य है। इन अधिकारों के अभाव में व्यक्ति का बहुमुखी विकास संभव नहीं है। दूसरी ओर यह अधिकार संविधान द्वारा संरक्षित होते हैं तथा राज्य के विरुद्ध गारंटी प्रदान करते हैं, ताकि वे निरंकुश न हो सके। दूसरे शब्दों में मूल अधिकार ऐसे संवैधानिक सिद्धान्त है, जो मानव को उसकी गरिमा और स्वतंत्रता के साथ जीने का अधिकार प्रदान करता है।

❐ उद्‌भव एवं विकास (Origin & Development)

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मूल अधिकारों का सर्वप्रथम विकास इंग्लैण्ड में हुआ। जब 1215 ई. में सम्राट जॉन ने जनता की प्राचीन स्वतंत्रताओं को मान्यता प्रदान कर अधिकार-पत्र (Magna Carta) पर हस्ताक्षर किए। 17वीं शताब्दी में प्राकृतिक अधिकारों के रूप में मूल अधिकार की व्याख्या की गई, जिसके अनुसार मनुष्य को कुछ अधिकार राज्य की स्थापना से पूर्व प्राप्त थे। यह अधिकार जन्मजात हैं। इनकी रक्षा के लिए ही व्यक्ति समाज व राज्य का निर्माण करता है। इस सिद्धान्त के सर्वप्रमुख विचारक जॉन लॉक (इंग्लैण्ड) हैं। उनके अनुसार व्यक्ति को जीवन, स्वतंत्रता और सम्पत्ति जैसे प्राकृतिक अधिकार जन्मजात प्राप्त है, जिसे आगे चलकर कई दार्शनिकों ने समर्थन दिया है। कालांतर में अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा (1776 ई.) मानव अधिकारों के फ्रांसीसी घोषणा पत्र (1789 ई.) तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा पत्र (1948 ई.) में भी प्राकृतिक अधिकारों को मान्यता दी गई।

❐ भारत में मूल अधिकार की मांग (Demand of Fundamental Rights in India)

भारत में मौलिक अधिकारों की मांग सर्वप्रथम 1895 ई. में हुई। स्वतंत्रता सेनानी राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभ से ही अपने भावी संविधान में मौलिक अधिकारों को केन्द्रीय रूप में स्वीकार करना चाहते थे। परिणामस्वरूप कांग्रेस द्वारा अनेक संकल्प पारित करके मांग की गई कि भारतीयों को अंग्रेजों के समान सिविल अधिकार प्रदान किए जाए। 1915 ई. में श्रीमती एनी बेसेंट द्वारा होमरूल विधेयक में मूल अधिकारों की मांग प्रस्तुत की गई। 1925 ई. में 'द कॉमनवेल्थ ऑफ इंडिया बिल' में अधिकारों की घोषणा निहित थी। 1928 ई. में नेहरू समिति ने जिस भावी संविधान की संस्तुति की थी, उसमें मौलिक अधिकार निहित थे। मार्च 1931 ई. के कराची अधिवेशन में कांग्रेस ने मूल अधिकारों की मांग को दोहराया।

1946 ई. में कैबिनेट मिशन ने इस बात को स्वीकार किया गया कि भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों की लिखित गारंटी देना आवश्यक है। कैबिनेट मिशन ने अन्य बातों के साथ-साथ मौलिक अधिकारों पर रिपोर्ट देने के लिए एक सलाहकार समिति के गठन की सिफारिश की, इसलिए संविधान सभा ने वल्लभ भाई पटेल की अध्यक्षता में परामर्श समिति का गठन किया। बाद में जे. पी. कृपलानी की अध्यक्षता में मूल अधिकारों तथा अल्पसंख्यकों पर सिफारिश करने के लिए एक उपसमिति गठित की गई। अंतत: परामर्श समिति तथा उपसमिति की सिफारिशों के आधार पर संविधान में मूल अधिकारों को शामिल किया गया।

❐ भारत में मूल अधिकारों की आवश्यकता/उद्‌देश्य (Purpose/Need of Fundamental Rights of India)

प्राय: विश्व के सभी देशों के संविधान में मूल अधिकारों को शामिल किया गया है। सूक्ष्म दृष्टिकोण से देखा जाए, तो संविधान में मूल अधिकारों को शामिल करने की आवश्यकता और उद्‌देश्य एक से प्रतीत होते हैं। संविधान में इन अधिकारों के समाविष्ट किए जाने का उद्‌देश्य उन मूल्यों का संरक्षण करना है, जो एक स्वतंत्र समाज के लिए अपरिहार्य है। तो दूसरी ओर लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए मूल अधिकार आवश्यक है। भारत में भी मूल अधिकारों की आवश्यकता महसूस करने के कुछ विशेष कारण थे, जैसे -

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

1) संसदीय शासन प्रणाली में नागरिकों की स्वतंत्रता के लिए खतरा और भी बढ़ जाता है। इसमें जनता के द्वारा निर्वाचित सरकार बहुमत में होने से जनता के हितों के विरुद्ध कार्य कर सकती है। अत: संविधान में मूल अधिकारों को समाविष्ट करके इसे सरकार की शक्ति से परे रखा जाता है, जिससे वे अपनी बहुमत की शक्ति का दुरुपयोग करके इन अधिकारों का अतिक्रमण न कर सके।

2) लोकतंत्र का सबसे बड़ा विरोधाभास यह है कि इसमें बहुमत का शासन होता है। किन्तु भारत में कुछ धर्म, जाति व नस्ल अपनी जनसंख्या के दृष्टिकोण से अल्पमत में हैं तथा सरकार बनाने में कमजोर सिद्ध होते हैं। अत: वह सदैव असुरक्षा व भय महसूस करते हैं। मूल अधिकार ही उनकी असुरक्षा व भय को दूर करने में सहायक है, क्योंकि यह बहुमत और राज्य की शक्ति पर नियंत्रण लगाता है।

3) मूल अधिकार को संविधान में शामिल करने का एक उद्देश्य यह भी था कि प्रत्येक नागरिक को इस बात का पूर्ण बोध हो जाए कि संविधान ने विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया है और यह उपबंधित किया है कि इस सभी अधिकारों के संबंध में समाज के प्रत्येक वर्ग को पूर्ण समानता प्रदान की गई है। जो व्यक्ति की भौतिक और नैतिक पूर्णता के लिए आवश्यक माने जाते हैं।

4) भारत में अधिकांश जनता निरक्षर है, जिन्हें अपने हितों एवं अधिकारों की समझ नहीं है। इनका आसानी से शोषण किया जा सकता है। अत: मूल अधिकार इन्हें शोषण के विरुद्ध अधिकार प्रदान करते हैं।

5) भारत में जातिवाद, अस्पृश्यता, लिंग असमानता आदि व्याप्त है। अत: इनके उन्मूलन हेतु मूल अधिकार अतिआवश्यक है। मूल अधिकार ही इन्हें समस्त प्रकार के शोषणों से सुरक्षा प्रदान करता है।

6) भारत जैसे धर्म बहुल राष्ट्र में धार्मिक अल्पसंख्यकों को अपने धर्म व संस्कृति के प्रति असुरक्षा का भाव होता है। मूल अधिकार के द्वारा ही अल्पसंख्यकों को उनकी शिक्षा और संस्कृति संबंधी अधिकार प्रदान कर सुरक्षा दी जाती है, जिससे एक सशक्त राष्ट्र और लोकतंत्र की स्थापना होती है।

7) भारतीय संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकारों के समावेश का उद्देश्य विधि के शासन की स्थापना करना है, ताकि उन मूल्यों को संरक्षण प्रदान किया जा सके, जो स्वतंत्र समाज के लिए आवश्यक है।

❐ मूल अधिकार की विशेषताएं (Features of Fundamental Rights)

मूल अधिकारों को संविधान में निम्नलिखित विशेषताओं के साथ उल्लेखित किया गया है –

1) भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों की दृष्टि से नागरिकों और विदेशियों में अंतर किया गया है। कुछ अनुच्छेद सिर्फ नागरिकों के लिए उपलब्ध हैं – 15, 16, 19, 29 और 30।

2) संविधान में उल्लेखित मौलिक अधिकारों को 2 श्रेणियों में बांटा जा सकता है। कुछ अधिकारों की प्रकृति निषेधात्मक है, जो राज्य को निषेध आज्ञा (राज्य की शक्ति को सीमित करने से) देते हैं, जबकि कुछ अधिकारों की प्रकृति सकारात्मक (कुछ वर्गों के लिए विशेष प्रावधान करने से) है।

3) भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों का विवेचन दूसरे देश के संविधानों की अपेक्षा कई अधिक विस्तृत है।

4) मौलिक अधिकार सीमित है, असीमित नहीं। भारत में इन्हें कई सीमाओं से प्रतिबंधित किया गया है, जैसे – राज्य को उनके प्रयोग या उपयोग पर उचित प्रतिबंध लगाने का अधिकार।

5) यह सैद्धान्तिक नहीं, वरन् व्यवहारिकता पर आधारित है और सम्पूर्ण समाज के लिए उपयोगी है। इनमें सभी नागरिकों के लिए समानता के अधिकार के साथ ही साथ अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जाति व जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों की उन्नति व विकास के लिए विशेष व्यवस्था की गई है।

6) मूल अधिकार वादयोग्य (Justiciable) है। इनका संरक्षण न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 32 व अनुच्छेद 226 के द्वारा किया जाता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

7) भारतीय संविधान में नागरिकों के लिए जो मौलिक अधिकार उल्लेखित है उनके अतिरिक्त नागरिकों को कोई प्राकृतिक अधिकार नहीं दिए गए हैं।

8) मौलिक अधिकार संसद या राज्य विधानमण्डलों द्वारा बनाए गए कानूनों से ऊपर है।

9) ये सरकार की निरंकुशता पर अंकुश रखते हैं, ताकि इन अधिकारों का किसी भी प्रकार से उल्लंघन न किया जा सके। अगर सरकार अनुचित प्रतिबंध लगा भी देती है, तो न्यायालय द्वारा उन प्रतिबंधों को अवैध घोषित किया जा सकता है।

10) भारतीय नागरिकों के मूल अधिकारों को राज्य की सुरक्षा और सार्वजनिक सुरक्षा की दृष्टि से सिर्फ संवैधानिक आपातकाल में निलंबित किया जा सकता है।

❐ संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार (Fundamental Rights Conferred by The Constitution)

भारत के संविधान में अत्यधिक विस्तृत रूप से मूल अधिकारों का उल्लेख किया गया है और उन्हें 8 भागों में विभाजित किया गया है। इसके प्रारंभ के 2 अनुच्छेद 12-13 मूल अधिकारों की सामान्य रूपरेखा और उनकी प्रकृति का निर्धारण करते हैं, शेष 7 भागों में विशिष्ट अधिकारों का उल्लेख किया गया है।

सामान्य : अनुच्छेद-12 - 13
General : Article-12 - 13

◆ अनुच्छेद-12 : परिभाषा (Definition)

यह अनुच्छेद इस भाग में प्रयुक्त '**राज्य**' शब्द को परिभाषित करता है। यदि प्रसंग में दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो, तो इस भाग में '**राज्य**' के अन्तर्गत -

1) भारत सरकार व संसद।
2) राज्य सरकार व विधानमण्डल।
3) सभी स्थानीय प्राधिकारी (Local Authorities)।
4) अन्य प्राधिकारी (Other Authorities)।

स्पष्ट है कि यह अधिकार केन्द्र तथा राज्य सरकारों पर ही बाधित नहीं है, बल्कि अन्य स्थानीयओं संस्थाओं पर भी लागू होता है, जैसे - ग्राम पंचायत, नगर पालिका, नगर निगम आदि। '**अन्य प्राधिकार**' पदावली में केवल वे प्राधिकारी ही सम्मिलित किए जा सकते हैं, जो शासकीय या सम्प्रभु शक्ति का प्रयोग करते हैं, जैसे - एल. आई. सी.।

◆ अनुच्छेद-13 : मूल अधिकारों से असंगत या उनका अल्पीकरण करने वाली विधियां (Laws in Consistent with or Derogation of the Fundamental Rights)

अनुच्छेद 13(1) यह घोषित करता है कि इस संविधान के लागू होने के ठीक पहले भारत में प्रवत्त विधियां उस मात्रा तक शून्य होंगी, जिस तक कि वे भाग 3 के उपबंधों से असंगत है।

अनुच्छेद 13(2) यह उपबंधित करता है कि '**राज्य**' ऐसी कोई विधि नहीं बनाएगा, जो भाग 3 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों को छीनती है या न्यून करती है और इस खण्ड के उल्लंघन में बनाई गई प्रत्येक विधि उल्लंघन की मात्रा तक शून्य होगी।

यह अनुच्छेद मूल अधिकारों को व्यवहारिक रूप देने के लिए कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की घोषणा करता है तथा उनकी प्रकृति का निर्धारण भी करता है। अनुच्छेद 13(1) तथा 13(2) में निम्नलिखित सिद्धान्त अन्तर्निहित है -

1) **न्यायिक पुनर्विलोकन का सिद्धान्त (Judicial Review)** - अनुच्छेद 13 न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदान करता है। इस शक्ति के तहत् न्यायालय विधायिका द्वारा पारित अधिनियमों की संवैधानिकता की जांच करता है। यदि राज्य कोई ऐसा नियम या कानून बनाता है, जो मूल अधिकारों का उल्लंघन करता है, तो न्यायालय ऐसे नियम या कानून का न्यायिक पुनर्विलोकन कर सकता है।

2) **पृथक्करण का सिद्धान्त (Doctrine of Severability)** - यदि राज्य द्वारा निर्मित किसी विधि का कोई भाग मूल अधिकार से असंगत है, तो वह पूर्णत: असंवैधानिक और शून्य घोषित नहीं की जाएगी, बल्कि उसके उस भाग को शून्य घोषित किया जाएगा, जो मूल अधिकारों से असंगत या विरुद्ध है। लेकिन शर्त यह है कि वह भाग पृथक्करणीय हो। यदि

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

मूल अधिकार से असंगत होने वाला भाग पृथक्करणीय नहीं है, तो सम्पूर्ण विधि को शून्य घोषित किया जाएगा।

3) **भावी प्रवर्तन का सिद्धान्त (Doctrine of Prospective Overruling)** - मूल अधिकार का प्रभाव भूतलक्षी नहीं है (It is Non-Retrospective), इसका भावी प्रभाव है। भारतीय संविधान के लागू होने के पूर्व प्रवृत्त विधियों पर मूल अधिकार का प्रभाव उस तिथि से प्रभावी होगा, जिस तिथि से मूल अधिकार लागू हुए हैं। संविधान के प्रवर्तन के पूर्व किए गए कार्यों के संबंध में संविधान पूर्व विधियां लागू होंगी।

4) **अधित्यजन्य का सिद्धान्त (Doctrine of Waiver)** - इस सिद्धान्त के अनुसार कोई भी व्यक्ति, जिसे संविधान द्वारा मूल अधिकार प्रदान किए गए हैं, वह अपनी इच्छा से त्याग नहीं कर सकता है। जबकि अमेरिका में यह सिद्धान्त लागू है। वहां कोई नागरिक स्वेच्छा से अपने मूल अधिकार को छोड़ सकता है।

5) **आच्छादन का सिद्धान्त (Doctrine of Eclipse)** - संविधान के प्रवर्तन के पूर्व भारत में प्रवृत्त विधियां, जो मूल अधिकार से अंसगत है, वह समाप्त नहीं होती, बल्कि निष्क्रिय हो जाती है। ऐसी विधियां मूल अधिकारों द्वारा आच्छादित हो जाती हैं।

समता का अधिकार : अनुच्छेद-14 से 18
Right to Equality : Article-14 to 18

अनुच्छेद 14 से 18 द्वारा संविधान प्रत्येक व्यक्ति को समता का अधिकार प्रदान करता है। संविधान की प्रस्तावना में कल्पित समता का आदर्श अनुच्छेद-14 में निहित है। अनुच्छेद-14 में समता का सामान्य नियम दिया गया है, जो व्यक्तियों के मध्य अतार्किक विभेद को वर्जित कर कानून के समक्ष समानता को लागू करता है। अनुच्छेद-15, 16, 17 व 18 अनुच्छेद-14 में निहित सामान्य नियम के विशिष्ट उदाहरण है।

- **अनुच्छेद-14 : विधि के समक्ष समता (Equality before Law)**

अनुच्छेद 14 द्वारा प्रदत्त यह अधिकार सभी व्यक्तियों, अर्थात् - नागरिकों और गैर-नागरिकों को प्रदान किया गया है। इस अनुच्छेद में कहा गया है कि भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा। इस अनुच्छेद में 2 प्रकार के अधिकारों का उल्लेख है -

1) **विधि के समक्ष समता (Equality before Law)** - इस पदावली को ब्रिटेन की सामान्य विधि से ग्रहण किया गया है। यह एक नकारात्मक अभिव्यक्ति है, जिसका अर्थ है - विधि का शासन (Rule of Law), अर्थात् - कोई भी व्यक्ति कानून से ऊपर नहीं है, सभी व्यक्ति देश के कानून के अधीन है। कानून के समक्ष विभिन्न व्यक्तियों में किसी प्रकार का विभेद नहीं किया जाएगा। राज्य सभी व्यक्तियों के लिए एक समान कानून बनाएगा तथा उस कानून को सभी व्यक्तियों पर एक समान रूप से लागू करेगा।

2) **विधियों के समान संरक्षण (Equal Protection of Laws)** - इस पदावली को अमेरिका के संविधान से ग्रहण किया गया है। यह एक सकारात्मक अभिव्यक्ति है। इसका अर्थ है - समान परिस्थितियों वाले व्यक्तियों पर समान कानून लागू होगा, अर्थात् - समान परिस्थितियों वाले व्यक्तियों में कोई विभेद नहीं करना चाहिए तथा उन पर एक ही विधि लागू करना चाहिए। दूसरे शब्दों में विभिन्न व्यक्तियों की सामाजिक, आर्थिक स्थितियां अलग होती हैं अतः सभी पर कानून लागू करते समय उन अन्तरों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

यहा उल्लेखनीय है कि संविधान द्वारा दिए गए समानता के अधिकार का यह अर्थ कभी नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति को हर मामले में समान बना दिया जाए, ऐसा न तो स्वाभाविक है और न ही व्यवहारिक। समानता का वास्तविक अर्थ है - '**समानों में समानता**', अर्थात् - एक ही प्रकार की योग्यता रखने वाले व्यक्तियों के बीच धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थान आदि के आधार पर कोई भेदभाव न किया जाए।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

ये स्वाभाविक है कि समाज का प्रत्येक वर्ग अपनी समस्याओं और आवश्यकताओं की दृष्टि से एक भिन्न इकाई होता है, इसलिए प्रत्येक कानून सभी व्यक्तियों पर समान रूप से लागू नहीं किया जा सकता है। अत: अनुच्छेद-14 विधायनी वर्गीकरण को वैध मानता है तथा संरक्षणात्मक भेदभाव को स्वीकार करता है। किन्तु यह वर्गीकरण युक्तियुक्त होना चाहिए न कि मनमाना या स्वेच्छाचारी। इस वर्गीकरण के युक्तियुक्त होने के लिए निम्नलिखित 2 शर्तें हैं -

1) विधायनी वर्गीकरण का आधार वास्तविक तथा तथ्यपूर्ण होना चाहिए।

2) इस वर्गीकरण का तर्कसंगत संबंध उस उद्देश्य से होना चाहिए, जिसकी पूर्ति हेतु कानून विशेष का निर्माण किया गया हो।

उदाहरणार्थ - 18 वर्ष से कम आयु के लोगों को मताधिकार नहीं दिया गया है। इस प्रकार उपयुक्त वर्गीकरण का आधार आयु है। इसके पीछे यह विचार निहित है कि निश्चित आयु प्राप्त करने के पश्चात् ही व्यक्ति अपने मताधिकार का ठीक ढंग से प्रयोग कर सकता है। किन्तु अगर इस वर्गीकरण का आधार यह होता कि केवल वही लोग मत दे सकते हैं, जिनके बाल सफेद हो, तो यह कानून विधायनी वर्गीकरण की श्रेणी में नहीं आ सकता था। इसका आधार तर्कसंगत नहीं है तथा इस प्रकार के भेदभाव का उस उद्देश्य (मताधिकार उचित ढंग से प्रयोग) से भी कोई संबंध न होगा, जिसके लिए यह प्रतिबंध लगाया गया है।

वस्तुत: असमान परिस्थितियों में रहने वाले लोगों के लिए एक ही विधि लागू करना असमानता होगी। अत: युक्तियुक्त वर्गीकरण अपेक्षित ही नहीं, वरन् आवश्यक भी है। यह वर्गीकरण अनेक आधारों पर हो सकता है, जैसे - भौगोलिकता, ऐतिहासिकता, कार्य की प्रकृति, स्थान, समय, विधि के उद्देश्य आदि।

- **अनुच्छेद-15 : धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध**

(Prohibition of Discrimination on Grounds of Religion, Race, Cast, Sex or Place of Birth)

अनुच्छेद 15 द्वारा प्रदत्त अधिकार केवल नागरिकों को ही प्रदान किए गए हैं, विदेशियों को नहीं। यह अनुच्छेद 14 समता के अधिकार का व्यवहारिक रूप है। यह अधिकार सामाजिक समानता स्थापित करता है। अनुच्छेद 15 के 5 खण्ड हैं, जो निम्नलिखित हैं

अनुच्छेद 15(1) - राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी आधार पर को विभेद नहीं करेगा। यह अधिकार केवल राज्य के विरुद्ध प्राप्त है। इस अनुच्छेद में '**केवल**' शब्द का प्रयोग ध्यान देने योग्य है। इसका तात्पर्य यह है कि विभेद केवल उपरोक्त 5 आधारों पर वर्जित है, किन्तु अन्य आधारों पर यह विभेद किया जा सकता है। जैसे - इस अनुच्छेद में जन्मस्थान के आधार पर विभेद की मनाही है, किन्तु निवास स्थान के आधार पर विभेद अवैध नहीं होगा। इसके अलावा शैक्षणिक व शारीरिक योग्यता, आयु तथा भाषा आदि के आधार पर विभेद किया जा सकता है।

अनुच्छेद 15(2) - कोई नागरिक केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर किसी अन्य नागरिक से सार्वजनिक स्थल (दुकान, होटल, मनोरंजन स्थल, कुआं, तालाब, सड़कों, सार्वजनिक समागम के स्थान) पर भेदभाव या प्रवेश वर्जित नहीं करेगा। यह अधिकार नागरिकों के विरुद्ध प्राप्त है। इस अनुच्छेद का मुख्य उद्देश्य हिन्दू समाज में व्याप्त कुरीतियों को समाप्त करके भारत में एक नए समाज की स्थापना करना है।

अनुच्छेद 15(3) - इस अनुच्छेद के तहत् राज्य स्त्रियों और बालकों की उन्नति के लिए कोई विशेष उपबंध बना सकता है। यह अनुच्छेद 15 (1) और (2) में दिए गए सामान्य नियम का अपवाद है। स्त्रियों और बालकों की शारीरिक बनावट तथा सामाजिक स्थिति ऐसी होती है कि आसानी से वे शोषण के शिकार हो जाते हैं। जिसके कारण उन्हें विशेष संरक्षण की आवश्यकता होती है। वे सामाजिक कुरीतियों, जैसे - बाल विवाह, बहुविवाह, सतीप्रथा आदि की शिकार थी और पूर्णरूप से पुरूषों पर आश्रित थीं। इसी कारण राज्य को उनके लिए विशेष कानून बनाने का अधिकार प्रदान करना उचित है। यद्यपि यह समानता के नियम का उल्लंघन है, किन्तु सामाजिक न्याय की स्थापना हेतु महिलाओं के पक्ष मे राज्य सकारात्मक कार्यवाही (भेदभाव) कर सकता है।

उदाहरणार्थ - राज्य महिलाओं की उन्नति के लिए विशेष शिक्षण संस्थाओं की स्थापना कर सकता है या उनमें महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित कर सकता है। विधायिका में महिलाओं के लिए आरक्षण लागू किया जा सकता है। इसके अलावा महिलाओं की उन्नति के लिए समय-समय पर राज्य ने कई कानून बनाए हैं, जैसे - राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990, दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

अनुच्छेद 15(4) – राज्य सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों के उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों या जनजातियों की उन्नति के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है। यह अनुच्छेद 15 (1) व (2) के सामान्य नियम का दूसरा अपवाद है। इसे संविधान में प्रथम संशोधन अधिनियम 1951 द्वारा जोड़ा गया है। इसके द्वारा भी सामाजिक न्याय की स्थापना की गई है। यह राज्य को विवेकीय शक्ति प्रदान करता है कि यदि राज्य उचित समझे तो पिछड़े वर्गों के नागरिकों के लिए विशेष प्रावधान बना सकता है। बशर्ते यह विशेष वर्ग सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ हो। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि पिछड़ेपन का आधार सामाजिक और शैक्षणिक माना गया है न कि आर्थिक आधार। (उदाहरणार्थ – राज्य द्वारा इनकी उन्नति के लिए लोकसभा तथा विधानसभा में सीटों का आरक्षण।)

अनुच्छेद 15(5) – राज्य, अल्पसंख्यक वर्गों की शिक्षा संस्थानों को छोड़कर अन्य सभी सरकारी तथा निजी शिक्षण संस्थाओं में चाहे वह सहायता प्राप्त हो या नहीं अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों या सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों के अभ्यार्थियों को प्रवेश में आरक्षण दे सकता है। यह अनुच्छेद संविधान के 93वें संशोधन अधिनियम 2005 द्वारा जोड़ा गया है। इस प्रावधान के क्रियान्वयन के लिए सरकार ने केन्द्रीय शिक्षण संस्थान (प्रवेश में आरक्षण) अधिनियम 2006 पारित किया है, जिसके अन्तर्गत पिछड़े वर्ग के छात्रों के लिए सभी उच्च शैक्षणिक संस्थानों में सीटें आरक्षित की गई हैं।

- **अनुच्छेद-16 : लोक नियोजन में अवसर की समानता**

(Equality of Opportunity in Matters of Public Employment)

इस अनुच्छेद में लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता को मूल अधिकार के रूप में शामिल किया गया है तथा इसी अनुच्छेद में इस मूल अधिकारों के कुछ अपवादों का भी उल्लेख किया गया है। यह मूल अधिकार केवल नागरिकों को प्राप्त है। इस अनुच्छेद में 5 खण्ड हैं, जो निम्नलिखित हैं –

अनुच्छेद 16 (1) – राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी। इस अनुच्छेद की अपेक्षा है कि प्रत्येक नागरिक को उसकी योग्यता एवं प्रतिभा के आधार पर राज्य के अधीन सेवाओं में नियुक्ति के लिए समान अवसर प्रदान किया जाए।

अनुच्छेद 16(2) – राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, वंशक्रम, जन्म स्थान, निवास स्थान या इनमें से किसी भी आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा और न ही उससे विभेद किया जाएगा। इसका तात्पर्य यह है कि विभेद केवल उपरोक्त 7 आधारों पर वर्जित है, किन्तु अन्य आधारों पर यह विभेद किया जा सकता है, जैसे – भाषा, शारीरिक योग्यता, शैक्षणिक योग्यता, तकनीकी योग्यता आदि। यहां ध्यान योग्य बात यह है कि अनुच्छेद 15 में विभेद 5 आधारों पर प्रतिषेध था, जबकि अनुच्छेद 16 में इनके अलावा 2 अन्य आधार वंशक्रम और निवास स्थान भी शामिल किए गए हैं।

अनुच्छेद 16(3) – यह अनुच्छेद प्रावधान करता है कि संसद विधि बनाकर लोक नियोजन के मामले में किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र में निवास संबंधी शर्त लागू कर सकता है। वस्तुतः यह अनुच्छेद 16(2) का अपवाद है। इस अनुच्छेद को जोड़ने का मुख्य उद्देश्य यह था कि पिछड़े राज्यों के निवासियों को विकास की मुख्यधारा में लाना। दूसरा, यह शक्ति केवल संसद को दी गई है, न कि राज्य विधानमण्डल को।

अनुच्छेद 16(4) – इसमें राज्य को यह शक्ति दी गई है कि वह पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में नियुक्ति या पदों के लिए आरक्षण कर सकता है, यदि राज्य की राय में उस वर्ग का लोक सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व न हो। इसे लागू करने के लिए 2 शर्तें हैं –

1) वर्ग पिछड़ा हो, अर्थात् – सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टि से।

2) उसे राज्य के अधीन पदों पर पर्याप्त प्रतिनिधित्व न मिल सका हो।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

पिछड़ा वर्ग शब्दावली की संविधान में कोई परिभाषा नहीं दी गई है। अनुच्छेद 340 राष्ट्रपति को पिछड़े वर्ग के अवधारण के लिए आयोग के स्थापना करने की शक्ति प्रदान करता है। आयोग इस बात की जांच करके अपनी सिफारिश राष्ट्रपति को देगा कि कौन-सा वर्ग पिछड़े वर्ग की कोटी में आता है। आयोग की सिफारिश के आधार पर सरकार पिछड़े वर्ग में आने वाले लोगों को विर्निष्ट (Specify) करेगी।

1979 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने डी. पी. मण्डल की अध्यक्षता में पिछड़े वर्गों के निर्धारण के लिए द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग की नियुक्ति की। आयोग ने अनुसूचित जाति और जनजाति के अलावा 3000 से अधिक जातियों की पहचान की, जो सामाजिक एवं शैक्षणिक आधार पर पिछड़ी थीं। आयोग ने इस अन्य पिछड़े वर्गों के लोगों के लिए सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश की। 10 वर्ष पश्चात् अगस्त 1990 में तत्कालीन प्रधानमंत्री वी. पी. सिंह की सरकार ने सरकारी नौकरियों में अन्य पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा कर दी। इस प्रकार सरकारी नौकरियों में कुल आरक्षण 50 प्रतिशत हो गया है।

सरकार द्वारा मण्डल रिपोर्ट को स्वीकृत करने के परिणामस्वरूप देशभर में आरक्षण विरोधी हिंसात्मक आन्दोलन प्रारंभ हो गया, जिसमें सैकड़ों छात्र-छात्राओं ने आत्मदाह किया और बहुत बड़ी मात्रा में राष्ट्रीय सम्पत्ति को क्षति पहुंची। वर्तमान में भी गुर्जरों द्वारा आरक्षण हेतु आन्दोलन चलाया जा रहा है। अत: ये प्रश्न पुन: प्रासंगिक हो गए हैं कि क्या आरक्षण दिया जाना उचित है? क्या अभी तक दिया गया आरक्षण अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सका है? क्या आरक्षण नीति का पुनर्मूल्यांकन किया जाना चाहिए?

अनुच्छेद 16(5) - यह अनुच्छेद 16 का तीसरा अपवाद है (जिसके अनुसार लोक पदों के लिए धर्म के आधार पर असमानता करना वर्जित है), किन्तु इस अनुच्छेद के अधीन राज्य किसी धार्मिक या साम्प्रदायिक संस्थाओं के क्रियाकलापों का प्रबंधन करने के लिए किसी विशेष धर्म या सम्प्रदाय के मानने वाले लोगों को ही नियुक्त करने के लिए कानून का निर्माण कर सकता है।

- **अनुच्छेद-17 : अस्पृश्यता का अंत (Abolution of Untouchability)**

इस अनुच्छेद के तहत अस्पृश्यता का अंत कर दिया गया है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया गया है। यह अस्पृश्यता से उत्पन्न अयोग्यता को लागू करने को दण्डनीय घोषित करता है। अनुच्छेद 17 व 35 के अधीन संसद ने अपनी शक्ति का प्रयोग कर 1955 में अस्पृश्यता अपराध अधिनियम पारित किया था। इसका संशोधन और पुन: नामकरण होकर अब यह (1976 से) सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955 हो गया है। यह अधिनियम अस्पृश्यता के अपराध के लिए दण्ड की व्यवस्था करता है।

उल्लेखनीय है कि अस्पृश्यता की परिभाषा न तो संविधान में दी गई है और न ही उपर्युक्त अधिनियम में। यह अवधारणा की गई है कि अस्पृश्यता उस सामाजिक पद्धति के प्रतिनिर्देश करता है, जिसमें कुछ वर्गों को उनके जन्म के कारण ही हेय दृष्टि से देखा जाता है और समाज द्वारा उन पर कुछ अयोग्यताएं तथा प्रतिबंध लगा दिए जाते हैं।

- **अनुच्छेद-18 : उपाधियों का अंत (Abolution of Titles)**

यह अनुच्छेद भारत में ब्रिटिश शासनकाल में प्रचलित सामंतशाही परम्पराएं एवं उनकी उपाधियों का अंत करता है। इन उपाधियों का अंत इसलिए किया गया, क्योंकि इससे समाज में भेदभाव उत्पन्न होता था। उपाधियों को समाप्त करने के लिए अनुच्छेद 18 में 4 प्रावधान किए गए हैं, जो निम्नलिखित हैं -

1) राज्य सेना या विद्या संबंधी सम्मान के सिवाय और कोई उपाधि प्रदान नहीं करेगा।

2) भारत का कोई नागरिक किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि स्वीकार नहीं करेगा।

3) जो व्यक्ति भारत का नागरिक न होते हुए राज्य के अधीन लाभ का कोई पद धारण करता है, तो वह विदेशी राज्य से कोई उपाधि राष्ट्रपति की सहमति के बिना स्वीकार नहीं करेगा।

4) राज्य के अधीन लाभ का पद धारण करने वाला कोई व्यक्ति किसी विदेशी राज्य से कोई भेंट, उपलब्धि या पद राष्ट्रपति की सहमति के बिना स्वीकार नहीं करेगा।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

स्वतंत्रता का अधिकार : अनुच्छेद - 19 से 22
Right to Freedom : Article - 19 to 22

वैयक्तिक स्वतंत्रता के अधिकार का स्थान मूल अधिकारों में सर्वोच्च माना जाता है, क्योंकि इस अधिकार के अभाव में मनुष्य के लिए अपने व्यक्तित्व का विकास करना संभव नहीं है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 से 22 तक में भारत के नागरिकों को स्वतंत्रता संबंधी विभिन्न अधिकार प्रदान किए गए हैं -

- **अनुच्छेद-19 : वाक् स्वातंत्र्य आदि विषयक कुछ अधिकारों का संरक्षण**
  (Protection of Certain Rights Regarding Freedom of Speech)

मूलत: संविधान के अनुच्छेद 19 में नागरिकों को 7 स्वतंत्रताएं प्रदान की गई थीं। 44वें संविधान संशोधन 1978 द्वारा 1 स्वतंत्रता, अर्थात् - सम्पत्ति अर्जन, धारण और व्ययन के अधिकार को निकाल दिया गया है। इस प्रकार अनुच्छेद 19(1) में 6 स्वतंत्राताएं घोषित की गई हैं तथा शेष अनुच्छेद 19(2)-(6) तक में इन स्वतंत्रताओं पर युक्तियुक्त निर्बंधन (Reasonable Restrictions) के आधारों की व्याख्या की गई है।

अनुच्छेद 19(1) - सभी नागरिकों को -

a) वाक् एवं अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का,
b) शांतिपूर्ण एवं निरायुध सम्मेलन का,
c) संगम, संघ या सहकारी समितियां बनाने का,
d) भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का,
e) भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का,
g) कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का, अधिकार होगा।

a) वाक् एवं अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य - वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता लोकतांत्रिक शासन प्रणाली की आधारशिला है। इसका अर्थ है - शब्दों, लेखों, मुद्रणों, चिह्नों या किसी अन्य प्रकार से अपने विचार को अभिव्यक्त करना। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में किसी व्यक्ति के विचारों को किसी ऐसे माध्यम से अभिव्यक्त करना सम्मिलित है, जिसमें वह दूसरों तक सम्प्रेषित कर सके। इस अनुच्छेद में प्रयुक्त अभिव्यक्ति शब्द का क्षेत्र बहुत व्यापक है। न्यायालय ने वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में निम्नलिखित को सम्मिलित किया है - **1)** प्रेस की स्वतंत्रता। **2)** जानने का अधिकार (सूचना का अधिकार)। **3)** राष्ट्रीय ध्वज फहराना। **4)** फोन टेपिंग के विरुद्ध अधिकार। **5)** शांति का अधिकार। **6)** अनभिव्यक्ति का अधिकार। **7)** प्रदर्शन एवं विरोध का अधिकार, किन्तु हड़ताल का अधिकार नहीं।

अनुच्छेद 19(2) के अनुसार राज्य वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर युक्तियुक्त प्रतिबंध लगा सकता है। यह प्रतिबंध भारत की एकता व सम्प्रभुता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों से मित्रवत् संबंध, नैतिकता की स्थापना आदि आधार पर लगाया जा सकता है।

b) शांतिपूर्ण एवं निरायुध सम्मेलन स्वतंत्रता - यह भारतीय नागरिकों को शांतिपूर्ण बिना हथियार के सभा करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। इसमें सार्वजनिक सम्मेलनों, सभाओं एवं जुलूसों का अधिकार भी सम्मिलित है। यह स्वतंत्रता वाक् और अभिव्यक्ति का ही अंग है, जो कि प्रजातांत्रिक व्यवस्था का स्वाभाविक परिणाम है। जब तक सभा करने का अधिकार नहीं होगा, तब तक व्यक्तियों को अपने विचारों के आदान-प्रदान करने का अवसर नहीं प्राप्त होगा। अनुच्छेद 19(3) के अन्तर्गत सभा करने की स्वतंत्रता पर लोक व्यवस्था तथा भारत की सम्प्रभुता व अखण्डता के आधार पर युक्तियुक्त प्रतिबंध लगाए गए हैं।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

c) **संगम, संघ या सहकारी समितियां बनाने की स्वतंत्रता** – इसके तहत् भारत के समस्त नागरिकों को संगम, संघ या सहकारी समिति बनाने की स्वतंत्रता प्रदान की है। उल्लेखनीय है कि सहकारी समिति बनाने का अधिकार 97वें संविधान संशोधन अधिनियम 2011 द्वारा शामिल किया गया है। अनुच्छेद 19(4) द्वारा संगम या संघ बनाने की स्वतंत्रता पर 3 आधारों पर युक्तियुक्त निर्बंधन लगाए जा सकते हैं – **1)** लोक व्यवस्था। **2)** सदाचार। **3)** भारत की सम्प्रभुता व अखण्डता।

d) **भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण की स्वतंत्रता** – यह भारतीय नागरिकों को सम्पूर्ण भारत में अबाध रूप से संचरण करने (आने-जाने) का अधिकार प्रदान करता है। वह बिना किसी निर्बंधन के भारत संघ के एक राज्य से दूसरे राज्य में जा सकता है। इसका उद्देश्य क्षेत्रीयतावाद जैसी संकुचित भावनाओं को समाप्त करके प्रत्येक नागरिक में राष्ट्रभक्ति का संचार करना है। अनुच्छेद 19(5) के अन्तर्गत राज्य संचरण या भ्रमण की स्वतंत्रता पर 2 आधारों पर युक्तियुक्त निर्बंधन आरोपित कर सकता है – **1)** साधारण जनता के हित में। **2)** किसी अनुसूचित जनजाति के हितों के संरक्षण के लिए।

e) **भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने की स्वतंत्रता** – इसके तहत् भारतीय नागरिकों को सम्पूर्ण भारत में बसने या आवास करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। इसके लिए उसे किसी पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं है। वस्तुत: निवास की स्वतंत्रता और संचरण व भ्रमण की स्वतंत्रता एक-दूसरे की पूरक है, दोनों का उद्देश्य राष्ट्रीय एकता को स्थापित करना है। किन्तु अनुच्छेद 19(5) के अन्तर्गत इस अधिकार पर राज्य साधारण जनता के हित में या अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण के लिए युक्तियुक्त निर्बंधन लगा सकता है।

g) **कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने की स्वतंत्रता** – इसके तहत् भारत के सभी नागरिकों को कोई भी वृत्ति (Profession), व्यापार (Trade), उपजीविका (Occupation) या कारोबार (Business) करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करता है। अनुच्छेद 19(6) के अधीन राज्य 3 आधारों पर युक्तियुक्त निर्बंधन लगा सकता है – **1)** साधारण जनता के हित से जुड़े निर्बंधन। **2)** किसी वृत्ति या व्यापार के लिए आवश्यक तकनीकी योग्यता निर्धारित करके। **3)** नागरिकों को पूर्णत: या भागत: किसी व्यापार या कारोबार से इसलिए वर्जित करना, कि राज्य किसी व्यवसाय पर एकाधिकार या नितंत्रण कर सके।

- **अनुच्छेद-20 : अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण**
  (Protection in respesct of conviction for offences)

अनुच्छेद 20 उन व्यक्तियों को जिन पर अपराध करने का अभियोग लगाया गया है, उन्हें संवैधानिक संरक्षण प्रदान करता है, ताकि राज्य किसी व्यक्ति को मनमाने तरीके से दण्डित न कर सके। यह अधिकार नागरिकों के साथ विदेशी व्यक्तियों को भी प्राप्त है। इस संबंध में 3 प्रकार का संरक्षण प्रदान किया गया है –

1) **भूतलक्षी दाण्डिक विधियों से संरक्षण (Protection from ex-post facto criminal laws)** – यह अनुच्छेद विधि की सर्वोच्चता के सिद्धान्त को मान्यता देता है। इसका संबंध आपराधिक कानूनों से है न कि सिविल कानूनों से। दूसरे शब्दों में विधायिका किसी सिविल कानून को भूतलक्षी प्रभाव से लागू कर सकती है, किन्तु आपराधिक कानून के संबंध में यह प्रभाव लागू नहीं होगा। अतीत में किए गए ऐसे कार्य के लिए जो उस समय के कानून के अनुसार अपराध न रहा हो, किन्तु बाद में बनाए जाने वाले किसी कानून के द्वारा उसी कार्य को अपराध घोषित करना भूतलक्षी प्रभाव कहलाता है। यह अनुच्छेद 2 अधिकार प्रदान करता है –

   a) किसी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए तब तक दोषी नहीं ठहराया जा सकता, जब तक उसने ऐसी विधि का उल्लंघन न किया हो, जो उस समय प्रवर्तन में न हो।

   b) किसी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए उससे अधिक दण्ड नहीं दिया जा सकता, जो उस अपराध के लिए विधि द्वारा विहित हो।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

2) दोहरे दण्ड से संरक्षण (Protection from double jeopardy) – किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक दण्ड नहीं प्रदान किया जा सकता है।

3) अपने विरुद्ध गवाही देने से संरक्षण (Protection from self incrimination) – किसी अपराध के अभियुक्त को स्वयं अपने विरुद्ध गवाही या साक्ष्य पेश करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।

- **अनुच्छेद-21 : प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार (Right to life & personal liberty)**

अनुच्छेद 21 प्रावधान करता है कि किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं। इस अनुच्छेद में व्यक्ति शब्द का प्रयोग किया गया है, जो यह दर्शाता है कि यह अधिकार नागरिकों के साथ विदेशियों को भी प्राप्त है। इसमें 2 पदावलियां महत्वपूर्ण है – **1)** प्राण या दैहिक स्वतंत्रता। **2)** विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया।

इस अनुच्छेद में या संविधान में अन्य कहीं भी न तो प्राण की स्वतंत्रता और न ही दैहिक स्वतंत्रता को परिभाषित किया गया है, किन्तु कई वादों में न्यायपालिका ने अनुच्छेद 21 की इतनी विस्तृत व्याख्या एवं व्यापक दृष्टिकोण प्रतिपादित किया है कि जीवन के अधिकार केवल भौतिक अस्तित्व का अधिकार नहीं है।

प्राण की स्वतंत्रता के अन्तर्गत उन स्वतंत्रताओं को शामिल किया गया है, जो व्यक्ति के जीवन को अर्थपूर्ण, गरिमापूर्ण, सार्थक तथा पूर्ण बनाती हैं। इसी प्रकार दैहिक स्वतंत्रता के अन्तर्गत उन स्वतंत्रताओं को सम्मिलित किया गया है, जो अवैध गिरफ्तारी, अवैध कारावास, अवैध पुलिस निगरानी तथा अवैध निरोध से व्यक्ति को संरक्षण प्रदान करती है। प्राण व दैहिक स्वतंत्रता के अन्तर्गत निम्नलिखित स्वतंत्रताओं को शामिल किया गया है –

1) विदेश जाने का अधिकार (Right to travel abroad)।
2) नि:शुल्क विधिक सहायता का अधिकार (Right to free legal aid)।
3) शिक्षा का अधिकार (Right to education)।
4) स्वास्थ्य का अधिकार (Right to health)।
5) निजता या एकान्तता का अधिकार (Right to privacy)।
6) मानव प्रतिष्ठा के साथ जीने का अधिकार (Right to live with human dignity)।
7) पर्यावरण प्रदूषण के विरुद्ध संरक्षण का अधिकार (Right to protection from envrionmental pollution)।
8) आजीविका का अधिकार (Right to livelihood)।
9) भोजन का अधिकार (Right to food)।
10) आश्रय का अधिकार (Right to shelter)।
11) सोने का अधिकार (Right to sleep)।

- **विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया तथा यथोचित विधि प्रक्रिया में अन्तर**
  (Difference between procedure established by law & Due process of law)

विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का संबंध ब्रिटिश राजव्यवस्था से है, जहां पर संसद की सर्वोच्चता है। इसका अर्थ है कि यदि विधि के अनुसार प्रक्रिया निश्चित की गई है, तो उस प्रक्रिया के अनुसार व्यक्तियों के प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता को सीमित किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में विधायिका विधि बनाकर प्राण व दैहिक स्वतंत्रता से वंचित कर सकती है। उसके औचित्य का निर्धारण करने की शक्ति न्यायालय के पास नहीं होगी। स्पष्ट है कि यह अधिकार कार्यपालिका, अर्थात् – सरकार के विरुद्ध प्राप्त है, विधायिका या संसद के विरुद्ध नहीं।

यथोचित विधि प्रक्रिया का प्रयोग अमेरिकी संविधान में किया गया है। यथोचित विधि प्रक्रिया में नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त भी आते हैं। इस प्रक्रिया में विधि केवल संसद द्वारा ही पारित नहीं होनी चाहिए, बल्कि वह प्राकृतिक न्याय सिद्धान्तों के अनुसार भी होनी चाहिए। यदि अमेरिकी संसद कोई ऐसी विधि बनाती है, जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों के अनुसार तर्कसंगत नहीं है, तो न्यायपालिका

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

उस विधि को असंवैधानिक घोषित कर सकती है। दूसरे शब्दों में यह अधिकार कार्यपालिका तथा विधायिका दोनों के विरुद्ध प्राप्त है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' पदावली का प्रयोग किया गया है, जिससे स्पष्ट है कि यह अधिकार कार्यपालिका के विरुद्ध दिया गया है। किन्तु अनुच्छेद 13 तथा न्यायपालिका के दृष्टिकोण से स्पष्ट होता है कि यह अधिकार विधायिका के विरुद्ध भी प्राप्त है। भारतीय न्यायपालिका विधायिका द्वारा बनाई गई किसी भी विधि की संवैधानिकता की जांच कर सकता है। अत: भारतीय संदर्भ में दोनों अर्थों को स्वीकार किया गया है।

- **अनुच्छेद 21(A) : शिक्षा का अधिकार (Right to education)**

संविधान के 86वें संशोधन अधिनियम 2002 द्वारा 21(A) जोड़ा गया है, जो यह प्रावधान करता है कि राज्य विधि बनाकर 6 से 14 वर्ष के सभी बालकों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के लिए उपबंध करेगा। शिक्षा का अधिकार एक मूलभूत मानव अधिकार है। किसी भी लोकतांत्रिक प्रणाली की सफलता वहां के सभी नागरिकों के शिक्षित होने पर निर्भर करती है। शिक्षा व्यक्तित्व विकास के साथ देश को भी विकसित होने में योगदान करती है।

उल्लेखनीय है कि नीति निदेशक तत्व के रूप में अनुच्छेद 45 में बालकों के शिक्षा का प्रावधान किया गया था। चूंकि नीति निदेशक तत्व न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है। अत: सरकार ने इस ओर कोई सार्थक कदम नहीं उठाया। इस बीच न्यायालय में कई नागरिकों ने इस अधिकार को मनवाने के लिए वाद प्रस्तुत किए। परिणामस्वरूप न्यायालय ने निर्णय दिया कि अनुच्छेद 21 में शिक्षा का अधिकार एक मूल अधिकार है। आगे चलकर संसद ने इसे संविधान में एक मूल अधिकार के रूप में स्थापित किया। किन्तु सरकार ने इसके बावजूद इस अधिकार को मूर्तरूप देने के लिए कोई कानून पारित नहीं किया।

सात वर्ष पश्चात् संसद ने नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिनियम 2009 पारित किया, जो 1 अप्रैल, 2010 से लागू हुआ। प्रश्न यह है कि इसे कैसे ठीक ढंग से लागू किया जाएगा? आज देश की जनसंख्या बहुत बढ़ गई है। 6 से 14 वर्ष तक के बालकों की संख्या करोड़ों में है, राज्य के पास वर्तमान के विद्यालयों के संचालन के लिए ही धन नहीं है। शिक्षा के अधिकार के मूल अधिकार हो जाने के कारण एक व्यक्ति इसे लागू कराने के लिए न्यायालय जा सकता है और न्यायालय सरकार को आदेश दे सकता है। किन्तु किसी स्थान पर विद्यालय ही नहीं खुले है और खुले है, तो अध्यापक ही नहीं है, तो शिक्षा का यह मूल अधिकार प्राप्त करना एक स्वप्न-सा ही प्रतीत होता है।

- **अनुच्छेद-22 : कुछ दशाओं में गिरफ्तारी व निरोध से संरक्षण**
  (Protection against arrest & detention in certain cases)

अनुच्छेद 22 गिरफ्तारी व बंदीकरण के विरुद्ध सांविधानिक सुरक्षा प्रदान करता है। इसके अनुसार बंदी बनाए जाने वाले व्यक्ति को कुछ अधिकार प्रदान किए गए हैं। इस अनुच्छेद के अनुसार गिरफ्तारी 2 प्रकार की होती हैं -

1) सामान्य दण्ड विधि के अधीन गिरफ्तारी (Punitive detention)।
2) निवारक निरोध के अधीन गिरफ्तारी (Preventive detention)।

अनुच्छेद 22 में 7 खण्ड हैं, जिसमें 1 व 2 सामान्य दण्ड विधि के अधीन गिरफ्तार व्यक्तियों के अधिकारों के संबंध में प्रावधान किया गया है, जबकि 4 से 7 तक में निवारक निरोध के संबंध में प्रावधान किए गए हैं।

1) **सामान्य दण्ड विधि के अधीन गिरफ्तारी से संरक्षण** - अनुच्छेद 22 (1) व (2) अपराध के संबंध में गिरफ्तार हुए व्यक्ति को निम्नलिखित अधिकार प्रदान करते हैं -
   - **a)** गिरफ्तारी के कारणों को जानने का अधिकार।
   - **b)** अपनी रूचि के वकील से परामर्श व बचाव करने का अधिकार।
   - **c)** गिरफ्तारी के 24 घण्टे के अन्दर किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किए जाने का अधिकार।
2) **निवारक निरोध से संबंधित प्रावधान** - अनुच्छेद 22 (4) से (7) किसी व्यक्ति को निवारक निरोध के अन्तर्गत की गई गिरफ्तारी से संरक्षण प्रदान करते हैं। निवारक गिरफ्तारी दण्डात्मक गिरफ्तार से भिन्न है। दण्डात्मक गिरफ्तारी निरुद्ध व्यक्ति

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

को दण्ड देने के उद्देश्य से की जाती है, किन्तु निवारक निरोध का उद्देश्य दण्ड देना नहीं, वरन् अपराध को रोकना या निरुद्ध व्यक्ति को किसी निश्चित उद्देश्य को पूरा करने से रोकना है। इसमें निरुद्ध किए गए व्यक्ति के ऊपर अपराध का आरोप नहीं लगाया जाता है। केवल संदेह के आधार पर गिरफ्तार कर लिया जाता है। निवारक निरोध के अन्तर्गत गिरफ्तार व्यक्ति को 3 संरक्षण दिए गए हैं, जो निम्नलिखित हैं –

a) **निरोध का सलाहकार बोर्ड द्वारा पुनर्विलोकन** – निवारक विधि के अन्तर्गत गिरफ्तार किए गए किसी व्यक्ति को तब तक 3 माह से अधिक अवधि के लिए निरोध में नहीं रखा जा सकता, जब तक सलाहकार बोर्ड यह रिपोर्ट न दे दे कि उसके निरोध में रखे जाने के पर्याप्त कारण हैं। सलाहकार बोर्ड में 1 अध्यक्ष व 2 सदस्य होंगे, जिसमें अध्यक्ष उच्च न्यायालय का सेवारत् न्यायाधीश होगा, जबकि अन्य सदस्य उच्च न्यायालय के सेवारत् या सेवानिवृत्त न्यायालय होंगे।

b) गिरफ्तारी के कारण जानने का अधिकार।

c) **आवेदन देने का अधिकार** – निवारक निरोध के अन्तर्गत गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को अपनी गिरफ्तारी के विरुद्ध न्यायालय में आवेदन करने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद 22 संसद को निवारक निरोध संबंधी कानून बनाने की शक्ति भी प्रदान करता है, जिसका संसद द्वारा समय-समय पर प्रयोग कर निवारक निरोध अधिनियम बनाए हैं, जो निम्नलिखित हैं –

1) निवारक निरोध अधिनियम, 1950 (Preventive detention Act, 1950)।
2) आन्तरिक सुरक्षा अधिनियम, 1971 (Maintenance of internal security Act, 1971 : MISA)।
3) राष्ट्रीय सुरक्षा कानून, 1980 (National security Act, 1980)।
4) आतंकवाद तथा विध्वंसक गतिविधि (निरोधक) अधिनियम, 1985 (Terrorist & disruptive activities prevention Act, 1985 : TADA)।
5) आतंकवादी निरोधी अधिनिमय, 2002 (Prevention of Terrorism Act, 2002 : POTA)।
6) गैर-कानूनी गतिविधियां (निवारण) अधिनियम, 2004 (Un-lawful activities prevention Act, 2004)।

आकार IAS
Shaping Your Dreams

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

शोषण के विरुद्ध अधिकार : अनुच्छेद - 23 और 24
Right Against Extloitation : Article - 23 & 24

संविधान के अनुच्छेद 23 और 24 में शोषण के विरुद्ध अधिकारों का प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 23 के अनुसार मानव दुर्व्यापार (Human Trafficing) तथा बेगार या बलात श्रम (Forced Labour) का प्रतिषेध किया गया है। मानव दुर्व्यापार का अर्थ स्त्री और पुरुषों की खरीद-फरोख्त से है। इसमें स्त्रियों और बच्चों के साथ अनैतिक व्यवहार भी सम्मिलित है। इसी प्रकार बलात श्रम या बेगार के रूप में दलित, खेतिहर मजूदर, महिलाओं का शोषण किया जाता है। अत: इस अनुच्छेद द्वारा भारतीय समाज के दो बहुत बड़े कलंक नारी क्रय-विक्रय तथा बेगार का अंत हो गया।

अनुच्छेद 35 के अन्तर्गत संसद को इस अनुच्छेद को क्रियान्वित करने के लिए कानून बनाकर दण्ड देने की शक्ति दी गई है। अपनी इस शक्ति का प्रयोग कर संसद ने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948, बंधुआ मजदूर प्रणाली उन्मूलन अधिनियम 1976 तथा स्त्री व लड़की अनैतिक व्यापार दमन (संशोधन) अधिनियम 1986 पारित किया है। ध्यातव्य है कि अनुच्छेद 23(2) में कहा गया है कि राज्य सार्वजनिक उद्देश्यों से नागरिकों को अनिवार्य सेवाओं के लिए मजबूर कर सकता है। इसका अर्थ यह है कि सैनिक सेवाओं में या राष्ट्रीय विकास के लिए या आवश्यक सेवाओं के लिए किसी भी नागरिक को उसकी इच्छा के विरुद्ध भी कार्य करने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

अनुच्छेद 24 बाल श्रम को अवैधानिक घोषित करता है। इसमें कहा गया है कि 14 वर्ष से कम आयु के बालकों से किसी कारखाने, खान आदि में काम न लिया जाएगा। इस प्रावधान का उद्देश्य आदर्श नागरिकों का निर्माण करने में सहायता देना है। वस्तुत: कम आयु के बालकों से कारखानों में काम लेने अथवा अन्य प्रकार के कठोर श्रम लेने से उनका स्वाभाविक विकास रुक जाता है और उनमें विभिन्न प्रकार के नैतिक अवगुण उत्पन्न हो जाते हैं।

धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार : अनुच्छेद - 25 से 28
Right to Freedom of Religion : Article - 25 to 28

संविधान के अनुसार भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है। यहां धर्मनिरपेक्षता का अर्थ न ईश्वर विरोधी और न ही ईश्वर समर्थक है। भारत में इसका अभिप्राय यह है कि राज्य का कोई राजकीय धर्म नहीं होगा तथा राज्य प्रत्येक धर्म को एकसमान संरक्षण प्रदान करेगा। धर्म व्यक्ति के अन्त:करण मामला है, अत: प्रत्येक व्यक्ति को अपने विश्वास के अनुसार किसी भी धर्म, पंथ व सम्प्रदाय को मानने की पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता होनी चाहिए। इसी आशय से भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 में धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की गई है।

- **अनुच्छेद-25 : अन्त:करण की स्वतंत्रता (Freedom of conscience)**

अनुच्छेद 25 (1) के अनुसार सभी व्यक्तियों को अन्त:करण की स्वतंत्रता का और धर्म को बिना किसी बाधा के मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान अधिकार है। यह व्यक्ति को 2 प्रकार के अधिकार प्रदान करता है -

1) अन्त:करण की स्वतंत्रता। **2)** धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता।

अन्त:करण की स्वतंत्रता का तात्पर्य प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा अपने व्यक्तिगत विश्वास, आस्था, विचार व चेतना के अनुसार जीवन जीने के अधिकार से है। यह स्वतंत्रता जब बाह्य रूपों में व्यक्त की जाती है, तो उसे 'धर्म का मानना' और 'प्रचार करना' कहते हैं। धर्म के **मानने** से तात्पर्य है कि व्यक्ति द्वारा अपने धर्म के प्रति श्रद्धा एवं विश्वासों का स्वतंत्रतापूर्वक और खुलेआम घोषित करना। धर्म के **आचरण** करने का तात्पर्य धर्म द्वारा विहित कर्तव्यों, कर्मकाण्डों और धार्मिक कृत्यों को प्रदर्शित करने की स्वतंत्रता से है। धर्म के **प्रचार** करने का अर्थ है - व्यक्ति अपने धार्मिक विश्वासों एवं विचारों की अभिव्यक्ति दूसरों से सम्प्रेषित और उनका प्रकाशन करना।

अनुच्छेद 25 (2) धर्म की स्वतंत्रता पर निम्नलिखित आधारों पर युक्तियुक्त प्रतिबंध लगाता है, जो निम्नलिखित हैं -

1) **सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार एवं जनता के स्वास्थ्य के हित में** - धर्म के नाम पर कोई ऐसा कार्य नहीं किया जा सकता, जो सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार एवं जनता के स्वास्थ्य के विरुद्ध हो। उदाहरणार्थ - धर्म के नाम पर मानव बलि या शिशु

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

बलि, अस्पृश्यता। धर्म के प्रचार के नाम पर किसी व्यक्ति को बलपूर्वक या दबाव डालकर धर्म परिवर्तन के लिए विवश किया जाना लोक व्यवस्था के विरुद्ध है।

2) **धर्म से संबद्ध आर्थिक, वित्तीय, राजनीतिक क्रियाकलापों के संबंध में कानून बनाकर** - राज्य धार्मिक आचरण से संबंधित गैर-धार्मिक पक्ष, जैसे - आर्थिक, वित्तीय, राजनीतिक आदि के संबंध में कानून बना सकता है।

3) **समाज कल्याण व समाज सुधार के आधार पर** - व्यक्ति की धार्मिक स्वतंत्रता राज्य द्वारा समाज कल्याण एवं सुधार में बाधा नहीं उत्पन्न कर सकती है। राज्य कानून बनाकर उन सामाजिक कुरीतियों व अंधविश्वासों का उन्मूलन कर सकता है, जो राज्य की प्रगति में बाधा उत्पन्न करते हैं। उदाहरणार्थ - सती व देवदासी प्रथा।

- **अनुच्छेद-26 : धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता (Freedom to manage religious affairs)**

लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय को -

1) अपने धर्म के लिए संस्थाओं की स्थापना और पोषण का,

2) धार्मिक कार्यों के प्रबंध का,

3) सम्पत्ति के अर्जन और स्वामित्व का,

4) ऐसी सम्पत्ति का विधि के अनुसार प्रशासन करने का अधिकार होगा।

- **अनुच्छेद-27 : किसी विशिष्ट धर्म की अभिव्यक्ति के लिए करो के संदाय (पेमेंट) के बारे में स्वतंत्रता (Freedom as to payment of taxes for promotion of any particular religion)**

इस अनुच्छेद के अनुसार किसी भी व्यक्ति को ऐसा कर देने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा, जिसकी आय को किसी विशेष धर्म या धार्मिक सम्प्रदाय की वृद्धि के लिए व्यय किया जाता है। यहां उल्लेखनीय है कि कर व शुल्क में अन्तर है। संविधान कर की मनाही करता है, किन्तु यदि राज्य किसी धार्मिक सम्प्रदाय के लिए कार्य करता है, तो ऐसे कार्य के लिए राज्य उस धार्मिक सम्प्रदाय के लोगों से शुल्क वसूल कर सकता है।

- **अनुच्छेद-28 : कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के बारे में स्वतंत्रता (Freedom as to attendance at religious instruction or religious worship in certain educational institutions)**

इस अनुच्छेद मे निम्नलिखित प्रवधान किए गए हैं -

1) उन शिक्षण संस्थाओं में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी, जो पूर्णत: सरकार के खर्च पर संचालित होती हैं।

2) वे शिक्षण संस्थान जो किसी ऐसे न्यास (ट्रस्ट) द्वारा स्थापित की गई है, जिसके अनुसार उस संस्थान में धार्मिक शिक्षा देना अनिवार्य है, तो उसमें धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है। भले ही उस संस्था का प्रशासन राज्य करता हो।

3) राज्य से मान्यता प्राप्त या राज्य निधि से सहायता प्राप्त किसी शिक्षण संस्थान में अध्ययनरत् विद्यार्थी को धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। यदि विद्यार्थी अवयस्क है, तो उसके संरक्षक की अनुमति अनिवार्य होगी।

संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार : अनुच्छेद - 29 व 30
Cultural and Educational Rights : Article - 29 & 30

भारत की सांस्कृतिक अनेकता के कारण संविधान निर्माताओं द्वारा भारत के नागरिकों को संस्कृति तथा शिक्षा संबंधी अधिकार प्रदान किए हैं, ताकि बहुमत की निरंकुशता से अल्पसंख्यक वर्ग के अधिकारों को सुरक्षित किया जा सके। अनुच्छेद 29 व 30 इसी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं।

- **अनुच्छेद-29 : अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का संरक्षण (Protection of interests of minorities)**

अनुच्छेद 29(1) के अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक को अपनी विशेष **भाषा, लिपि** या **संस्कृति** को बनाए रखने का अधिकार होगा। यह अधिकार केवल उन नागरिकों को प्रदान किया गया है, जो भाषा, लिपि या संस्कृति की दृष्टि से अल्पसंख्यक हैं।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

अनुच्छेद 29 (2) के अनुसार राज्य द्वारा घोषित या राजकीय सहायता से संचालित किसी शिक्षा संस्थान में प्रवेश के लिए किसी भी नागरिक को उसकी भाषा, धर्म, जाति और वंश के आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा।

- **अनुच्छेद-30 : शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार (Right of minorities to establish and administer educational institutions)**

इस अनुच्छेद के अनुसार राज्य धर्म या भाषा के आधार पर किसी शिक्षण संस्थान को सहायता देने से भेदभाव नहीं बरतेगा और सभी अल्पसंख्यक वर्गों को धर्म या भाषा पर आधारित अपनी रुचि की शिक्षण संस्था की स्थापना का अधिकार देगा। स्पष्ट है कि राज्य किसी अल्पसंख्यक वर्ग पर किसी भी प्रकार की भाषा या संस्कृति नहीं थोपेगा, बल्कि उनकी संस्कृति व भाषा को पूरा संरक्षण देगा, जिससे वह अपनी अस्मिता को बनाए रखे।

संस्कृति व शिक्षा संबंधी अधिकारों की यह कहकर आलोचना की गई है कि ये स्वतंत्रताएं धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता और जातियों के एकीकरण के लिए चुनौती सिद्ध हो सकती है। धर्म और समुदाय पर आधारित शिक्षा संस्थान राष्ट्रीय एकता और धर्मनिरपेक्षता में बाधा प्रस्तुत करेगी, यह साम्प्रदायिक व संकीर्ण राष्ट्र विरोधी दृष्टिकोण का विकास करेगा, जिसके भयंकर परिणाम निकल सकते हैं। दूसरा, अनुच्छेद 29 में भी संस्कृति शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है और यदि संस्कृति शब्द का अर्थ सामाजिक, धार्मिक और नैतिक मूल्यों पर आधारित रुढ़ियों से लिया गया, तो ये स्वतंत्रताएं प्रतिगामी और प्रतिक्रियावादी सिद्ध हो सकती है।

लेकिन भारत में विभिन्नता होने के साथ एकता को बनाए रखना अतिआवश्यक है। यह तभी संभव है, जब इस लोकतांत्रिक देश में सभी अपनी अस्मिता के साथ जीने का अधिकार रखते हो, जिससे वे स्वयं को सुरक्षित महसूस कर सके और देश के विकास में भागीदारी निभा सके। अत: भारतीय संविधान में शिक्षा व संस्कृति का अधिकार अल्पसंख्यक वर्गों के लिए आवश्यक है।

सम्पत्ति का अधिकार : अनुच्छेद - 31 (अब निरसित)
Right to Property : Article - 31 (Now Omitted)

मूल संविधान के भाग 3 में 7 अधिकारों का उल्लेख था, जिनमें से एक सम्पत्ति का अधिकार था, जो अनुच्छेद 19 (1)(F) तथा अनुच्छेद 31 में वर्णित था। अनुच्छेद 19(1)(F) के अनुसार सभी नागरिकों को सम्पत्ति को प्राप्त करने, बनाए रखने और बेचने का अधिकार था, जबकि अनुच्छेद 31 के अनुसार किसी व्यक्ति को विधि के अधिकार के बिना सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता था। संविधान लागू होने के बाद मूल अधिकारों में सबसे अधिक विवाद सम्पत्ति के सम्बन्ध में रहा है और इस अधिकार को लेकर अनेक सांवैधानिक मामले न्यायालय में उठाए गए हैं। कालांतर में 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा 19(1)(F) और अनुच्छेद 31 को भाग 3 से हटाकर एक नया अनुच्छेद 300(A) बनाया गया, जिससे सम्पत्ति का मौलिक अधिकार समाप्त हो गया और यह एक कानूनी अधिकार बन गया। सम्पत्ति के इस आमूल परिवर्तन का एक लम्बा इतिहास है, जिसे निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है -

1) संविधान लागू होने के तुरंत बाद विभिन्न राज्यों में पारित किए गए भूमि सुधार सम्बन्धी कानूनों विशेषकर जमींदारी उन्मूलन कानूनों की संवैधानिकता को चुनौती दी गई। यह आपत्ति उठाई गई कि राज्य नागरिकों के मूल अधिकारों का अतिक्रमण कर रहा है। विभिन्न राज्यों के उच्च न्यायालयों ने जमींदारी उन्मूलन अधिनियम को संवैधानिक घोषित किया, किन्तु इन निर्णयों के विरुद्ध जमींदारों ने सर्वोच्च न्यायालय में अपील की। इस अवसर पर संसद ने तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए अनुच्छेद 31 में आवश्यक संशोधन करने का निश्चय किया।

2) संविधान के प्रथम संशोधन ने अनुच्छेद 31 में 2 नए अनुच्छेद 31(A) व 31(B) जोड़ने की व्यवस्था की, ताकि सामाजिक न्याय के पक्ष में बनाई गई विधियों को अन्य मूल अधिकारों से सुरक्षा दी जा सके। दूसरे शब्दों में इन अनुच्छेदों का मुख्य उद्देश्य भूमि सुधार नीतियों को न्यायालय में इस आधार पर चुनौती दिए जाने से बचाना है कि वे संविधान के अनुच्छेद 14 व 19 का अतिक्रमण करते हैं।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

3) अनुच्छेद 31(A) का उद्देश्य जमींदारी उन्मूलन करने के लिए पारित विधियों की विविधता को न्यायालय में चुनौती दिए जाने से संरक्षण प्रदान करता है। इसके अन्तर्गत राज्य द्वारा सम्पदाओं आदि के अर्जन के लिए बनाए गए कानून को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है कि वे अनुच्छेद 14 या 19 से असंगत हैं या उन्हें न्यून करते हैं।

4) अनुच्छेद 31(B) यह प्रावधान करता है कि 9वीं अनुसूची में शामिल कानूनों और नियमों को इस आधार पर शून्य नहीं समझा जाएगा कि वे मूल अधिकारों से असंगत है या उन्हें छीन लेते हैं या न्यून करते हैं। वस्तुत: इस अनुच्छेद का उद्देश्य यह था कि जमींदारी उन्मूलन संबंधी नियमों को मूल अधिकारों द्वारा प्रदान किए गए संरक्षणों से मुक्त रखना तथा न्यायपालिका के हस्तक्षेप से उन्हें बचाना था।

5) आगे चलकर 25वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1971 द्वारा अनुच्छेद 31(C) जोड़ा गया। इसके अनुसार अनुच्छेद 39(B) तथा 39(C) में उल्लेखित नीति निदेशक तत्वों को व्यवहारिक रूप देने के लिए यदि सरकार कोई कानून बनाती है, तो उसे इस आधार पर अवैध नहीं माना जाएगा कि वह अनुच्छेद 14, 19 और 31 के विरुद्ध है।

6) संविधान के 42वें संविधान संशोधन अधिनिय, 1976 द्वारा अनुच्छेद 31(C) में संशोधन करके इसके क्षेत्र को विस्तृत कर दिया गया। इसके तहत् संविधान के भाग 4 (नीति निदेशक तत्व) में उल्लेखित किसी भी सिद्धान्त को लागू करने हेतु बनाए गए किसी भी कानून को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि उससे किसी मूल अधिकार का अतिक्रमण होता है।

7) ध्यान देने योग्य बात है कि 25वें संविधान संशोधन में यह व्यवस्था केवल 1 निर्देशक सिद्धान्त अनुच्छेद 39 के विषय में की गई थी, जबकि 42वें संविधान संशोधन द्वारा यह प्रावधान समस्त नीति निदेशक सिद्धान्तों तक विस्तृत कर दिया गया।

8) 1980 ई. में मिनर्वा मिल्स के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 42वें संशोधन को असंवैधानिक घोषित कर दिया। वर्तमान स्थिति यह है कि संसद किसी भी सम्पत्ति को केवल अनुच्छेद 39(B) व (C) में वर्णित नीति निदेशक सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने के लिए हस्तगत कर सकती है और नागरिक ऐसे हस्तगत को मूल अधिकारों के नाम पर चुनौती नहीं दे सकते है।

9) अनुच्छेद 31 में संशोधन करके सम्पत्ति के अधिकार को सीमित करने के निरन्तर प्रयत्नों के बाद भी सम्पत्ति के अधिकार को आर्थिक समानता स्थापित करने में बाधक महसूस किया गया। अत: 1978 में किए गए 44वें संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 31 को भाग 3 से निकालकर एक विधिक अधिकार बना दिया गया।

10) सम्पत्ति के अधिकार को मूल अधिकार की श्रेणी से निकाल लेने का परिणाम यह है कि बहुत आसानी से केवल एक कानून का निर्माण करके किसी भी व्यक्तिगत सम्पत्ति को बिना किसी शर्त के ले सकती है। इसका अर्थ यह हुआ कि व्यक्तिगत सम्पत्ति के सम्बन्ध में न्यायालय का क्षेत्राधिकार अत्यधिक सीमित कर दिया गया है और वह पूर्णत: सरकार की दया का पात्र बन गया है। नागरिकों के पास अपनी सम्पत्ति को सुरक्षित रखने का कोई साधन नहीं होगा, क्योंकि वह न्यायालय में उस कानून के औचित्य को मूल अधिकारों के आधार पर चुनौती नहीं दे सकते हैं।

11) वर्तमान में अनुच्छेद 31(A), 31(B) और 31(C) को संविधान में बनाए रखा गया है। इन अनुच्छेदों में कुछ परिस्थितियों में सरकार द्वारा व्यक्तिगत सम्पत्ति को हस्तगत करने वाले कानूनों को अनुच्छेद 14 व 19 की परिधि से मुक्त करने का प्रावधान किया गया है।

सांविधानिक उपचारों का अधिकार : अनुच्छेद - 32
Right to Constitutional Remedies : Article - 32

संविधान के द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों का कोई महत्व न होता, यदि उनको लागू करने की कोई व्यवस्था न की जाती। भारत के संविधान का अनुच्छेद 32 नागरिकों को संवैधानिक उपचारों का अधिकार प्रदान करता है, जिसका प्रयोग करके वे अपने मूल अधिकारों को न्यायपालिका की सहायता से सुरक्षित रख सकते हैं। इस अनुच्छेद के महत्व पर डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था कि "यदि मुझसे पूछा जाए कि संविधान का कौन-सा विशेष अनुच्छेद सबसे महत्वपूर्ण है, जिसके बिना यह संविधान शून्य हो जाएगा, तो मैं इसके सिवाय किसी दूसरे अनुच्छेद का नाम नहीं लूंगा, यह संविधान की आत्मा है।"

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

अनुच्छेद 32(1) नागरिकों को संविधान के भाग 3 द्वार प्रदत्त अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए समुचित कार्यवाहियों द्वारा उच्चतम न्यायालय में समावेदन करने का अधिकार प्रत्याभूत (गारंटी) किया जाता है। दूसरे शब्दों में सर्वोच्च न्यायालय मूल अधिकारों की गारंटी देने वाली संस्था है। यदि किसी व्यक्ति के मूल अधिकार का उल्लंघन होता है, तो वह सर्वोच्च न्यायालय में न्याय प्राप्ति के लिए निवेदन कर सकता है। दूसरा इस अनुच्छेद के द्वारा पीड़ित व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह सीधे उच्चतम न्यायालय के पास निवेदन कर सकता है। यहां उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद 32(1) केवल मूल अधिकारों की ही गारंटी प्रदान करता है, अन्य अधिकारों की नहीं, जैसे - विधिक अधिकार।

अनुच्छेद 32(1) न्यायिक पुनर्वलोकन का अधिकार भी प्रदान करता है। यदि सरकार कोई ऐसा कानून बनाती है या कोई ऐसा कार्य करती है, जिससे किसी नागरिक के किसी मूल अधिकार का अतिक्रमण होता है, तो वह सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दे सकता है। न्यायालय उस कानून की संवैधानिकता का परिक्षण करने के बाद उसे असंवैधानिक घोषित कर सकती है।

अनुच्छेद 32(2) इस अनुच्छेद के तहत् मूल अधिकारों को लागू कराने के लिए उच्चतम न्यायालय निदेश (Directions) या आदेश (Order) या रिट (Writs) जारी कर सकता है। संविधान का अनुच्छेद 32(2) सर्वोच्च न्यायालय को तथा 226 उच्च न्यायालय को 5 प्रकार के रिट जारी करने का अधिकार प्रदान करता है -

1) **बंदी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus)** - हैबियर कॉरपस एक लैटीन शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है - शरीर प्राप्त करना। यह रिट एक आदेश के रूप में उन व्यक्तियों के विरुद्ध जारी किया जाता है, जो किसी को बंदी बनाए हुए हैं। उन्हें यह आदेश दिया जाता है कि वह निरुद्ध व्यक्ति को न्यायालय के समक्ष उपस्थित करें, ताकि न्यायालय इस बात की जांच कर सके कि उस व्यक्ति को बंदी बनाए जाने के पीछे उचित कारण है या नहीं। यदि उचित कारण नहीं है, तो उसे मुक्त किया जाए। यह रिट किसी भी व्यक्ति को जारी की जारी की जा सकती है, चाहे वह सरकारी अधिकारी या प्राइवेट व्यक्ति।
2) **परमादेश (Mandamus)** - यह रिट न्यायालय द्वारा उस समय जारी की जाती है, जब कोई लोक प्राधिकारी अपने कर्तव्यों के निर्वहन से इन्कार करे और जिसके लिए अन्य कोई विधिक उपचार प्राप्त न हो। इस प्रकार यह रिट तब जारी की जाती है, जब कोई लोक सेवक किसी विधिक कर्तव्य को करने के लिए बाध्य है, किन्तु वह करने से मना करता है। यह रिट निम्नलिखित व्यक्तियों के विरुद्ध जारी नहीं की जा सकती है -
   - **a)** राष्ट्रपति या राज्यपाल के विरुद्ध अपने पद की शक्तियों के प्रयोग तथा कर्तव्यों के पालन के लिए।
   - **b)** किसी प्राइवेट कंपनी या प्राइवेट व्यक्ति के विरुद्ध इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता।
   - **c)** न्यायाधीश के विरुद्ध भी सामान्य स्थितियों में यह रिट जारी नहीं की जा सकती।
3) **प्रतिषेध (Prohibition)** - प्रतिषेध का अर्थ होता है रोकना। यह एक न्यायिक रिट है, जो वरिष्ठ न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालय को जारी किया जाता है। जब कोई अधीनस्थ न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र के बाहर जाकर कार्य करता है या प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन करता है, तो रिट जारी की जाती है। दूसरे शब्दों में इस रिट का उद्देश्य किसी अधीनस्थ न्यायालय को अपनी अधिकारिता का अतिक्रमण करने से रोकना है।
4) **उत्प्रेषण (Certiorari)** - यह रिट भी प्रतिषेध की तरह एक न्यायिक रिट है, जो वरिष्ठ न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालय को जारी किया जाता है। इस रिट के तहत् अधीनस्थ न्यायालय में चलने वाले वादों को वरिष्ठ न्यायालय के पास भेजने का आदेश दिया जाता है, जब अधीनस्थ न्यायालय ने अपने अधिकारिता के बाहर जाकर निर्णय दिया हो या निर्णय में प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन किया हो।

   प्रतिषेध तथा उत्प्रेषण दोनों न्यायिक रिट है, जो कि अधीनस्थ न्यायालय को जारी की जाती है, किन्तु इन दोनों रिटों में अन्तर है। जब कोई अधीनस्थ न्यायालय ऐसे मामले की सुनवाई करता है, जिस पर उसे अधिकारिता प्राप्त नहीं, तो वरिष्ठ न्यायालय प्रतिषेध रिट जारी करके अधीनस्थ न्यायालय को उन कार्यवाहियों को आगे बढ़ने से रोक सकता है। दूसरी ओर यदि अधीनस्थ न्यायालय मुकदमे की सुनवाई कर चुका है और निर्णय दे चुका है, तो उसे उत्प्रेषण रिट जारी की जाएगी और

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

उक्त कार्यवाही को रद्द कर दिया जाएगा।

5) **अधिकार पृच्छा** (Quo Warranto) - अधिकार पृच्छा का शाब्दिक अर्थ है आपका प्राधिकार क्या है? यह रिट ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध जारी की जाती है, जो किसी सार्वजनिक पद को अवैध रूप से धारण किए हुए हैं। इस रिट द्वारा उससे यह पूछा जाता है कि वह किस अधिकार से पद को धारण किए हुए है। इसका मुख्य उद्देश्य किसी व्यक्ति को उक्त पद के धारण करने से रोकना है, जिसे धारण करने का उसे कोई वैध अधिकार नहीं होता है। न्यायालय रिट जारी करके उसे अपने पद से हटा सकता है और उसके पद को रिक्त घोषित कर सकता है।

- **अनुच्छेद 32 व अनुच्छेद 226 में अन्तर (Difference between article 32 & artical 226)**

1) अनुच्छेद 32 से सर्वोच्च न्यायालय को तथा अनुच्छेद 226 से उच्च न्यायालय को रिट जारी करने की शक्ति प्राप्त है।

2) अनुच्छेद 32 के तहत् सर्वोच्च न्यायालय केवल मूल अधिकारों के उल्लंघन होने पर ही रिट जारी कर सकता है, जबकि अनुच्छेद 226 के तहत् उच्च न्यायालय मूल अधिकारों के साथ अन्य अधिकारों के उल्लंघन होने पर भी रिट जारी कर सकता है। इस संदर्भ में उच्च न्यायालय की शक्ति उच्चतम न्यायालय से अधिक है।

3) सर्वोच्च न्यायालय अनुच्छेद 32 के तहत् सम्पूर्ण भारत क्षेत्र में रिट जारी कर सकता है, जबकि उच्च न्यायालय अनुच्छेद 226 के तहत् अपने राज्य क्षेत्र में ही रिट जारी कर सकता है। इस संदर्भ में उच्च न्यायालय का क्षेत्र उच्चतम न्यायालय से कम है।

4) अनुच्छेद 32 स्वयं एक मूल अधिकार है, जबकि अनुच्छेद 226 मूल अधिकार नहीं है।

5) अनुच्छेद 32 मूल अधिकारों पर संवैधानिक गारंटी प्रदान करता है, जबकि अनुच्छेद 226 मूल अधिकार सुनवाई जरूर करता है, किन्तु इसमें कोई संवैधानिक गारंटी का प्रावधान नहीं है।

- **मूल अधिकारों का निर्बंधन और निलम्बन (Suspension of & restrictions on FR)**

मूल अधिकारों पर निर्बंधन या निलम्बन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है -

1) जब अनुच्छेद 352 के अधीन राष्ट्रीय आपातकाल लागू किया गया हो, तो अनुच्छेद 358 के अनुसार अनुच्छेद 19 स्वत: निलम्बित हो जाता है।

2) आपातकाल के दौरान अनुच्छेद 359 राष्ट्रपति को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह अधिसूचना द्वारा अन्य मूल अधिकारों को भी निलम्बित कर सकता है। किन्तु अनुच्छेद 20 व 21 द्वारा प्रदत्त अधिकार कभी-भी निलम्बित नहीं किए जा सकते हैं।

3) अनुच्छेद 33 संसद को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह प्रतिरक्षा सेना, सुरक्षा बलों, पुलिस, इंटेलिजेंस तथा दूरसंचार आदि क्षेत्रों में कार्यरत् लोगों के मूल अधिकारों को विधि बनाकर निर्बंधन आरोपित किया जा सकता है।

4) अनुच्छेद 34 के अनुसार जब किसी क्षेत्र में सेना विधि (Martial law) लागू हो, तब संसद विधि द्वारा मूल अधिकारों पर निर्बंधन आरोपित कर सकती है।

5) संसद संविधान में संशोधन करके मूल अधिकारों को निलम्बित कर सकती है, लेकिन ऐसा करते समय वह मूल ढांचे को नष्ट नहीं कर सकती।

- **मूल अधिकारों की संशोधनीयता व मूल ढांचे की अवधारणा**
  (Amemdability of FR & Concept of Basic Structure)

संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया का वर्णन अनुच्छेद 368 में है, लेकिन इस अनुच्छेद के तहत् संविधान के भाग 3 में वर्णित मूल अधिकारों में संशोधन किया जा सकता है या नहीं? यह प्रश्न हमेशा से विवादस्पद रहा है। अनुच्छेद 13(2) के अनुसार राज्य ऐसी कोई 'विधि' नहीं बनाएगा, जो मूल अधिकार को कम करती हो। प्रश्न यह है कि क्या 'विधि की परिभाषा' में संसद द्वारा किया गया संविधान संशोधन भी शामिल है? इस संदर्भ में सर्वप्रथम 1951 में शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ के मामले में यह प्रश्न उठाया गया कि संसद मूल अधिकारों में संशोधन कर सकती है या नहीं?

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि अनुच्छेद 368 के अधीन संसद द्वारा किया गया संशोधन विधि की परिभाषा में शामिल नहीं है। अत: संसद संविधान में संशोधन कर सकती है।

लेकिन उक्त मत में परिवर्तन करते हुए उच्चतम न्यायालय ने गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य में यह निर्णय दिया कि अनुच्छेद 13(2) में प्रयुक्त विधि के अन्तर्गत सभी प्रकार के कानून व संशोधन (अनुच्छेद 368) शामिल हैं। अत: संसद को मूल अधिकारों में संशोधन करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है। इस मामले में उत्पन्न कठिनाइयों को दूर करने के लिए संसद ने 1971 में 24वें संविधान संशोधन किया, जिसके अनुसार –

1) संसद संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है।

2) संसद द्वारा किए गए संविधान संशोधन को अनुच्छेद 13 के अधीन विधि नहीं माना जाएगा।

3) राष्ट्रपति सभी संविधान संशोधनों पर अपनी अनुमति देने के लिए बाध्य होगा।

24वें संविधान संशोधन की संवैधानिकता को केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के मामले में चुनौती दी गई। उच्चतम न्यायालय में इस मामले की सुनवाई के लिए अब तक की सबसे बड़ी 13 सदस्यीय खण्डपीठ का गठन किया। इस खण्डपीठ ने 7:6 के बहुमत से यह निर्णय दिया कि –

1) संसद को मूल अधिकारों में संशोधन करने की शक्ति प्राप्त है और ऐसा संशोधन अनुच्छेद 13(2) के अधीन विधि की परिभाषा में शामिल नहीं किया जाएगा।

2) संसद को संविधान में संशोधन करने की व्यापक शक्ति प्राप्त है, लेकिन वह इस शक्ति का प्रयोग करके संविधान के '**मूल ढांचे**' को नष्ट नहीं कर सकती है। इस प्रकार न्यायालय द्वारा संविधान के मूल ढांचे की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है।

केशवानन्द भारती वाद से उत्पन्न कठिनाइयों को दूर करने के लिए पुन: संसद ने 1976 में 42वां संविधान संशोधन किया, जिसके अनुसार –

1) संसद द्वारा किए गए संविधान संशोधन की वैधता को किसी भी आधार पर न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है।

2) संसद की संविधान संशोधन की शक्ति पर कोई परिसीमा नहीं होगी।

संविधान के इस संशोधन की संवैधानिकता को पुन: मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ के मामले में चुनौती दी गई, जिसमें न्यायालय ने निर्णय दिया गया कि किसी भी विधि या संशोधन का न्यायिक पुनर्वलोकन किया जा सकता है, क्योंकि न्यायिक पुनर्वलोकन संविधान का मूल ढांचा है। अत: इस आधार पर उपरोक्त संशोधन असंवैधानिक है।

कुल मिलाकर संसद को मूल अधिकारों में संशोधन करने का अधिकार है, किन्तु यह शक्ति असीमित नहीं है। संसद मूल अधिकारों में इस प्रकार का कोई संशोधन नहीं कर सकती है, जिससे संविधान के मूल ढांचे या मूल संरचना को क्षति पहुंचती हो। न्यायालय ने संविधान का मूल ढांचा क्या है, इसे परिभाषित नहीं किया, किन्तु समय-समय पर विभिन्न वादों में इसकी व्याख्या की है।

- **आलोचनाएं (Criticism of FR)**

1) **व्यापक सीमाएं** – यह असंख्य अपवादों, प्रतिबंधों एवं व्याख्याओं का विषय है। इस तरह आलोचकों ने इस बात का उल्लेख किया है कि एक तरफ तो संविधान मौलिक अधिकार प्रदान करता है, वहीं दूसरी तरफ उसे छीन लेता है।

2) **कोई सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार नहीं** – इसमें मुख्यत: राजनीतिक अधिकारों का जिक्र है, किन्तु सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों की व्याख्या नहीं है, जैसे – सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, काम का अधिकार, रोजगार का अधिकार।

3) **स्पष्टता का अभाव** – इसकी व्याख्या अस्पष्ट, अनिश्चित एवं धुंधली है। कई अभिव्यक्तियां, जैसे – युक्तियुक्त प्रतिबंध, अल्पसंख्यक, लोक व्यवस्था आदि सही से व्याख्यायित नहीं है।

4) **स्थायित्व का अभाव** – इन अधिकारों में संसद संविधान संशोधन कर कटौती या समाप्त कर सकती है, जैसे – 44वें संविधान संशोधन द्वारा सम्पत्ति का अधिकार समाप्त कर दिया गया।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

5) **आपातकाल के दौरान निलम्बन** - अनुच्छेद 20 व 21 को छोड़कर राष्ट्रीय आपातकाल के समय सभी मौलिक अधिकारों पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है। यह व्यवस्था लोकतंत्र के आधार को कमजोर करती है।

6) **महंगा उपचार** - न्यायपालिका इन अधिकारों की रक्षा के लिए उत्तरदायी है, किन्तु न्यायिक प्रक्रिया आम आदमी के लिए काफी खर्चीली है।

7) **निवारक निरोध** - अनुच्छेद 22 निवारक निरोध का उपबंध मूल अधिकारों की मूल भावना से इसे दूर करता है। यह राज्य को मनमानी शक्ति प्रदान करता है, जो व्यक्तिगत् स्वतंत्रता को खतरे में डाल देती है।

- **मूल अधिकारों का महत्व (Importance of FR)**

मूल अधिकारों का महत्व इस बात से स्पष्ट होता है कि विश्व के लगभग सभी लोकतांत्रिक देशों के संविधान में इसका उल्लेख पाया जाता है। जहां तक इस पर लगाए गए प्रतिबंधों की आलोचना है, वह तर्कसंगत प्रतीत नहीं होती हैं। किसी भी समाज में व्यक्तियों के अधिकार पूर्ण और असीमित नहीं हो सकते हैं। जिस समाज में व्यक्तियों को असीमित अधिकार होंगे, वहां अराजकता और अव्यवस्था होगी। एक लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना हेतु नागरिकों के मूल अधिकारों पर युक्तियुक्त प्रतिबंध आवश्यक है। वस्तुत: भारतीय संविधान व्यक्तिगत हित व समाजिक हित में सामान्जस्य स्थापित करने का प्रयास करता है। संविधान जहां मूल अधिकारों का उल्लेख करता है, वहीं उसने इन अधिकारों के प्रयोग की सीमाएं भी निर्धारित की हैं।

इनके अलावा मूल अधिकार राजनीतिक न्याय की स्थापना करते हैं, जो सशक्त लोकतंत्र की स्थापना में सहायक होता है। यह कानून के शासन (Rule of law) की स्थापना करते हैं, जो समानता के आदर्श को स्थापित करती है। अनुसूचित जाति एवं जनजाति, अल्पसंख्यक, महिलाओं आदि पिछड़े वर्गों को मूल अधिकार देकर उनका शोषण से संरक्षण किया गया है, ताकि वह समाज की मुख्यधारा में आ सके। सबसे महत्वपूर्ण मूल अधिकार धर्मनिरपेक्ष राज्य बनाने में सहायक है।

आकार IAS
Shaping Your Dreams

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

नीति निदेशक तत्व : अनुच्छेद - 36 से 51
Directive Principles : Article - 36 to 51

भारत में राज्यों की नीति निदेशक सिद्धान्तों का वर्णन संविधान के भाग 4 में अनुच्छेद 36 से 51 में किया गया है, जो कि कल्याणकारी राज्य की विचारधारा पर आधारित है। संविधान निर्माताओं का उद्देश्य देश के आर्थिक जीवन में मौलिक परिवर्तन लाना तथा ऐसी बाह्य परिस्थितियों का सृजन करना था, जिनमें मनुष्य अपना पूर्ण विकास कर सके। इन सिद्धान्तों में हमारे संविधान के आर्थिक व सामाजिक न्याय का वास्तविक तत्व निहित हैं। ये तत्व हमारे संविधान की प्रतिज्ञाओं और आकाक्षाओं को वाणी प्रदान करते हैं। निदेशक सिद्धान्तों का प्रयोजन शांतिपूर्ण तरीकों से सामाजिक क्रांति का पथ प्रशस्त कर कुछ सामाजिक व आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करना है।

इन निदेशक सिद्धान्तों की ग्रहण करने की प्रेरणा आयरलैण्ड के संविधान से ली गई है। प्रो. पायली का भी मानना है कि इस अध्याय में विदेशी विचार अंकित किए गए हैं, जो आधुनिक पाश्चात्य सामाजिक तथा आर्थिक दार्शनिक सिद्धान्तों का अनुसरण करते हैं। वस्तुत: इसकी पाश्चात्य अवधारणा सर्वथा निराधार है। इनमें से बहुत से सिद्धान्त पूर्णत: भारतीय है और राष्ट्रीय आन्दोलन के आधार स्तम्भ रहे हैं। ग्राम पंचायत, कुटीर उद्योग, नशाबंदी, गौ-वध निषेध, अनुसूचित जाति व जनजाति से संबद्ध कई उपबंध ऐसे हैं, जो पूर्णत: भारतीय हैं। ये ऐसे आदर्श हैं, जिनकी स्वीकृति के लिए गांधीजी ने जीवनभर परिश्रम किया था।

- **संविधान द्वारा प्रदत्त नीति निदेशक तत्व (Directive Principles)**

वर्तमान में संविधान के भाग 4 में शामिल सभी अनुच्छेद और उनकी मूल विषय वस्तु इस प्रकार है :-

अनुच्छेद-36	नीति निदेशक तत्वों के संदर्भ में राज्य (State) की परिभाषा।
अनुच्छेद-37	इस भाग में दिए गए तत्वों का न्यायालय द्वारा प्रर्वतनीय (Justicible) न होते हुए भी देश के शासन में मूलभूत होना।
अनुच्छेद-38(1)	राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा ताकि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय हो सके।
अनुच्छेद-38(2)	आय, सुविधाओं तथा अवसरों की असमानताओं को समाप्त करने का प्रयास करना।
अनुच्छेद-39	राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीतियां (विशेषत: सामाजिक-आर्थिक न्याय से संबंधित नीतियां, जैसे - (क) पुरुषों व स्त्रियों को आजीविका के पर्याप्त साधनों के अधिकार, (ख) समाज के भौतिक संसाधनों का उचित स्वामित्व व वितरण, (ग) अर्थव्यवस्था में धन तथा उत्पादन के साधनों के अहितकारी केंद्रीकरण का निषेध, (घ) पुरुषों व स्त्रियों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन, (ड) पुरुष व स्त्री श्रमिकों तथा बच्चों को मजबूरी में आयु या शक्ति की दृष्टि से प्रतिकूल रोजगार में जाने से बचाना, (च) बच्चों को गरिमा के साथ विकास का अवसर देना और शोषण से बचाना।
अनुच्छेद-39(क)	समान अवसर के आधार पर न्याय देने व नि:शुल्क विधिक सहायता (Free legal aid) उपलब्ध कराना, ताकि गरीबों को अन्याय का शिकार न होना पड़े।
अनुच्छेद-40	ग्राम पंचायतों का संगठन करना तथा उन्हें शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने के लिए शक्तियां व प्राधिकार देना।
अनुच्छेद-41	कुछ दशाओं में, विशेषत: बुढ़ापे, बेरोजगारी, बीमारी या आवश्यकता की दशा में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार।
अनुच्छेद-42	काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति (Maternity) सहायता का उपबंध करना।
अनुच्छेद-43	कर्मकारों के लिए निर्वाह मजदूरी, शिष्ट जीवन स्तर व अवकाश की व्यवस्था करना और कुटीर उद्योगों (Cottage Industries) को प्रोत्साहित करना।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

अनुच्छेद-43(क) उद्योगों के प्रबंध में कर्मकारों (Workers) के भाग लेने के लिए उपयुक्त विधान बनाना।

अनुच्छेद-43(ख) सहकारी समितियों के स्वैच्छिक गठन (Voluntary Formation), स्वायत्त प्रचालन (Autonomous Functioning), लोकतांत्रिक नियंत्रण (Democratic Control) तथा पेशेवर प्रबंध (Professional Management) को प्रोत्साहित करना।

अनुच्छेद-44 नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता (Uniform Civil Code) लागू करने का प्रयास करना।

अनुच्छेद-45 शिशुओं की देखभाल तथा 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों को शिक्षा देने का प्रयास करना।

अनुच्छेद-46 अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि करना और हर तरह के शोषण व सामाजिक अन्याय से उनकी रक्षा करना।

अनुच्छेद-47 लोगों के पोषाहार स्तर (Nutrition Level) और जीवन स्तर को ऊँचा करने तथा लोक स्वास्थ्य का सुधार करने को प्राथमिक कर्तव्य मानना तथा मादक पेयों (Intoxicating Drinks) व हानिकर नशीले पदार्थों (Injurios Drugs) के सेवन का प्रतिषेध करने का प्रयास करना।

अनुच्छेद-48 कृषि तथा पशुपालन का संगठन आधुनिक-वैज्ञानिक प्रणालियों के अनुसार करना तथा गायों-बछड़ों व अन्य दुधारू या वाहक पशुओं की नस्लों का सुधार करना व उनके वध का प्रतिषेध करने के लिए कदम उठाना।

अनुच्छेद-48(क) पर्यावरण के संरक्षण व संवर्धन तथा वन व वन्य जीवों की रक्षा का प्रयास करना।

अनुच्छेद - 49 राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण करना।

अनुच्छेद - 50 राज्य की लोक-सेवाओं में कार्यपालिका से न्यायपालिका के पृथक्करण के लिए कदम उठाना।

अनुच्छेद - 51 अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा की अभिवृद्धि, राष्ट्रों के बीच न्यायसंगत व सम्मानपूर्ण संबंधों तथा अंतर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्था से निपटाने के लिए प्रोत्साहन देने का प्रयास करना।

नीति निदेशक सिद्धान्तों में अब तक 3 बार संशोधन हुए हैं, जो निम्नलिखित हैं -

1) 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 के द्वारा अनुच्छेद 39(क), 43(क) तथा 48(क) को जोड़ा गया।

2) 86वां संशोधन अधिनियम, 2002 के द्वारा अनुच्छेद 45 में आयु वर्ग में बदलाव किया गया। 6 से 14 वर्ष के स्थान पर 0 से 6 वर्ष के बच्चों की देखभाल और शिक्षा का कर्तव्य राज्य पर डाला गया।

3) 97वां संशोधन अधिनियम, 2011 के द्वारा अनुच्छेद 43(ब) जोड़ा गया, जो सहकारी समितियों से संबंधित है।

- **संविधान के अन्य भागों में दिए गए नीति निदेशक तत्व**

भाग 4 में उल्लेखित इन अनुच्छेदों के अलावा संविधान के अन्य भागों में भी कई निदेशक तत्व दिए गए हैं, जो निम्नलिखित हैं

1) **अनुच्छेद 335** के अनुसार संघ या राज्य के कार्य कलाप से संबंधित सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तियां करने में अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के दावों का, प्रशासन की दक्षता बनाए रखने की संगति के अनुसार, ध्यान रखा जाएगा।

2) **अनुच्छेद 350(क)** के अनुसार प्रत्येक राज्य एवं राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह भाषायी अल्पसंख्यक वर्ग के बच्चों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करें।

3) **अनुच्छेद 351** के अनुसार संघ का यह कर्तव्य है कि वह हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार बढ़ाए और उसका विकास करें, ताकि वह भारत को सामसिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का मार्ग बन सके।

- **नीति निदेशक तत्वों का वर्गीकरण**

संविधान में उल्लेखित अनुच्छेद 36 से लेकर 51 में वर्णित नीति निदेशक तत्वों का वर्गीकरण निम्नलिखित आधार पर किया जा सकता है -

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

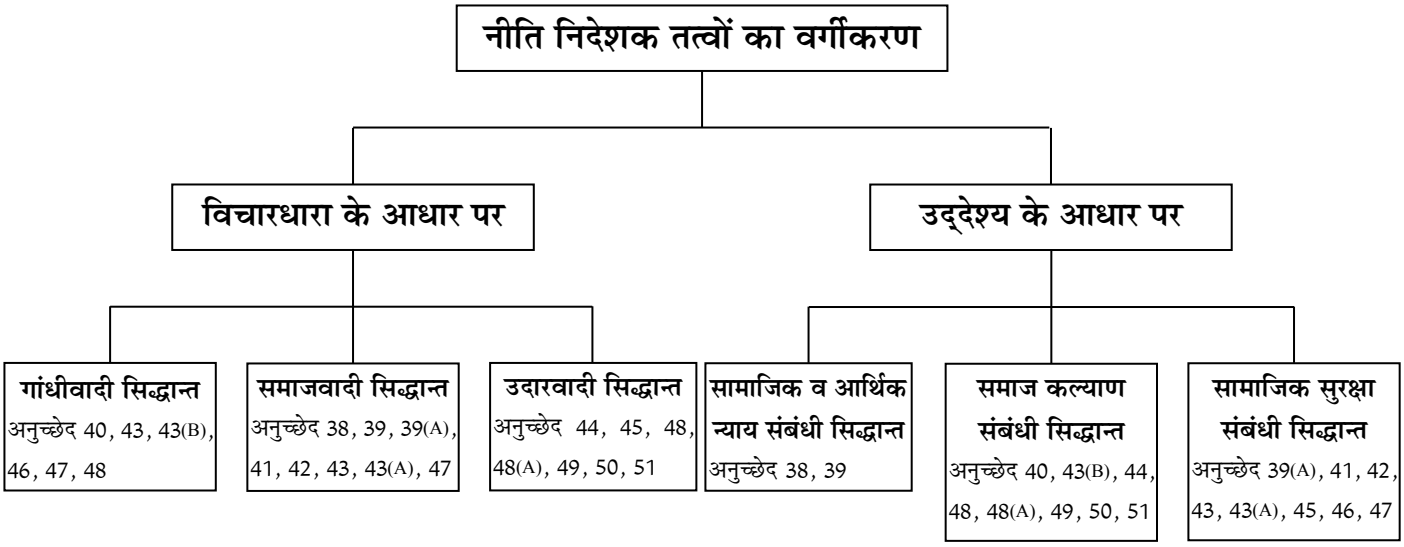

- **नीति निदेशक तत्व तथा मूल अधिकार में अन्तर**

नीति निदेशक तत्व तथा मूल अधिकार एक-दूसरे के पूरक हैं तथा इनके मध्य पारस्परिक सम्बन्ध है, फिर भी इन दोनों के बीच निम्नलिखित अन्तर हैं -

1) मूल अधिकार न्यायालय में प्रवर्तनीय हैं, अर्थात् - जब मूल अधिकार का उल्लंघन किया जाता है, तब उल्लंघन करने वाले के विरूद्ध न्यायालय में रिट याचिका दाखिल की जा सकती है। इसके विपरीत नीति निदेशक तत्व न्यायालय में प्रवर्तनीय नहीं है तथा इनका उल्लंघन किए जाने पर न्यायालय में रिट याचिका दाखिल नहीं की जा सकती तथा न तो इनके उल्लंघन के विरूद्ध कोई वाद ही दाखिल किया जा सकता है।

2) मूल अधिकारों का मुख्य उद्देश्य समता, स्वतंत्रता तथा मानव के लिए आवश्यक अन्य अधिकारों को प्रदान करके राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना करना है, जबकि नीति निदेशक तत्वों का मुख्य उद्देश्य सामाजिक तथा आर्थिक न्याय के आधार पर सामाजिक व आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना करना है।

3) मूल अधिकार नकारात्मक है, क्योंकि ये राज्यों के कुछ कार्यों को प्रतिबन्धित करते हैं, अर्थात् मूल अधिकार राज्य पर विभेद को रोकने, स्वतंत्रता, समानता तथा सांस्कृतिक स्वतंत्रता को संरक्षित करने के लिए बन्धन लगाते हैं, जबकि नीति निदेशक तत्व सकारात्मक हैं, क्योंकि ये राज्य को निश्चित कार्यों को करने का निर्देश देते हैं।

4) मूल अधिकारों का लागू होना व्यक्ति की सजगता व जागरूकता पर निर्भर है, जबकि नीति निदेशक सिद्धान्तों को राज्य द्वारा लागू किया जाता है।

5) अनुच्छेद 20 तथा 21 में प्रत्याभूत मूल अधिकारों के अतिरिक्त अन्य अधिकारों को आपातकाल के प्रवर्तन के दौरान निलम्बित किया जा सकता है, जबकि नीति निदेशक तत्वों को किसी भी स्थिति में निलम्बित नहीं किया जा सकता।

6) मूल अधिकार असीमित नहीं हैं, क्योंकि इन पर विशेष परिस्थिति में निर्बन्धन लगाए जा सकते हैं, जबकि नीति निदेशक तत्व असीमित हैं और इन पर किसी भी स्थिति में निर्बन्धन नहीं लगाया जा सकता है।

- **नीति निदेशक तत्व तथा मूल अधिकार में संबंध**

मूल अधिकार और नीति निदेशक तत्व के पारस्परिक संबंधों के विषय में न्यायपालिका तथा संसद का दृष्टिकोण परिवर्तित होता रहा है। सामाजिक व आर्थिक न्याय की स्थापना हेतु राज्य जब नीति निदेशक सिद्धान्तों का कार्यान्वयन करता है, तो कई बार मूल अधिकार बाधा उपस्थित करते हैं, क्योंकि वे न्यायालय में प्रवर्तनीय है। यह स्थिति संविधान के लागू होने के समय से ही है, जिसे निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है -

1) 1951 ई. के चम्पकम दोराईराजन मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने मूल अधिकारों को नीति निदेशक तत्वों पर वरीयता प्रदान की। न्यायालय ने अपना मत प्रकट करते हुए कहा कि मूल अधिकार न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय है, जबकि नीति निदेशक तत्व

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

अप्रवर्तनीय है। अत: नीति निदेशक सिद्धान्त मूल अधिकारों से ऊपर नहीं हो सकते हैं।

2) इस चुनौती से निपटने के लिए तथा सामाजिक व आर्थिक न्याय स्थापित करने के लिए सरकार ने प्रथम संविधान संशोधन किया। इस संशोधन के तहत् भूमि सुधार आदि लोककल्याणकारी विषयों को महत्व देने के लिए अनुच्छेद 31(क) तथा 31(ब) संविधान में जोड़े। स्पष्ट है कि सरकार ने इस संशोधन के माध्यम से नीति निदेशक तत्वों को मूल अधिकारों पर वरीयता देने का प्रयास किया।

3) आगे चलकर गोलकनाथ मामले में पुन: न्यायालय का दृष्टिकोण बदला। सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि संसद मूल अधिकारों में कोई संशोधन नहीं कर सकती है। दूसरे शब्दों में नीति निदेशक तत्वों को लागू करते समय संसद मूल अधिकारों में कोई संशोधन नहीं कर सकती है। स्पष्ट है कि मूल अधिकारों को पुन: नीति निदेशक तत्वों पर वरीयता प्राप्त हुई।

4) न्यायालय के इस मत से सरकार को सामाजिक व आर्थिक न्याय स्थापित करने में बाधा उत्पन्न होने लगी। अत: इंदिरा गांधी सरकार ने 25वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1971 पारित करके अनुच्छेद 31(ग) को जोड़ा। इसके अनुसार संसद द्वारा अनुच्छेद 39(ख) व 39(ग) में वर्णित सिद्धान्तों को लागू करने के लिए बनाई गई विधि को इस आधार पर अवैध या शून्य घोषित नहीं किया जाएगा कि वह अनुच्छेद 14, 19 या 31 का उल्लंघन करती है। साथ ही यह व्यवस्था भी की गई कि अनुच्छेद 39(ख) व 39(ग) के लिए बनाए गए कानून का न्यायिक पुनर्विलोकन नहीं हो सकता।

5) इसके पश्चात् केशवानन्द भारती वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने मूल ढांचे की अवधारणा का प्रतिपादन किया। जिसमें यह माना गया कि संसद संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है, किन्तु वह संविधान के मूल ढांचे के विरुद्ध नहीं होना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक पुनर्वलोकन को संविधान का मूल ढांचा बताया तथा इस आधार पर वह किसी भी कानून की समीक्षा कर सकता है। अत: उपरोक्त संशोधन की अनुच्छेद 39(ख) व 39(ग) के लिए बनाए गए कानून का न्यायिक पुनर्विलोकन नहीं हो सकता है, यह उपबंध असंवैधानिक है।

6) केशवानन्द भारती वाद के इस निर्णय को महत्व न देते हुए इंदिरा गांधी सरकार ने 42वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 के माध्यम से अनुच्छेद 31(ग) को और अधिक विस्तृत बना दिया। इसके अनुसार अब सभी नीति निदेशक तत्व को मूल अधिकारों पर वरीयता प्रदान कर दी। नीति निदेशक सिद्धान्त को लागू करने संबंधी किसी भी विधि को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि वह अनुच्छेद 14, 19 व 31 का उल्लंघन करती है।

7) मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 42वें संविधान संशोधन को असंवैधानिक घोषित कर दिया, जिसमें नीति निदेशक सिद्धान्तों को मूल अधिकारों पर वरीयता प्रदान की थी। न्यायालय ने माना कि मूल अधिकारों व नीति निदेशक तत्वों के मध्य संतुलन संविधान के मूल ढांचे का हिस्सा है। इन दोनों में न तो कोई टकराहट है और न ही इन्हें एक-दूसरे पर वरीयता प्रदान की जा सकती है।

इस प्रकार मौलिक अधिकार और नीति निदेशक सिद्धान्तों में उपर्युक्त वर्णित संबंध से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, उनमें कोई संघर्ष नहीं है। इन दोनों का लक्ष्य एक ही है और वह है कि व्यक्तित्व का विकास तथा कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना। मूल अधिकार व्यक्ति को सबल बनाता है, तो नीति निदेशक तत्व समाज को मजबूत करने की प्रेरणा देता है। अत: दोनों में सामन्जस्य जरूरी है। किन्तु लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना हेतु राज्य कदम उठाता है, तो उससे कुछ मूल अधिकारों का हनन होता है। ऐसे अवसर पर दोनों विरोधी प्रतीत होते हैं, जबकि संविधान निर्माताओं ने इन्हें परस्पर पूरक स्वरूप में रखा है। अत: राज्य का यह दायित्व बनता है कि निदेशक तत्वों का अनुपालन इस रूप में किया जाए, जिससे मूल अधिकारों का उल्लंघन कम से कम हो।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

- **नीति निदेशक तत्वों का कार्यान्वयन**

सैद्धान्तिक रूप से यह कहा जा सकता है कि संविधान लागू होने के बाद से ही भारत सरकार व राज्य सरकार ने अपनी नीति निर्माण में नीति निदेशक सिद्धान्तों को यथार्थ रूप देने का प्रयास किया है। इन्हें लागू करने के लिए अनेक कार्यक्रम, योजनाएं एवं कानून बनाए गए, जो निम्नलिखित हैं –

1) अनुच्छेद 38 व 39 को लागू करने हेतु 1950 में योजना आयोग की स्थापना की गई। जमींदारी उन्मूलन, भूमि सुधार, कृषि सुधार संबंधी कार्यक्रम चलाए गए।
2) 39(ग)को लागू करने हेतु बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया।
3) 39(घ) समान कार्य के लिए समान वेतन को लागू करने के लिए समान पारिश्रमिक अधिनियम पारित किया गया।
4) अनुच्छेद 40 को लागू करने के लिए संसद ने 73वें व 74वें संविधान संशोधन अधिनियम पारित किए, जिसके माध्यम से पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ।
5) अनुच्छेद 41, 42, 43 व 43(क) को लागू करने के लिए संसद ने अनेक अधिनियम बनाए, जैसे – औद्योगिक विवाद अधिनियम, कारखाना अधिनियम, प्रसुति प्रसुविधा अधिनियम, कर्मकार प्रतिकर अधिनियम आदि।
6) अनुच्छेद 45 को लागू करने के लिए संसद ने 86वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 पारित करके 6 से 14 वर्ष के बच्चे को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार दिया।
7) अनुच्छेद 46 को सार्थक बनाने के लिए संसद ने दुर्बल वर्गों, अनुसूचित जाति व जनजातियों की उन्नति के लिए कई कानून व प्रावधान बनाए। उन्हें लोकसभा, विधानसभा, सरकारी नौकरियों, पंचायती व्यवस्था आदि में आरक्षण उपलब्ध कराया गया। शोषण से बचाने हेतु अनुसूचित जाति व जनजाति अधिनियम बनाया गया।
8) अनुच्छेद 47 में जनता का पोषाहार स्तर और लोकस्वास्थ्य का सुधार करने हेतु सरकार ने कई योजनाएं संचालित की हैं, जैसे – राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, पल्स पोलियो अभियान आदि।
9) अनुच्छेद 48 में कृषि और पशुपालन के विकास हेतु सरकार ने अनेक अनुसंधान केन्द्र स्थापित किए हैं, जैसे – भारतीय कृषि अनुसंधान केन्द्र (नई दिल्ली) चावल अनुसंधान केन्द्र (कटक), दलहन अनुसंधान केन्द्र (कानपुर) आदि।
10) अनुच्छेद 48(क) में पर्यावरण के संरक्षण, संवर्धन तथा वन्य जीवों की सुरक्षा हेतु सरकार अनेक योजनाएं चला रही है, जैसे – बाघ परियोजना, हाथी परियोजना, वन (संरक्षण) अधिनियम 1980, वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम 1972 आदि।
11) अनुच्छेद 49 के तहत् भारतीय पुरातत्व विभाग राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण करता है।
12) अनुच्छेद 51 को व्यवहार में लाने हेतु भारत सरकार ने गुटनिरपेक्षता की नीति तथा पंचशील सिद्धान्त को अपनाया।

- **आलोचनाएं**

1) नीति निदेशक सिद्धान्तों की आलोचना का मुख्य कारण है इसका वादयोग्य न होना या कानून की शक्ति प्राप्त न होना है, जिसके आधार पर आलोचकों ने इन सिद्धान्तों को शुभ इच्छाएं, नैतिक उपदेश माना है, जिनका कोई संवैधानिक महत्व नहीं है। प्रो. के. टी. शाह ने कहा कि यह एक ऐसा चेक है, जिसका भुगतान बैंक की इच्छा पर छोड़ दिया गया है।
2) प्रो. जेनिंग्सका कहना है कि नीति निदेशक तत्व किसी निश्चित तथा तर्कसंगत दर्शन पर आधारित नहीं है, वे अस्पष्ट है। उन्हें न तो उचित रूप से क्रमबद्ध किया गया है और न ही तार्किक ढंग से वर्गीकृत किया गया है। एक ही बात को बार-बार दोहराया गया है। स्मारकों के संरक्षण जैसी मामूली बात को अत्यधिक महत्वपूर्ण सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों से मिलाकर उलझाव पैदा कर दिया है।
3) कुछ आलोचकों का यह कहना है कि भविष्य के लिए किसी आर्थिक या सामाजिक ढांचे का निर्धारण करना इस कारण ज्यादा उपयोगी नहीं हो सकता है, इस वैज्ञानिक युग में सामाजिक परिवर्तनों की गति तथा दिशा को निश्चित करना संभव नहीं है। यही कारण है कि संविधान निर्माताओं ने इन सिद्धान्तों को न्याययोग्य नहीं बनाया तथा समय व परिस्थिति के अनुरूप इन्हें

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

सरकारों पर छोड़ दिया।

4) कुछ आलोचकों का यह मानना है कि संविधान में उल्लेखित नीति निदेशक तत्व 19वीं सदी के राजनीतिक दर्शन पर आधारित हैं, जो अब रूढ़ीवादी हो चुके हैं।

- **नीति निदेशक तत्वों की उपयोगिता/महत्व/औचित्य**

अनुच्छेद 37 स्पष्टत: उल्लेखित करता है कि नीति निदेशक सिद्धान्त न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है, इसीलिए लोगों ने यह आलोचना की है कि यह केवल पवित्र घोषणाएं है और इनमें कोई कानूनी बल नहीं है। किन्तु यह आलोचना बिल्कुल निराधार है, क्योंकि अनुच्छेद 37 का दूसरा भाग यह भी स्पष्ट कर देता है कि इनमें निहित तत्व देश के प्रशासन में मूलभूत है और विधि बनाने में इन तत्वों का प्रयोग राज्य का कर्तव्य होगा।

हम जानते हैं कि इंग्लैण्ड के संविधान का एक बड़ा भाग प्रथाओं एवं परम्पराओं पर आधारित है। इन प्रथाओं के पीछे न्यायिक शक्ति नहीं होती हैं, किन्तु उनका पालन कानून के समान रूप से किया जाता है। इसी प्रकार नीति निदेशक सिद्धान्तों के पीछे कोई वैधानिक बल नहीं है, किन्तु उनके पीछे जनमत की शक्ति होती है।

वास्तव में नीति निदेशक सिद्धान्त शासन की सफलता व असफलता का ऐसा मापदण्ड है, जो प्रत्यक्ष रूप से वैधानिक शक्ति प्राप्त किए हुए हैं। यदि कोई सरकार जानबूझकर इन सिद्धान्तों की उपेक्षा करेगी, तो उस सरकार को जनमत द्वारा अगले आम चुनाव में नकार दिया जाएगा, इसीलिए जनमत के भय के कारण प्रत्येक सरकार इन सिद्धान्तों के अनुसार अपनी नीतियों का निर्माण करने का यथासंभव प्रयास करेगी। यह आशा की जा सकती है कि जैसे-जैसे भारत के लोगों में राजनीतिक चेतना विकसित होती जाएगी, वैसे-वैसे नीति निदेशक सिद्धान्तों की प्रभावशीलता बढ़ती जाएगी।

इसके अलावा अनुच्छेद 19 के अधीन 'युक्तियुक्त निर्बंधन' क्या है, उसे निर्धारित करने में भी निदेशक तत्वों का महत्व है। साथ ही न्यायालय भी अपने न्याय-निर्णयन में भी नीति निदेशक तत्वों का सहारा लेती है।

मूल कर्तव्य : अनुच्छेद-51(क)
Fundamental Duties : Article -51(A)

आधुनिक युग मानव अधिकारों का युग है, जिसे वह राज्य से प्राप्त करता है। अधिकारों से ही कर्तव्य भी उत्पन्न होते हैं। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जो किसी एक व्यक्ति के लिए कर्तव्य है, वही दूसरे के लिए अधिकार है। यदि सभी व्यक्तियों को जीवन का अधिकार प्राप्त है, तो सभी व्यक्तियों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे मानव जीवन का आदर करें और किसी अन्य व्यक्ति को आहत न करें।

उल्लेखनीय है कि विश्व के लोकतांत्रिक संविधानों में मूल कर्तव्यों का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है। ब्रिटेन, कनाड़ा, ऑस्ट्रेलिया में नागरिकों के अधिकार व कर्तव्य सामान्य और न्यायिक निर्णयों द्वारा नियमित होते हैं। अमेरिका के संविधान में भी केवल मूल अधिकारों का ही उल्लेख है। इसके बावजूद उपर्युक्त देशों के नागरिक कर्तव्यपरायण हैं और समाज व देश के प्रति अपने उत्तरदायित्व का पूर्णरूपेण निर्वाह करते हैं। इसके विपरीत साम्यवादी देशों के संविधानों में अधिकारों की अपेक्षा नागरिकों के मूल कर्तव्यों पर विशेष बल दिया गया है।

मूल भारतीय संविधान में मूल कर्तव्यों का समावेश नहीं किया गया था। 42वें संविधान संशोधन, 1976 द्वारा संविधान के भाग 4(क) के अनुच्छेद 51(क) में 10 मौलिक कर्तव्यों का समावेश किया गया। कालान्तर में 86वें संविधान संशोधन द्वारा 11वां मौलिक कर्तव्य जोड़ा गया है। यद्यपि मौलिक कर्तव्य को लागू करवाने के लिए कोई भी उपबंध नहीं किया गया है।

❐ संविधान द्वारा प्रदत्त मूल कर्तव्य

1) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे।

2) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

3) भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे।

4) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।

5) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है।

6) हमारी सामासिक (Composite) संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे।

7) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा सुधार की भावना का विकास करे।

8) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।

9) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे।

10) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले।

11) यदि माता-पिता या संरक्षक हैं, 6 से 14 वर्ष तक की आयु वाले, अपने यथास्थिति बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

❐ आलोचनाएं

1) संविधान में सम्मिलित किए गए मूल कर्तव्य एक साहित्यिक रचना प्रतीत होते हैं, जो काल्पनिक अधिक हैं तथा व्यवहारिक कम। ये कुछ ऐसे उपदेश हैं, जो नैतिकता पर आधारित है और जिन्हें विधिपूर्ण ढंग से कार्यान्वित किया जाना कठिन होगा। यदि इनका कार्यान्वयन संसद की इच्छा पर निर्भर करता है, तो संविधान में इनके उल्लेख किए जाने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी।

2) इस बात का निर्धारण कैसे किया जाएगा कि किसी नागरिक ने अपने मूल कर्तव्य का उल्लंघन किया है या नहीं। नागरिकों द्वारा मूल कर्तव्यों का सचमुच पालन किया जाए, इसके लिए यह आवश्यक होगा कि उन्हें इसके संबंध में पूर्ण जानकारी हो। किन्तु भारत की अधिकांश जनता निरक्षर है, जिन्हें संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों और कर्तव्यों का कोई ज्ञान नहीं है।

3) मूल कर्तव्य के संबंध में एक व्यवहारिक कठिनाई यह है कि यह कर्तव्य अत्यधिक अनिश्चित, अस्पष्ट और काल्पनिक से प्रतीत होते हैं। जैसे - राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्श क्या थे, इनका निश्चय कौन करेगा? क्योंकि इस संबंध में अलग-अलग विचारधाराएं हो सकती हैं।

4) इसी प्रकार वैज्ञानिक दृष्टिकोण मानववाद के क्या आवश्यक तत्व हैं और इसे विकसित करने के लिए हमें क्या करना होगा, इसका निश्चय कौन और कैसे करेगा? सामासिक संस्कृति की परिभाषा और उसके तत्व क्या हैं? जिनकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य बताया गया है।

5) कर्तव्यों की इन सूची में बहुत महत्वपूर्ण कर्तव्यों को शामिल नहीं किया, जैसे - कर अदायगी, मतदान, परिवार नियोजन आदि।

6) मूल कर्तव्य भी नीति निदेशक तत्वों के समान न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं।

कुल मिलाकर संविधान में मौलिक कर्तव्यों को जोड़े जाने का केवल मनोवैज्ञानिक महत्व ही बताया जा सकता है। संविधान में इन सिद्धान्तों के उल्लेख कर देने से उनकी पवित्रता और मौलिकता तो निस्संदेह ही बढ़ जाती है। चूंकि संविधान देश की मौलिक विधि होने के नाते अन्य विधियों से सर्वोच्च है। अत: उसमें वर्णित कर्तव्यों का मूल तथा महत्व साधारण विधियों की अपेक्षा स्वाभाविक रूप से ज्यादा समझा जाएगा। अगर प्रभावी रूप से मौलिक कर्तव्यों का पालन करवाना है, तो लोगों को नागरिकता के मूल्यों तथा कर्तव्यों के बारे में शिक्षित करना होगा और उनमें जागृति उत्पन्न करनी होगी। हमें एक ऐसे अनुकूल वातावरण का निर्माण करना होगा, जिसमें प्रत्येक नागरिक अपने संवैधानिक कर्तव्यों का पालन करने तथा समाज के प्रति अपना ऋण चुकाने में गर्व तथा बंधन का अनुभव करे।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

संघ की कार्यपालिका
The Union Executive

भारत का राष्ट्रपति
(President of India)

भारतीय संविधान पर ब्रिटेन संविधान का व्यापक प्रभाव है। ब्रिटेन के संविधान का अनुकरण करते हुए भारत में भी संविधान द्वारा संसदीय शासन की स्थापना की गई है, जो उत्तरदायी मंत्रिमण्डलीय शासन पद्धति पर आधारित है। जिस तरह ब्रिटेन में शासन का अध्यक्ष राजा होता है और समस्त शासन उसी के नाम से चलता है, उसी प्रकार भारत में राज्य का प्रमुख राष्ट्रपति होता है। ब्रिटेन के राजा की तरह भारत का राष्ट्रपति राज्य का औपचारिक प्रमुख होता है और संघ की वास्तविक शक्ति संघीय मंत्रिपरिषद् में निहित होती है। इन दोनों देशों के प्रमुखों में मूलभूत अन्तर यह है कि ब्रिटेन का राज्य प्रमुख वंशानुगत होता है, जबकि भारत का राष्ट्रपति एक निर्वाचक मण्डल द्वारा निर्वाचित किया जाता है। इसी अन्तर के कारण भारत को लोकतांत्रिक गणतंत्र कहा जाता है।

❒ राष्ट्रपति पद हेतु योग्यताएं (Qualifications for election as president)

संविधान के अनुच्छेद 58 के अनुसार कोई व्यक्ति राष्ट्रपति पद के लिए योग्य माना जाता है, जब वह –

1) भारत का नागरिक हो,
2) 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो,
3) लोकसभा का सदस्य निर्वाचित किए जाने योग्य हो, तथा
4) भारत सरकार के या किसी राज्य सरकार के अधीन अथवा इन दोनों सरकारों में से किसी के नियंत्रण में किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन '**लाभ का पद**' न धारण करता हो। यदि कोई व्यक्ति राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के पद पर या संघ अथवा किसी राज्य के मंत्रिपरिषद का सदस्य हो, तो यह नहीं माना जाएगा कि वह लाभ के पद पर है।

इसके अलावा राष्ट्रपति के चुनाव के नामांकन के लिए कम से कम 50 प्रस्तावक व 50 अनुमोदक होने चाहिए। प्रत्येक उम्मीदवार को भारतीय रिजर्व बैंक में 15,000 रुपए जमानत राशि के रूप में जमा करनी होगी। यदि उम्मीदवार कुल डाले गए मतों का 1/6 भाग प्राप्त करने में असमर्थ रहता है, तो यह राशि जब्त हो जाएगी।

❒ राष्ट्रपति का निर्वाचन (Election of The President)

संविधान के अनुच्छेद 54 व 55 में राष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित प्रावधान दिए गए हैं। अनुच्छेद 54 यह बताता है कि राष्ट्रपति के निर्वाचन में किसे मत देने का अधिकार है। दूसरे शब्दों में इसमें राष्ट्रपति के निर्वाचक मण्डल का उल्लेख किया गया है। जबकि अनुच्छेद 55 यह बताता है कि राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रक्रिया क्या होगी।

◆ राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए निर्वाचक मण्डल (Electoral college)

राष्ट्रपति का चुनाव '**अप्रत्यक्ष निर्वाचन**' द्वारा किया जाता है। अनुच्छेद 54 के अनुसार राष्ट्रपति के निर्वाचक मण्डल में –

1) संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य,
2) राज्य विधानसभा के निर्वाचित सदस्य,
3) संघ शासित प्रदेशों दिल्ली और पुडुचेरी विधानसभा के निर्वाचित सदस्य।

70वें संविधान संशोधन द्वारा दो संघ राज्य क्षेत्रों पुडुचेरी तथा दिल्ली की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचक मण्डल में शामिल किए गए हैं। उल्लेखनीय है कि केवल इन दोनों संघ राज्यक्षेत्रों में ही विधानसभा का गठन हुआ है। इस प्रकार दोनों सदनों के मनोनीत सदस्य, विधानसभा के मनोनीत सदस्य और राज्य विधानपरिषद् को राष्ट्रपति के निर्वाचक मण्डल में शामिल नहीं किया गया है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **निर्वाचन मण्डल में रिक्त स्थान का राष्ट्रपति के चुनाव पर प्रभाव**

संविधान सभा में राष्ट्रपति के निर्वाचन प्रक्रिया पर विचार करते समय यह ध्यान नहीं दिया गया था कि निर्वाचक मण्डल में से कोई स्थान रिक्त हो तो राष्ट्रपति का चुनाव कैसे होगा। 1957 में जब राष्ट्रपति का चुनाव किया गया, तब निर्वाचक मण्डल में कुछ स्थान खाली थे। इसलिए राष्ट्रपति के चुनाव को इस आधार पर चुनौती दी गई कि निर्वाचक मण्डल में स्थान रिक्त होने के कारण राष्ट्रपति का चुनाव अवैध है। बाद में 1961 में 11वां संविधान संशोधन के तहत यह व्यवस्था दी गई कि निर्वाचक मण्डल में स्थान रिक्त होते हुए भी राष्ट्रपति का चुनाव कराया जा सकता है।

- **राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रक्रिया (Election procedure)**

राष्ट्रपति के निर्वाचन प्रक्रिया के सम्बन्ध में संविधान के अनुच्छेद 55 में प्रावधान किया गया है, जिसके अनुसार राष्ट्रपति के निर्वाचन में निम्नलिखित सिद्धान्तों को अपनाया जाता है –

1) **समरूपता का सिद्धान्त (Principle of uniformity)** – इस सिद्धान्त के अनुसार राज्यों के प्रतिनिधित्व के मापन में एकरूपता अपनाई जाएगी। अर्थात् सभी राज्यों की विधानसभाओं का प्रतिनिधित्व का मान निकालने के लिए एक ही प्रक्रिया अपनाई जाएगी। राज्यों की विधानसभाओं के सदस्यों के मतमूल्य निकालने के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाई जाएगी – **विधानसभा के सदस्य के मतमूल्य का निर्धारण** – प्रत्येक राज्य की विधानसभा के सदस्य के मतों की संख्या निकालने के लिए उस राज्य की कुल जनसंख्या (जो पिछले जनगणना के अनुसार निर्धारित है) को राज्य की विधानसभा की कुल निर्वाचित सदस्य संख्या से विभाजित करके भागफल को 1000 से विभाजित किया जाता है। इस प्रकार जो भागफल आता है, उसे एक सदस्य का मतमूल्य मान लेते हैं। यदि उक्त विभाजन के परिणामस्वरूप शेष संख्या 500 से अधिक आए, तो प्रत्येक सदस्य के मतों की संख्या में एक और जोड़ दिया जाता है। राज्य विधानसभा के एक सदस्य का मतमूल्य निकालने के लिए ऊपर जो विधि बताई गई है, उसे निम्नलिखित रूप में सूत्रबद्ध किया जा सकता है –

$$\text{राज्य की विधानसभा के एक सदस्य का मतमूल्य} = \frac{\text{राज्य की कुल जनसंख्या}}{\text{राज्य विधानसभा के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या}} \times \frac{1}{1000}$$

2) **समतुल्यता का सिद्धान्त (Principle of parity)** – इस सिद्धान्त के अनुसार राज्यों एवं संघ के मापन में समतुल्यता होगी। अर्थात् सभी राज्यों की विधानसभाओं के सभी विधायकों के मतों का कुल योग तथा संसद के दोनों सदनों से निर्वाचित सदस्यों के मतों के कुल योग में समतुल्यता होनी चाहिए। वस्तुत: भारतीय संविधान में संघात्मक ढांचे को अपनाया है। अत: राष्ट्रपति के चुनाव में संघ एवं राज्यों को समान भागीदारी प्रदान की गई है। एक सांसद सदस्य का मतमूल्य निकालने के लिए निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जाता है –

$$\text{एक सांसद सदस्य का मतमूल्य} = \frac{\text{कुल राज्य विधानसभा के निर्वाचित सदस्यों के मतमूल्यों का योग}}{\text{संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों का योग}}$$

3) **आनुपातिक प्रतिनिधित्व द्वारा एकल संक्रमणीय सिद्धान्त (Proportional representation by means of the single transferable vote)** – राष्ट्रपति के चुनाव में एकल संक्रमणीय मत द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति लागू की गई है। आनुपातिक प्रतिनिधित्व से तात्पर्य है कि निर्वाचित उम्मीदवार आनुपातिक दृष्टि से सर्वाधिक लोगों की पसंद हो। इसे तय करने के लिए एक कोटा तय कर लिया जाता है, जो इस प्रकार है –

$$\text{कोटा} = \frac{\text{कुल डाले गए वैध मत}}{2} + 1$$

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

दूसरा, इसमें एकल संक्रमणीय सिद्धान्त अपनाया जाता है, जिसके अनुसार यदि निर्वाचन में एक से अधिक उम्मीदवार हो, तो मतदाताओं द्वारा मतदान वरीयता क्रम से दिया जाता है। सरल शब्दों में, चुनाव मत पत्र पर एक ओर उम्मीदवारों के नाम अंकित होते हैं। मतदाताओं को अपनी प्राथमिकताएं उन नामों के आगे 1, 2, 3, 4 अंकित करनी होती है।

- **मतगणना**

राष्ट्रपति चुनाव की मतगणना में उसी उम्मीदवार को विजयी घोषित किया जाएगा, जो निर्धारित कोटा प्राप्त कर लेगा। यदि मतगणना के प्रथम दौर में किसी उम्मीदवार को नियत किए गए कोटा के बराबर मतमूल्य प्राप्त हो जाता है, तो उसे निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। यदि किसी उम्मीदवार को नियत कोटा के बराबर मत मूल्य नहीं प्राप्त होता है, तो मतगणना का दूसरा दौर प्रारम्भ होता है। दूसरे दौर के मतगणना में जिस उम्मीदवार को प्रथम वरीयता का सबसे कम मत मिला होता है, उसको गणना से बाहर करके उसके द्वितीय वरीयता के मत मूल्य को अन्य उम्मीदवारों को स्थानान्तरित कर दिया जाता है। यदि द्वितीय दौर की गणना में भी किसी उम्मीदवार को नियत किए गए कोटा के बराबर मतमूल्य नहीं प्राप्त होता, तो तीसरे दौर की गणना होती है। तीसरे दौर की गणना में उस उम्मीदवार को गणना से बाहर कर दिया जाता है, जो दूसरे दौर की गणना में सबसे कम मतमूल्य पाता है और इस उम्मीदावर के तृतीय वरीयता मतमूल्य को शेष उम्मीदवारों के पक्ष में हस्तान्तरित कर दिया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक अपनाई जाती है, जब तक किसी उम्मीदवार को नियत किए गए कोटा के मतमूल्य के बराबर मतमूल्य प्राप्त नहीं हो जाता।

- **मतदान स्थल**

राष्ट्रपति के चुनाव में राज्य विधानसभाओं के सदस्य अपने-अपने राज्यों की राजधानियों में मतदान करते हैं और संसद सदस्य दिल्ली में या अपने राज्य की राजधानी में मतदान कर सकते हैं। यदि कोई संसद सदस्य अपने राज्य की राजधानी में मतदान करना चाहता है, तो उसे इसकी सूचना 10 दिन पूर्व चुनाव आयोग को देनी होती है।

- **राष्ट्रपति के चुनाव से सम्बन्धित विवाद का विनिश्चय**

राष्ट्रपति के चुनाव से सम्बन्धित विवाद का विनिश्चय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाएगा। यदि कोई राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचित होकर पद ग्रहण कर लेता है और बाद में उसका चुनाव उच्चतम न्यायालय द्वारा अवैध घोषित किया जाता है, तो राष्ट्रपति के पद पर रहते हुए उसके द्वारा किया गया कार्य या की गई घोषणा अवैध नहीं होगी।

- **पुनर्निवाचन के लिए योग्यता**

अनुच्छेद 57 के अनुसार भारत के राष्ट्रपति पद पर पदस्थ व्यक्ति दूसरे कार्यकाल के लिए भी चुनाव में उम्मीदवार बन सकता है। वैसे संविधान में यह व्यवस्था नहीं की गई है कि राष्ट्रपति पद पर पदस्थ व्यक्ति दूसरे कार्यकाल के लिए निर्वाचन में भाग ले सकता है या नहीं, लेकिन सामान्यत: यह परम्परा बन गई है कि राष्ट्रपति पद के लिए कोई व्यक्ति एक ही बार निर्वाचित किया जाता है। इसका अपवाद डॉ. राजेन्द्र प्रसाद रहे हैं, जो दो बार राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार थे।

❐ राष्ट्रपति द्वारा शपथ (Affirmation by the President)

राष्ट्रपति या कोई व्यक्ति, जो किसी कारण से राष्ट्रपति के कृत्यों के निर्वहन के लिए नियुक्त होता है, अपना पद ग्रहण करने में उच्चतम न्यायालय में उपलब्ध वरिष्ठतम न्यायाधीश के समक्ष अपने पद के कार्यपालन की शपथ लेता है। इसका प्रारूप निम्नलिखित है – "मैं अमुक ईश्वर की शपथ लेता हूं सत्य, निष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं कि मैं श्रद्धापूर्वक भारत के राष्ट्रपति के पद का कार्यपालन (अथवा राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन) करूंगा तथा अपनी पूरी योग्यता से संविधान और विधि का परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण करूंगा और मैं भारत की जनता की सेवा और कल्याण में निरत रहूंगा।"

राष्ट्रपति द्वारा लिया जाने वाला शपथ या प्रतिज्ञण उपराष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री के शपथ से इस मामले में भिन्न है कि राष्ट्रपति संविधान और विधि के परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण का शपथ लेता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❐ राष्ट्रपति का कार्यकाल व पदरिक्तता (Term & Vacancy of the Persident's office)

अनुच्छेद 56 के अनुसार राष्ट्रपति अपने पदग्रहण की तिथि से 5 वर्ष की अवधि तक अपने पद पर बना रहता है। कार्यकाल समाप्ति के पश्चात् भी वह अपने पद पर तब तक बना रहता है, जब तक कि उसका उत्तराधिकारी पद ग्रहण न कर ले। इसके अलावा 5 वर्ष के अन्दर राष्ट्रपति का पद निम्नलिखित प्रकार से रिक्त हो सकता है –

1) राष्ट्रपति की आकस्मिक मृत्यु द्वारा,
2) उपराष्ट्रपति को संबोधित त्यागपत्र के माध्यम से,
3) महाभियोग प्रक्रिया द्वारा उसे पद से हटाने पर।

भारतीय संविधान में प्रावधान किया गया है राष्ट्रपति के पद में आकस्मिक रिक्ति के दौरान या उसकी अनुपस्थिति में उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति के पद के कार्यों का निर्वहन करेगा और राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति दोनों के पद में आकस्मिक रिक्ति के दौरान या दोनों की अनुपस्थिति में भारत का मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रपति के पद के कृत्यों का निर्वहन करेगा।

◆ महाभियोग की प्रक्रिया (Procedure of Impeachment)

राष्ट्रपति को उसके पद से अनुच्छेद 61 में दी गई प्रक्रिया के द्वारा हटाया जा सकता है –

1) राष्ट्रपति के विरूद्ध महाभियोग की प्रक्रिया केवल संविधान के अतिक्रमण के आधार पर लगाया जा सकता है।
2) राष्ट्रपति के विरूद्ध महाभियोग लगाने का संकल्प संसद के किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है।
3) जिस सदन में महाभियोग का संकल्प पेश किया जाना हो, उसके एक चौथाई (1/4) सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित आरोप पत्र राष्ट्रपति को 14 दिन पूर्व दिया जाना आवश्यक है। राष्ट्रपति को आरोप पत्र दिए जाने के 14 दिन बाद ही सदन में महाभियोग का संकल्प पेश किया जा सकता है।
4) जिस सदन में संकल्प पेश किया जाए, उस सदन के कुल संख्या के कम से कम दो तिहाई (2/3) बहुमत द्वारा संकल्प पारित किया जाना चाहिए।
5) जिस सदन में संकल्प पेश किया गया है, उसके द्वारा पारित किए जाने के बाद संकल्प दूसरे सदन में भेजा जाएगा और दूसरा सदन राष्ट्रपति पर लगाए गए आरोपों की जांच करेगा। जब दूसरा सदन राष्ट्रपति पर लगाए गए आरोपों की जांच कर रहा हो, तब राष्ट्रपति या तो स्वयं या अपने प्रतिनिधि के माध्यम से लगाए गए आरोपों के सम्बन्ध में अपना पक्ष प्रस्तुत करेगा और स्पष्टीकरण देगा।
6) यदि दूसरा सदन राष्ट्रपति पर लगाए गए आरोपों को सही पाता है तथा सदन के कुल संख्या के कम से कम दो तिहाई (2/3) बहुमत से संकल्प पारित कर देता है, तो महाभियोग की कार्यवाही पूर्ण हो जाती है। इस प्रकार राष्ट्रपति अपना पद त्याग करने के लिए बाध्य हो जाता है।

❐ राष्ट्रपति की शक्तियां तथा अधिकार (Powers & Functions of the Persident)

भारतीय संविधान द्वारा राष्ट्रपति को निम्नलिखित शक्तियां तथा अधिकार प्रदान किए गए हैं –

◆ कार्यपालिका शक्तियां (Executive Powers)

संविधान के अनुच्छेद 53 अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है और वह अपनी इस शक्ति का प्रयोग अपने अधीनस्थ प्राधिकारियों के माध्यम से करता है। यहां अधीनस्थ प्राधिकारी का तात्पर्य केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् से है। राष्ट्रपति की कार्यपालिका शक्तियां निम्नलिखित हैं –

1) **प्रधानमंत्री की नियुक्ति व मंत्रिपरिषद् का गठन** – अनुच्छेद 74 के अनुसार राष्ट्रपति संघ की कार्यपालिका शक्ति के संचालन में सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद् का गठन करता है, जिसका अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है। सामान्यत: राष्ट्रपति ऐसे व्यक्ति को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करता है, जो लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता हो। इस प्रकार नियुक्त किए गए प्रधानमंत्री की सलाह पर वह मंत्रिपरिषद के अन्य सदस्यों की नियुक्ति करता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

2) **नियुक्ति सम्बन्धी शक्ति** - संविधान द्वारा राष्ट्रपति को यह शक्ति दी गई है कि वह संघ एवं राज्यों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण संवैधानिक पदों पर नियुक्तियां करें। जैसे -

महान्यायवादी, नियंत्रक-महालेखा परीक्षक।
संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा अन्य सदस्यों।
उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों।
वित्त आयोग के सदस्यों।
मुख्य निर्वान आयुक्त, अन्य निर्वाचन आयुक्तों।
राज्यों के राज्यपालों।

राष्ट्रपति ये नियुक्तियां मंत्रिपरिषद् की सलाह से करता है। वह अपने द्वारा नियुक्त प्राधिकारियों तथा अधिकारियों को पदमुक्त कर सकता है।

3) **आयोग का गठन** - राष्ट्रपति को आयोगों को गठित करने की शक्ति भी प्रदान की गई है। यह भारत के राज्य क्षेत्र में सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग की दशाओं का अन्वेषण करने के लिए आयोग, राज्य भाषा पर प्रतिवेदन देने के लिए आयोग, अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन पर रिपोर्ट देने के लिए तथा राज्यों में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण सम्बन्धी क्रियाकलापों पर रिपोर्ट देने के लिए आयोग का गठन कर सकता है।

4) **अनुसूचित क्षेत्र घोषित करना** - राष्ट्रपति किसी भी क्षेत्र को अनुसूचित घोषित कर सकता है। उसे अनुसूचित क्षेत्रों तथा जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन की शक्तियां प्राप्त हैं।

- **सैन्य शक्तियां (Military Powers)**

संघ के रक्षा बलों का समादेश राष्ट्रपति में निहित होता है। वह भारत के सैन्य बलों का सर्वोच्च सेनापति होता है। वह युद्ध एवं उसकी समाप्ति की घोषणा करता है। राष्ट्रपति अपने में निहित रक्षा बलों का समादेश उस विधि के अनुसार प्रयुक्त करता है, जिसे संसद बनाए। वह रक्षा बलों के प्रमुख को भी नियुक्त करता है।

- **राजनयिक शक्तियां (Diplomatic Powers)**

अन्य देशों के साथ भारत का संव्यवहार राष्ट्रपति के नाम से किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में राष्ट्रपति भारत का प्रतिनिधित्व करता है। अन्य देशों में भेजे जाने वाले राजदूत तथा उच्चायुक्त राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। साथ ही अन्य देशों से भारत में नियुक्ति पर आने वाले राजदूतों व उच्चायुक्तों का स्वागत भी राष्ट्रपति द्वारा ही किया जाता है। जब अन्य देश के राजदूत या उच्चायुक्त भारत में नियुक्त होकर आते हैं, तो व अपना '**प्रत्यय पत्र**' (Credential Letter) राष्ट्रपति के समक्ष पेश करते हैं। समस्त अन्तर्राष्ट्रीय करार और संधियां राष्ट्रपति के नाम से की जाती है।

- **विधायी शक्तियां एवं कार्य (Legislative Powers)**

संविधान द्वारा राष्ट्रपति को व्यापक विधायी शक्तियां प्रदान की गई हैं, जिन्हें निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है

1) **संसद से सम्बन्धित शक्तियां** - राष्ट्रपति संसद का अभिन्न अंग है, क्योंकि संसद का गठन राष्ट्रपति और लोकसभा तथा राज्यसभा से मिलकर होता है। संसद से सम्बन्धित राष्ट्रपति की शक्तियां निम्नलिखित हैं -

a) अनुच्छेद 331 के तहत वह लोकसभा में आंग्ल भारतीय समुदाय के दो सदस्यों को मनोनीत कर सकता है, यदि उसके विचार में लोकसभा में उस समुदाय को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिला है।

b) अनुच्छेद 80 के अनुसार वह राज्यसभा में साहित्य, कला, विज्ञान, समाजसेवा आदि क्षेत्रों से 12 सदस्यों को मनोनीत कर सकता है।

c) यदि संसद के किसी सदस्य की अयोग्यता के सम्बन्ध में (दल-बदल को छोड़कर), प्रश्न उत्पन्न होता है, तो उसका निर्णय राष्ट्रपति करेगा, लेकिन राष्ट्रपति ऐसा निर्णय करने के पहले निर्वाचन आयोग की राय लेगा।

d) राष्ट्रपति संसद के सत्र को आहूत करता है, लेकिन संसद के एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के मध्य 6 माह का अन्तर नहीं होना चाहिए।

e) वह सदनों या किसी सदन का सत्रावसान कर सकता है तथा लोकसभा का विघटन कर सकता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

f) संसद में लम्बित किसी विधेयक के सम्बन्ध में संसद के दोनों सदनों या किसी सदन को संदेश भेज सकता है और उसके संदेश पर यथाशीघ्र विचारण किया जाता है।

g) वह लोकसभा के प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात् प्रथम सत्र के आरम्भ में और प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के आरम्भ में संसद के संयुक्त अधिवेशन में अभिभाषण कर सकता है।

h) यदि लोकसभा के अध्यक्ष व उपाध्यक्ष दोनों के पद रिक्त हो, तो वह लोकसभा के किसी भी सदस्य को सदन की अध्यक्षता सौंप सकता है। इसी प्रकार राज्यसभा के सभापति व उपसभापति दोनों का पद रिक्त हो, तो वह राज्यसभा के किसी भी सदस्य को सदन का सभापति बना सकता है।

i) यदि किसी विधेयक को लेकर दोनों सदनों में गतिरोध उत्पन्न हो जाए, तो वह गतिरोध दूर करने के लिए संयुक्त बैठक बुला सकता है।

2) विधेयक को पेश करने की सिफारिश करने की शक्ति - निम्नलिखित विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना संसद में नहीं पेश किए जा सकते -

a) धन विधेयक तथा वित्त विधेयक।

b) नए राज्य का निर्माण करने या विद्यमान राज्य के क्षेत्र, सीमा या नाम में परिवर्तन करने वाले विधेयक।

c) भूमि अधिग्रहण से संबंधित विधेयक।

d) व्यापार की स्वतंत्रता पर रोक लगाने वाले राज्य का कोई विधेयक।

3) राज्य विधानमण्डल द्वारा बनाई जाने वाली विधि के सम्बन्ध में राष्ट्रपति की शक्ति - राज्य विधानमण्डल द्वारा बनाई जाने वाली विधि के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को निम्नलिखित शक्तियां प्राप्त हैं -

a) यदि राज्य विधानमण्डल कोई ऐसा विधेयक पारित करता है, जिससे उच्च न्यायालय की अधिकारिता प्रभावित होती है, तो राज्यपाल उस विधेयक पर अनुमति नहीं देगा और उसे राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित कर देगा।

b) राज्य विधानमण्डल द्वारा सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए पारित विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित रखा जाएगा।

c) किसी राज्य के अन्दर या दूसरे राज्यों के साथ व्यापार आदि पर प्रतिबन्ध लगाने वाले विधेयकों को विधानसभा में पेश करने के पहले राष्ट्रपति की अनुमति लेनी होगी।

d) वित्तीय आपात स्थिति के प्रवर्तन की स्थिति में राष्ट्रपति निर्देश दे सकता है कि सभी धन विधेयकों को राज्य विधानसभा में पेश करने के पहले उस पर राष्ट्रपति की अनुमति ली जाए।

4) अध्यादेश जारी करने की शक्ति - संविधान के अनुच्छेद 123 के तहत् राष्ट्रपति को अध्यादेश जारी करने की शक्ति प्रदान की गई है। अध्यादेश से संबंधित तथ्यों को निम्नलिखित रूप से देख सकते हैं -

a) जब संसद के दोनों अथवा दोनों में से कोई भी एक सदन सत्र में न हो और राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है, जिसके अनुसार अविलम्ब कार्यवाही करना आवश्यक है, तो राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश जारी किया जा सकता है।

b) अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होता है, जो संसद द्वारा पारित अधिनियम का होता है।

c) अध्यादेश को संसद की पुन: बैठक होने पर 6 सप्ताह के अंदर अनुमोदन न किया गया, तो अध्यादेश समाप्त हो जाता है। यहां उल्लेखनीय है कि दो सत्रों के बीच अधिकतम 6 माह का अन्तर हो सकता है। अत: कोई अध्यादेश बिना संसद के अनुमोदन के 6 माह 6 सप्ताह तक जीवित रह सकता है।

d) राष्ट्रपति जब चाहे अध्यादेश को वापस ले सकता है।

e) अध्यादेश के द्वारा संविधान में कोई संशोधन नहीं किया जा सकता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

f) अध्यादेश केवल उन्हीं विषयों पर जारी किया जा सकता है, जिन पर संसद कानून बना सकती है।

g) अध्यादेश की भी वही संवैधानिक सीमाएं होती हैं, जो संसद द्वारा बनाए गए किसी कानून की होती हैं, जैसे - अध्यादेश किसी भी मौलिक अधिकार को छीन नहीं सकता है।

यहां उल्लेखनीय है कि अध्यादेश जारी करने की शक्ति भारत शासन अधिनियम, 1935 की देन है। ऐसी व्यापक शक्ति भारत के अलावा विश्व के किसी भी लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में कार्यपालिका को प्राप्त नहीं है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 123 के अन्तर्गत अभिव्यक्त रूप से राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश जारी करने के बारे में काफी वाद-विवाद हुआ था। यह कहा गया था कि कार्यपालिका को ऐसी शक्ति देना अलोकतांत्रिक है और वह इसका दुरुपयोग कर सकती है। किन्तु कार्यपालिका को इस शक्ति के दिए जाने को इस आधार पर न्यायोचित बतलाया गया कि गंभीर परिस्थितियों में अतिशीघ्र कार्यवाही करने के लिए राष्ट्रपति के पास ऐसी शक्तियों का होना आवश्यक है। यहां ध्यान देने योग्य बात है कि राष्ट्रपति अध्यादेश जारी करने की अपनी शक्ति का प्रयोग मंत्रिपरिषद् की सलाह पर करता है। राष्ट्रपति का व्यक्तिगत् समाधान मंत्रिपरिषद् का समाधान होता है। इसके बावजूद भी अध्यादेश जारी करने की शक्ति का दुरुपयोग किया जाना संभव है। इसे प्रबुद्ध जनमत द्वारा ही रोका जा सकता है।

5) नियम बनाने की शक्ति - राष्ट्रपति को निम्नलिखित के सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति है -

a) अंडमान-निकोबार द्वीप समूह, लक्षद्वीप, दादर एवं नागर हवेली एवं दमन एवं दीव में शांति, विकास व सुशासन के लिए नियम बना सकता है।

b) राज्यसभा के सभापति तथा लोकसभा के अध्यक्ष से परामर्श करके दोनों सदनों की संयुक्त बैठकों से सम्बन्धित और उनमें परस्पर संचार से सम्बन्धित प्रक्रिया के नियम।

c) संयुक्त लोक सेवा आयोग तथा संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों तथा कर्मचारियों की सेवा शर्तों को विनियमित करने वाले नियम।

6) राष्ट्रपति की वीटो शक्ति - प्राय: विश्व के सभी लोकतांत्रिक देशों में संसद द्वारा पारित कोई विधेयक तब अधिनियम बनता है, जब राष्ट्रपति/राष्ट्राध्यक्ष उसे अपनी सहमति दे दें। अत: संसद द्वारा पारित प्रत्येक विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए भेजा जाता है। स्पष्ट है कि राष्ट्रपति के पास यह शक्ति होती है कि वह विधायिका द्वारा पारित विधेयक को अधिनियम बनने से रोक सके। इसे ही राष्ट्रपति की वीटो शक्ति कहा जाता है। यह शक्ति का उद्देश्य है कि विधायिका बिना विचार-विमर्श के कोई विधेयक जल्दबाजी में पारित कर दिया हो, तो इसे सुधारा जा सके। इसके अलावा यदि विधायिका संविधान की मूल भावना के विपरीत या असंवैधानिक कानून बना रही हो, तो उसे रोका जा सके। विश्व में वर्तमान राज्यों के राष्ट्र प्रमुखों को 4 प्रकार की वीटो शक्ति प्राप्त है -

a) आत्यंतिक वीटो (Absolute Veto)।

b) निलम्बनकारी वीटो (Suspensive Veto)।

c) जेबीय वीटो (Pocket Veto)।

d) विशेषित वीटो (Qualified Veto)।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 111 के अनुसार जब कोई विधेयक राष्ट्रपति की सहमति के लिए प्रस्तुत किया जाता है, तो उसके पास 3 विकल्प होते हैं -

a) वह विधेयक पर अपनी स्वीकृति दे सकता है,

b) वह विधेयक पर अपनी स्वीकृति को सुरक्षित रख सकता है,

c) वह विधेयक को (धन विधेयक को छोड़कर) कुछ सुझावों के साथ पुनर्विचार हेतु संसद को लौटा सकता है। यदि संसद उसके द्वारा सुझाए गए संशोधनों के साथ या उन संशोधनों के बिना उस विधेयक को पुन:पारित कर देती है, तो उस पर राष्ट्रपति अनुमति देना के लिए बाध्य है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

इस प्रकार अनुच्छेद 111 से ही राष्ट्रपति को संसद द्वारा पारित विधेयकों के संबंध में वीटो शक्ति प्राप्त होती है। भारतीय राष्ट्रपति की पास 3 प्रकार की वीटो शक्तियां हैं, जो निम्नलिखित हैं –

a) आत्यंतिक/पूर्ण वीटो (Absolute Veto) – जब राष्ट्रपति किसी विधेयक को अनुमति नहीं देता, तो यह कहा जाता है कि राष्ट्रपति ने पूर्ण वीटो की शक्ति का प्रयोग किया है। राष्ट्रपति इस शक्ति का प्रयोग 3 तरह से कर सकता है –

i) गैर सरकारी विधेयक पर अनुमति न प्रदान करके,

ii) ऐसे विधेयक के संदर्भ में, जो ऐसी सरकार द्वारा पारित किया गया हो, जो विधेयक पर अनुमति देने के पूर्व ही त्यागपत्र दे दे और नई सरकार विधेयक पर अनुमति न देने की सिफारिश करे,

iii) जब किसी विधेयक को राज्यपाल ने राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखा हो, ऐसे विधेयक के संदर्भ में भी राष्ट्रपति पूर्ण वीटो शक्ति का प्रयोग कर सकता है।

b) निलम्बनकारी वीटो (Suspensive Veto) – जब राष्ट्रपति धन विधेयक को छोड़कर किसी विधेयक को सदन के पास पुनर्विचार के लिए भेजता है, तो यह कहा जाता है कि राष्ट्रपति ने निलम्बनकारी वीटो की शक्ति का प्रयोग किया है। यहां उल्लेखनीय है कि यदि संसद उस विधेयक को पुन: किसी संशोधन के बिना या संशोधन के साथ पारित कर राष्ट्रपति के पास भेजती है, तो उस पर राष्ट्रपति अपनी अनुमति देने के लिए बाध्य है। इस प्रकार इस वीटो का प्रयोग कर राष्ट्रपति कुछ समय के लिए विधेयक को अधिनियमित होने से निलम्बित कर सकता है।

c) जेबीय वीटो (Pocket Veto) – अनुच्छेद 111 के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा विधेयक पर अनुमति देने की समयसीमा का उल्लेख नहीं किया गया है। निश्चित समयसीमा के अभाव में जेबीय वीटो की शक्ति का प्रयोग कर सकता है। अर्थात् वह विधेयक पर न तो अपनी अनुमति देता है और न ही उसे पुनर्विचार के लिए वापस भेजता है। ऐसा वह तब करता है, जब उसे लगता है कि मंत्रिमण्डल का पतन शीघ्र हो सकता है। 1986 ई. में राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह द्वारा भारतीय डाक (संशोधन अधिनियम) के संदर्भ में इस वीटो का प्रयोग किया था। यहां उल्लेखनीय है कि अमेरिकी राष्ट्रपति को किसी विधेयक पर 10 दिन के अन्दर निर्णय करना होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारत के राष्ट्रपति की शक्ति इस संबंध में अमेरिका के राष्ट्रपति से अधिक है।

ध्यातव्य है कि संविधान संशोधन विधेयक पर राष्ट्रपति को कोई वीटो शक्ति प्राप्त नहीं है। 24वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1971 द्वारा संविधान संशोधन विधेयक पर राष्ट्रपति की अनुमति को बाध्यकारी बना दिया गया है। इसके अलावा भारतीय राष्ट्रपति के पास विशेषित वीटो शक्ति भी प्राप्त नहीं है, जो अमेरिकी राष्ट्रपति के पास है।

d) विशेषित वीटो (Qualified Veto) – जब राष्ट्रपति किसी विधेयक को संसद के पास पुनर्विचार के लिए वापस भेजता है, तो संसद के लिए यह अनिवार्य है कि वह विधेयक अब विशेष बहुमत से पारित किया जाना चाहिए। तभी राष्ट्रपति उस पर अपनी अनुमति देगा। दूसरे शब्दों में विशेष बहुमत से विधायिका राष्ट्रपति की इस शक्ति को खारीज कर सकती है। जबकि भारत में संसद द्वारा साधारण बहुमत से राष्ट्रपति की निलम्बनकारी वीटो को खारीज कर सकती है।

- **वित्तीय शक्तियां (Financial Powers)**

राष्ट्रपति को संविधान द्वारा निम्नलिखित वित्तीय शक्तियां प्रदान की गई हैं –

1) जिस विधेयक को प्रवर्तित किए जाने पर भारत की संचित निधि में व्यय करना पड़े, उसे विधेयक को राष्ट्रपति की सिफारिश से ही संसद में पेश किया जाता है।

2) धन विधेयक तथा वित्त विधेयक को राष्ट्रपति की सिफारिश से ही लोकसभा में पेश किया जाता है।

3) अनुदान की कोई भी मांग राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना नहीं की जा सकती है।

4) जिस कराधान में राज्य का हित सम्बद्ध है, उस कारधान से सम्बन्धित विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति से ही लोकसभा में पेश किया जा सकता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

5) प्रत्येक वर्ष वित्तमंत्री के माध्यम से वार्षिक वित्तीय विवरण (वर्ष का बजट) लोकसभा में पेश करवाता है।

6) केन्द्र व राज्य के मध्य राजस्व के बंटवारे हेतु प्रत्येक 5 वर्ष में वित्त आयोग का गठन करता है।

7) वित्त आयोग द्वारा की गई प्रत्येक सिफारिश को, उस पर किए गए स्पष्टीकरण ज्ञापन सहित संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाता है।

- **न्यायिक शक्तियां (Judicial Powers)**

संविधान द्वारा राष्ट्रपति को 3 प्रकार की न्यायिक शक्तियां प्रदान की गई हैं, जिनका विवरण निम्नलिखित प्रकार है –

1) **न्यायाधीशों को नियुक्त करने की शक्ति** – संविधान के अनुच्छेद 124 व 217 के अन्तर्गत राष्ट्रपति को सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्त करने की शक्ति प्राप्त है। इसके अलावा उसे उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का स्थानान्तरण की शक्ति भी प्राप्त है। ध्यातव्य है कि राष्ट्रपति इस शक्ति का प्रयोग राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग [अनुच्छेद 124(क)] की सलाह से करेगा।

2) **क्षमादान की शक्ति** – संविधान के अनुच्छेद 72 के तहत् राष्ट्रपति को किसी अपराध के लिए दोष सिद्ध ठहराए गए किसी व्यक्ति के दण्ड के संदर्भ में क्षमादान का अधिकार प्राप्त है। वे दण्ड को पूर्ण रूप से क्षमा कर सकते हैं, स्थगित कर सकते हैं, दण्ड में परिवर्तन कर सकते हैं। यह शक्ति निम्नलिखित मामलों में प्राप्त होगी –

a) सेना न्यायालयों द्वारा दिए गए दण्ड के मामले में,

b) मृत्यु दण्डादेश के सभी मामलों में,

c) उन सभी मामलों में, जिनमें केन्द्रीय विधियों के विरुद्ध अपराध के लिए सजा दी गई हो।

राष्ट्रपति की क्षमादान की शक्ति पर कई बार वाद-विवाद की स्थिति बनती है। लगभग सभी देशों के संविधान में कार्यपालिका के प्रधान को क्षमादान की शक्ति दी गई है। ऐसा इसलिए किया जाता है, ताकि न्यायपालिका से अज्ञानतावश या भूलवश या अन्य किसी कारण से तर्कसंगत निर्णय नहीं दिया गया है, तो उसे सुधारा जा सके। न्यायपालिका संविधान प्रदत्त कानून से बंधा होता है, वह गवाहों एवं अन्य साक्ष्यों के आधार पर निर्णय सुनाता है। कई बार साक्ष्य के अभाव में न्यायाधीश अपने विवेक सहारा भी लेता है। ऐसी स्थिति में मानवीय भूल की संभवाना से इन्कार नहीं किया जा सकता है।

कई परिस्थितियों में मानवीय आधार पर न्यायालय द्वारा सुनाए गए दण्डादेश को क्षमादान द्वारा कम या खत्म कर दिया जाता है। उदाहणार्थ – यदि कोई महिला गर्भवती है और न्यायालय ने उसे मृत्युदण्ड की सजा सुनाई हो, तो राष्ट्रपति इस आधार पर उसके दण्ड को कम कर सकता है कि मां की सजा का प्रभाव उसके बच्चे पर न पड़े।

3) **उच्चतम न्यायालय से परामर्श लेने का अधिकार** – अनुच्छेद 143 के अनुसार जब राष्ट्रपति को ऐसा प्रतीत हो कि विधि या तथ्य का कोई ऐसा प्रश्न उत्पन्न हुआ है, जो सार्वजनिक महत्व हो, तो उस प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय की राय मांग सकता है। यहां उल्लेखनीय है कि सर्वोच्च न्यायालय अपनी राय देने के लिए बाध्य नहीं है (संवैधानिक संधि, समझौता, प्रंसविदा आदि से संबंधित प्रश्नों को छोड़कर)। साथ ही राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय की राय मानने के लिए बाध्य नहीं है।

- **आपातकालीन शक्तियां (Emergency Powers)**

राष्ट्रपति को निम्नलिखित आपातकालीन शक्तियां प्रदान की गई हैं –

1) राष्ट्रीय आपातकाल घोषित करने की (अनुच्छेद 352)।

2) राज्यों में संवैधानिक तंत्र की विफलता पर वहां राष्ट्रपति शासन घोषित करने की (अनुच्छेद 356)।

3) वित्तीय आपातकाल घोषित करने की (अनुच्छेद 360)।

❐ राष्ट्रपति की उन्मुक्तियां अथवा विशेषाधिकार (Immunities or Privileges of The President)

संविधान के अनुच्छेद 361 में राष्ट्रपति को कुछ उन्मुक्तियां दी गई हैं, ताकि वह अपने कर्तव्यों का पालन ठीक ढंग से कर सके। साथ ही उसकी गरिमा व मर्यादा बनी रहे। ये उन्मुक्तियां निम्नलिखित हैं –

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

1) राष्ट्रपति अपने पद के किसी कर्तव्य तथा अधिकारों का प्रयोग करते हुए जो भी कार्य करेगा, उसके लिए वह किसी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं होगा।

2) राष्ट्रपति अपने पद पर बने रहने के दौरान किसी भी न्यायालय में उसके विरुद्ध कोई भी दाण्डिक या आपराधिक कार्यवाही नहीं चलाई जा सकती है।

3) राष्ट्रपति अपने पद पर बने रहने के दौरान कोई भी न्यायालय उसकी गिरफ्तारी के लिए कोई वारंट जारी नहीं कर सकता है।

4) यदि कोई व्यक्ति राष्ट्रपति पर कोई सिविल कार्यवाही शुरू करना चाहता है, तो उसे ऐसा करने के लिए निम्नलिखित शर्तें पूरी करनी होंगी –

a) इसकी लिखित सूचना राष्ट्रपति को देनी होगी,

b) ऐसी सूचना दिए जाने के 2 माह के बाद ही किसी प्रकार की कार्यवाही प्रारंभ की जा सकेगी।

❐ राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति (Constitutional status of the President)

भारत की शासन प्रणाली में राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति क्या है? यह एक विवादास्पद विषय रहा है। यद्यपि भारत का संविधान संसदीय प्रणाली की स्थापना करता है, लेकिन राष्ट्रपति को दी गई विस्तृत कार्यपालिका, प्रशासनिक, विधायी, आपातकालीन आदि शक्तियों से जिस राष्ट्रपति का चित्र हमारे मस्तिष्क में उभरता है, वह इंग्लैण्ड के राष्ट्राध्यक्ष से कई अधिक अमेरिका के राष्ट्रपति के समीप दिखाई देता है। वस्तुत: संविधान के अनुच्छेद 53, 74 व 75 की भाषा से ऐसा भ्रम पैदा होता है कि कार्यपालिका की वास्तविक शक्ति राष्ट्रपति में निहित है। अत: राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति को समझने के लिए अनुच्छेद 53, 74 व 75 को समझना आवश्यक है। मूल संविधान में ये अनुच्छेदों इस प्रकार है –

- **अनुच्छेद 53(1)** – संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह इसका प्रयोग इस संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करेगा।
- **अनुच्छेद 74(1)** – राष्ट्रपति को सहायता एवं सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा।
- **अनुच्छेद 74(2)** – इस प्रश्न की किसी न्यायालय में जांच नहीं की जाएगी कि क्या मंत्रियों ने राष्ट्रपति को कोई सलाह दी और यदि दी तो क्या दी?
- **अनुच्छेद 75(1)** – प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सलाह पर करेगा।
- **अनुच्छेद 75(2)** – मंत्री, राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत अपने पद धारण करेंगे।

उपयुक्त उपबंधों के संकीर्ण एवं शाब्दिक निर्वचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रपति कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान है और यदि वह चाहे, तो तानाशाह बन सकता है। अनुच्छेद 53 में प्रयुक्त शब्दावली उसे वास्तविक शासक बनने का अवसर प्रदान करती है। यह सही है कि उसे अपने कार्यों को मंत्रिपरिषद् से करना चाहिए, लेकिन इस अनुच्छेद की शब्दावली में यह नहीं कहा गया है कि वह मंत्रिपरिषद् की सलाह मानने के लिए बाध्य है। दूसरा, अनुच्छेद 74(2) से भी इस विचार को समर्थन मिलता है, जो यह कहता है कि मंत्रिपरिषद् द्वारा दी गई सलाह को न्यायालय जांच से परे रखा गया है। अर्थात् – यदि राष्ट्रपति ऐसी सलाह के बिना कार्य करता है, तो उस पर आपत्ति नहीं उठाई जा सकती है।

कुछ अन्य संविधानविद् व विचारकों का भी मानना है कि संविधान में कुछ ऐसे उपबंध है, जो राष्ट्रपति को तानाशाह बना सकते हैं। वह आपातकाल की उद्घोषणा करके संसद को भंग कर सकता है और बड़ी आसानी से कार्यपालिका शक्ति को अपने हाथ में ले सकता है। वह अध्यादेश को जारी करके देश के लिए स्वयं विधि बना सकता है और प्रशासन चला सकता है, मूल अधिकार को निलम्बित कर सकता है। देश के रक्षा बलों का सर्वोच्च सेनापति का होने के नाते वह अपने विरुद्ध उठी शक्तियों को दबाने के लिए सेना का प्रयोग कर सकता है। इस प्रकार संविधान के उपबंधों की अवहेलना किए बिना ही एक महत्वकांक्षी राष्ट्रपति भारत का वास्तविक शासक बन सकता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

लेकिन यदि हम अपने संविधान की पृष्ठभूमि में अन्तर्निहित मूल भावना पर विचार करें, तो यह निष्कर्ष निकलता है कि उपर्युक्त मत सही नहीं है। हमने संसदीय प्रणाली का आदर्श अपनाया है। संसदीय प्रणालियों का मूल सिद्धान्त यह है कि राष्ट्रपति राष्ट्र का औपचारिक प्रधान होता है और वास्तविक शक्ति जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों की मंत्रिपरिषद् में निहित होती है, जो लोकसभा के प्रतिउत्तरदायी होती है। हमारा संविधान ब्रिटिश संविधान के ऊपर आधारित है। संविधान निर्माताओं का भी विचार था कि राष्ट्रपति की स्थिति एक संवैधानिक प्रधान की सी है और उसे अपनी शक्तियों का प्रयोग मंत्रिपरिषद् की सलाह पर ही करना चाहिए।

संविधान सभा में राष्ट्रपति की स्थिति को स्पष्ट करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा है कि "भारतीय संविधान में राष्ट्रपति का वही स्थान है, जो इंग्लैण्ड के संविधान में वहां के सम्राट का है। वह राष्ट्र का प्रधान होता है, किन्तु राष्ट्र का शासक नहीं। सामान्यत: वह मंत्रिपरिषद् की सलाह से बाध्य होगा। वह इनकी सलाह के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता और न वह उनकी सलाह के बिना भी कुछ कर सकता है।" इस प्रकार संविधान सभा ने इस बात की आशा थी कि भारत भी ब्रिटेन में प्रचलित संवैधानिक परम्पराओं का पालन करेगा। लेकिन संविधान निर्माताओं ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि भारतीय संविधान एक लिखित संविधान है और ब्रिटेन का संविधान अलिखित।

किन्तु ब्रिटिश संविधान की परम्पराओं को अपनाने के साथ-साथ भारतीय संविधान में कुछ ऐसे उपबंध शामिल किए गए हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् के परामर्श की अवहेलना नहीं कर सकता है। यह उपबंध निम्नलिखित हैं –

1) यदि राष्ट्रपति ऐसे मंत्रिपरिषद् को अपदस्थ कर देता है, जिसे लोकसभा में बहुमत प्राप्त है, तो मंत्रिपरिषद् उसके विरुद्ध महाभियोग का आरोप लगाकर उसे स्वयं हटा सकती है। संसद की यह शक्ति राष्ट्रपति को अधिनायक बनने से रोकती है।
2) यदि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् के परामर्श की उपेक्षा करता है, तो वह मंत्रिपरिषद् त्यागपत्र दे देगी। इससे एक प्रकार का संवैधानिक संकट उत्पन्न हो जाएगा, क्योंकि संविधान के प्रावधानों के अनुसार उसे अपने परामर्श के लिए एक मंत्रिपरिषद् को रखना संवैधानिक बाध्यता है।
3) विधि बनाने, कर लगाने और संचित निधि से धन आदि निकालने के लिए संसद की अनुमति आवश्यक है। संसदीय समर्थन एक प्रकार से मंत्रिपरिषद् (सरकार) का ही समर्थन होता है। राष्ट्रपति संसदीय समर्थन के बिना कोई भी कार्य करने में समर्थ नहीं होगा।
4) राष्ट्रपति द्वारा जारी किए गए अध्यादेश तथा आपात उद्घोषणा को भी अन्तत: संसद के समर्थन की आवश्यकता होती है।

न्यायपालिका ने भी अपने निर्णयों में सर्वदा इसी मत का अनुमोदन किया है। आगे चलकर इंदिरा गांधी सरकार इस बात को पूर्णत: स्पष्ट बना देना चाहती थी ताकि किसी भी स्थिति में संदेह का लाभ उठाकर राष्ट्रपति कोई संवैधानिक गतिरोध पैदा न कर सके। अत: 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 के माध्यम से अनुच्छेद 74(1) को संशोधित कर यह स्पष्ट कर दिया कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह मानने के लिए बाध्य है।

लेकिन इस संवैधानिक प्रावधान के संबंध में एक प्रश्न यह उठाया गया कि क्या मंत्रिपरिषद् द्वारा दिए गए परामर्श को बिना किसी विचार-विमर्श के स्वीकार कर लेना चाहिए या उसके लिए वह कुछ समय मांग सकता है। यह समस्या व्यवहारिक रूप से 1977 ई. में उस समय उत्पन्न हुई, जब तत्कालीन कार्यवाहक राष्ट्रपति बी. डी. जत्ती ने 9 राज्यों की विधानसभाओं का विघटन कर उनमें राष्ट्रपति शासन को लागू करने की उद्घोषणा पर हस्ताक्षर करने में संकोच किया और यह कहा कि इस विषय पर विचार करने के लिए वह कुछ समय चाहेंगे, लेकिन मंत्रिमण्डल के दबाव के कारण उन्हें इस उद्घोषणा पर हस्ताक्षर करने ही पड़े।

इस व्यवहारिक समस्या को दूर करने के लिए 1987 ई. में 44वां संविधान संशोधन लाया गया तथा अनुच्छेद 74(1) में संशोधन कर राष्ट्रपति को इस बात का सीमित अधिकार प्रदान किया कि वह मंत्रिपरिषद् द्वारा दी गई सलाह को एक बार पुनर्विचार के लिए लौटा सकता है। किन्तु यदि ऐसे पुनर्विचार के पश्चात् उसे सलाह दी जाती है, तो वह उसे मानने के लिए बाध्य होगा। इस संशोधन से राष्ट्रपति की शक्तियां कुछ बढ़ती हुई प्रतीत होती है और कम से कम वह इतना तो कर ही सकता है कि किसी परामर्श को स्वीकार करने में कुछ विलम्ब कर दे।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❐ राष्ट्रपति की विवेकाधीन शक्ति (Discretionary Power of the President)

राष्ट्रपति के अधिकारों एवं स्थिति के संबंध में एक मौलिक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या राष्ट्रपति के लिए प्रत्येक मामले में मंत्रिपरिषद् का परामर्श लेना आवश्यक है या कुछ ऐसे कार्य भी हो सकते हैं, जिसमें राष्ट्रपति अपने विवेकानुसार कार्य करे। भारतीय संविधान के अनुसार राष्ट्रपति के पास कोई संवैधानिक विवेकीय शक्ति नहीं है, किन्तु उसके पास कुछ **परिस्थितिजन्य विवेकीय शक्ति** (Situational discretion Power) है। राष्ट्रपति निम्नलिखित परिस्थितियों में अपनी विवेकीय शक्ति का प्रयोग (बिना मंत्रिपरिषद् की सलाह लिए) कर सकता है –

1) अनुच्छेद 75(1) के अनुसार राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की नियुक्ति करेगा। वह ऐसे व्यक्ति प्रधानमंत्री को चुनता है, जो लोकसभा में बहुतम दल के नेता हो या जिसे सदन के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। किन्तु यदि किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो, तो राष्ट्रपति अपने स्व-विवेक का प्रयोग कर सकता है। वह ऐसे व्यक्ति को प्रधानमंत्री नियुक्त कर सकता है, जो उसके अनुसार लोकसभा के बहुमत का विश्वास प्राप्त करने की स्थिति में हो और एक स्थायी सरकार बना सके।
2) यदि प्रधानमंत्री की कार्यकाल के दौरान आकस्मिक मृत्यु हो जाती है, तो ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति किसी ऐसे व्यक्ति को नियुक्त कर सकता है, जो उसकी राय में लोकसभा का विश्वास प्राप्त करने में सक्षम हो।
3) वह मंत्रिपरिषद् को विघटित कर सकता है, यदि वह सदन में विश्वास मत सिद्ध न कर सके या उसके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाए।
4) वह लोकसभा को विघटित कर सकता है, यदि किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो और कोई भी दल सरकार बनाने की स्थिति में न हो।
5) नई लोकसभा तथा सरकार के गठन तक पुरानी मंत्रिपरिषद् ही राष्ट्रपति को सलाह देती है। अतः इस समय राष्ट्रपति को विशेष ध्यान रखना होता है कि वह किसी ऐसी सिफारिश को स्वीकार न करे, जो चुनाव में उस दल को लाभ पहुंचाती हो।
6) 44वें संविधान संशोधन के बाद अनुच्छेद 74(1) के अनुसार राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की किसी अनुचित सलाह को पुनर्विचार के लिए लौटा सकता है।

Shaping Your Dreams

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

उपराष्ट्रपति
Vice-President

संविधान के अनुच्छेद 63 के अनुसार भारत का एक उपराष्ट्रपति होगा। संविधान में उपराष्ट्रपति पद से सम्बन्धित प्रावधान संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान से ग्रहण किया गया है। इस प्रकार भारत के उपराष्ट्रपति का पद अमेरिकी उपराष्ट्रपति पद की कुछ परिवर्तन सहित अनुकृति है। भारत का उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन सदस्य होता है, अर्थात् – जो व्यक्ति उपराष्ट्रपति के पद पर आसीन होगा, वही राजसभा का सभापति होगा।

❐ उपराष्ट्रपति पद हेतु योग्यताएं (Qualifications for Election as Vice-President)

कोई व्यक्ति उपराष्ट्रपति निर्वाचित होने के योग्य तभी होगा, जब वह –

1) भारत का नागरिक हो,

2) 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो,

3) राज्यसभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो,

❐ उपराष्ट्रपति पद की शर्तें (Conditions of office)

1) संसद के किसी सदन या राज्य विधानमण्डलों में से किसी सदन का सदस्य न हो। इसका तात्पर्य यह है कि यदि कोई व्यक्ति उपराष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचित किया जाता है और संसद या राज्य विधानमण्डलों में से किसी सदन का सदस्य है, तो उसे इस सदस्यता से त्यागपत्र देना पड़ेगा।

2) भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन अथवा उक्त सरकारों में से किसी के नियंत्रण में किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन लाभ का पद न धारण करता हो।

❐ निर्वाचन (Election)

उपराष्ट्रपति का निर्वाचन भी राष्ट्रपति की तरह अप्रत्यक्ष रूप से होता है। उपराष्ट्रपति का निर्वाचन एक ऐसे निर्वाचक मण्डल द्वारा किया जाता है, जो संसद के दोनों सदनों से मिलकर बनेगा, अर्थात् – उपराष्ट्रपति का निर्वाचन राज्यसभा तथा लोकसभा के सदस्यों द्वारा किया जाएगा। राज्य विधानमण्डल के सदस्य इसमें भाग नहीं लेते हैं। यह निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत तथा गुप्त मतदान द्वारा होगा।

इसके अतिरिक्त उपराष्ट्रपति चुनाव के नामांकन के लिए उम्मीदवार के कम से कम 20 प्रस्तावक तथा 20 अनुमोदक होने चाहिए। साथ ही उम्मीदवार को भारतीय रिजर्व बैंक में 15,000 रुपए की जमानत राशि जमा करना आवश्यक होता है।

❐ उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से सम्बन्धित विवाद (Election Disputes)

उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से सम्बन्धित किसी विवाद का निर्णय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाएगा (अनुच्छेद 71)। यदि निर्वाचित उपराष्ट्रपति के पद ग्रहण के बाद उच्चतम न्यायालय द्वारा उपराष्ट्रपति के निर्वाचन को अवैध घोषित किया जाता है, तो पद पर रहते हुए उपराष्ट्रपति द्वारा किए गए कार्य को अवैध नहीं माना जाएगा।

❐ पदावधि व पदरिक्तता (Term & Vacancy)

उपराष्ट्रपति अपने पद ग्रहण की तिथि से 5 वर्ष तक पद पर बना रहेगा और यदि उसका उत्तराधिकारी इस 5 वर्ष की अवधि के दौरान नहीं चुना जाता है, तो वह तब तक पद पर बना रहेगा, जब तक उसका उत्तराधिकारी निर्वाचित होकर पद ग्रहण नहीं कर लेता। लेकिन राष्ट्रपति पद ग्रहण की तिथि से 5 वर्ष के अन्दर भी पद से निम्नलिखित ढंग से हट सकता है या रिक्त किया जा सकता है –

1) राष्ट्रपति को अपना त्यागपत्र देकर।

2) उसकी मृत्यु पर।

3) यदि वह पद ग्रहण करने के अयोग्य हो या उसका निर्वाचन अयोग्य घोषित हो जाए।

4) राज्यसभा द्वारा संकल्प पारित करके।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **उपराष्ट्रपति को हटाने की प्रक्रिया (Removal procedure)**

1) उपराष्ट्रपति को पद से हटाने के लिए संकल्प राज्यसभा में पेश किया जाता है, लेकिन संकल्प पेश करने के पहले उसकी सूचना उन्हें 14 दिन पूर्व देनी आवश्यक है।

2) उन्हें हटाने हेतु कोई आधार नहीं है। उसका आधार कोई भी ऐसा कराण हो सकता है, जो राज्यसभा तय करें।

3) इस संकल्प को राज्यसभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित किया जाना आवश्यक है।

4) राज्यसभा से संकल्प पारित होने के बाद उसे अनुमोदन के लिए लोकसभा को भेजा जाता है। यदि लोकसभा संकल्प को अनुमोदित कर देती है, तो उपराष्ट्रपति को पद से हटा दिया जाता है।

ध्यातव्य है कि यदि उपराष्ट्रपति कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहा हो, तो उसे महाभियोग प्रक्रिया द्वारा ही हटाया जा सकेगा। यहां पर एक बात और ध्यान देने योग्य है कि किसी भी कारणवश उपराष्ट्रपति का पद यदि रिक्त हो जाता है, तो कार्यवाहक उपराष्ट्रपति के द्वारा भरे जाने संबंधी कोई संवैधानिक व्यवस्था नहीं है। इस प्रकार ऐसी स्थिति में उपराष्ट्रपति का पद केवल निर्वाचन के द्वारा ही भरा जाएगा। इसके अलावा जो व्यक्ति उपराष्ट्रपति पद की आवश्यक योग्यता को धारण करता है, वह एक से अधिक कार्यकाल के लिए निर्वाचित किया जा सकता है।

❐ शपथ व वेतन (Affirmation & Emoluments)

उपराष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करने के पूर्व राष्ट्रपति अथवा उसके द्वारा इस प्रयोजन के लिए नियुक्त किसी व्यक्ति के समक्ष शपथ लेता है तथा शपथ पत्र पर हस्ताक्षर करता है (अनुच्छेद 69)। उपराष्ट्रपति का शपथ पत्र का प्रारूप निम्नलिखित रूप में निर्धारित होता है – "मैं अमुक ईश्वर की शपथ लेता हूं, सत्य निष्ठा से प्रतिज्ञाण करता हूं कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा तथा जिस पद को मैं ग्रहण करने वाला हूं उसके कर्तव्यों का श्रद्धापूर्वक निर्वहन करूंगा।" उल्लेखनीय है कि उपराष्ट्रपति अपने पद का वेतन नहीं ग्रहण करता, बल्कि वह राज्यसभा के सभापति के रूप में अपना वेतन ग्रहण करता है।

❐ शक्तियां एवं कार्य (Powers & Functions)

उपराष्ट्रपति को संविधान द्वारा निम्नलिखित कार्य तथा शक्तियां सौंपी गई हैं –

- **कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य**

अनुच्छेद 65 के अनुसार राष्ट्रपति की मृत्यु या उसके द्वारा त्यागपत्र दे देने या महाभियोग प्रक्रिया के अनुसार उसके पदमुक्त होने या उसकी अनुपस्थिति के कारण जब राष्ट्रपति का पद रिक्त हो जाता है, तब उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति के कर्तव्यों का निर्वहन करता है तथा राष्ट्रपति की शक्तियों का प्रयोग करता है। उपराष्ट्रपति जब राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है या राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन करता है, उस अवधि के दौरान वह राज्यसभा के कर्तव्यों का पालन नहीं करेगा।

- **राज्यसभा के सभापति के रूप में**

अनुच्छेद 64 में दी गई व्यवस्था के अनुसार राज्यसभा के सभापति के रूप में उपराष्ट्रपति निम्नलिखित कार्यों को करता है –

1) वह राज्यसभा के कार्यों का संचालन करता है, राज्यसभा में अनुशासन बनाए रखता है तथा आज्ञा का पालन न करने वाले सदस्यों को सदन से निष्कासित करवा सकता है।

2) वह राज्यसभा के किसी सदस्य को सदन में भाषण देने की अनुज्ञा देता है तथा उसकी अनुज्ञा के बिना कोई भी सदस्य सदन में भाषण नहीं दे सकता।

3) वह सदन में पेश किए गए विधेयकों पर विचार-विमर्श करवाता है। वह विचार-विमर्श के बाद मतदान कराता है तथा उसका परिणाम घोषित करता है।

4) उसे यह निर्णय करने की शक्ति प्राप्त है कि कौन-सा प्रश्न सदन में पूछने योग्य है।

5) वह सदन में असंसदीय भाषा के प्रयोग को रोकता है तथा यह आदेश दे सकता है कि असंसदीय भाषा को अभिलेख से निकाल दिया जाए।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

6) वह राज्यसभा द्वारा पारित विधेयकों पर हस्ताक्षर करता है।

7) वह राज्यसभा के विशेषाधिकारों का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों को प्रताड़ित करता है।

- **सूचना देने का कर्तव्य**

भारत का राष्ट्रपति जब कभी त्यागपत्र देता है, तो वह अपना त्यागपत्र उपराष्ट्रपति को देता है। जब उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति का त्यागपत्र प्राप्त करें, तो उसका कर्तव्य बनता है कि वह राष्ट्रपति के त्यागपत्र की सूचना लोकसभा के अध्यक्ष को दे।

- **सामाजिक समारोह का प्रतिनिधित्व**

उपराष्ट्रपति अनेक सामाजिक समारोह पर राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है। वह समय-समय पर होने वाले शैक्षणिक व सामाजिक उत्सवों में उपस्थित होकर देश की शोभा को बढ़ाता है।

- **अन्य कार्य**

उपराष्ट्रपति को संविधान के द्वारा कोई औपचारिक कार्यपालिकीय शक्ति प्राप्त नहीं है, फिर भी व्यवहार में उसे मंत्रिमण्डल के समस्त निर्णयों की सूचना प्रदान की जाती है। उपराष्ट्रपति विभिन्न राजकीय यात्राओं में राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है।

❐ राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति के पदों का तुलनात्मक अध्ययन

(Comparative study of the Presedent & th Vice-President)

1) भारत के राष्ट्रपति की शक्ति, अधिकार एवं राजनीतिक स्थिति को देखते हुए इसकी तुलना ब्रिटिश सम्राट से की जाती है, जबकि उपराष्ट्रपति का पद संयुक्त राज्य अमेरिका के उपराष्ट्रपति के समकक्ष है।

2) राष्ट्रपति के चुनाव में संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य तथा राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य भाग लेते हैं, जबकि उपराष्ट्रपति के चुनाव में संसद के दोनों सदनों के सभी सदस्य भाग लेते हैं। राज्यों के विधानसभा के सदस्य उपराष्ट्रपति के चुनाव में भाग नहीं लेते हैं।

3) राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति दोनों का चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली एवं एकल संक्रमणीय प्रणाली के आधार पर होता है।

4) राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेने के लिए लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता होनी चाहिए, जबकि उपराष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेने के लिए राज्यसभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता होनी चाहिए।

5) राष्ट्रपति के चुनाव में उम्मीदवार बनने के लिए 50 प्रस्तावक एवं 50 समर्थक मतदाताओं की जरूरत होती है, जबकि उपराष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेने के लिए 20 प्रस्तावक एवं 20 समर्थक मतदाताओं की जरूरत होती है।

6) राष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करने के पूर्व भारत के मुख्य न्यायाधीश या उसकी अनुपस्थिति में उच्चतम न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश के समक्ष शपथ लेता है, जबकि उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति अथवा उसके द्वारा इस निमित नियुक्त किसी व्यक्ति के समक्ष शपथ लेता है। दोनों का कार्यकाल 5 वर्षों का होता है।

7) संविधान का अतिक्रमण किए जाने पर महाभियोग द्वारा राष्ट्रपति को उसके पद से हटाया जा सकता है। महाभियोग को पारित कराने के लिए सदन के कुल सदस्यों की 2/3 बहुमत की जरूरत होती है, जबकि उपराष्ट्रपति को राज्यसभा एवं लोकसभा में साधारण बहुमत से पारित संकल्प से हाटाया जा सकता है। राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाने की प्रक्रिया संसद के किसी भी सदन में प्रारंभ की जा सकता है, जबकि उपराष्ट्रपति को हटाने के लिए पहले राज्यसभा में संकल्प पेश किया जाता है तथा वहां से पारित होने के बाद लोकसभा में सहमति हेतु पेश किया जाता है।

8) राष्ट्रपति 5 वर्ष की अवधि पूर्ण होने के पूर्व भी उपराष्ट्रपति को त्यागपत्र देकर अपना पद छोड़ सकता है। इसी प्रकार उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति को त्यागपत्र देकर पदमुक्त हो सकता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

प्रधानमंत्री
Prime Minister

भारत में संसदीय शासन व्यवस्था अपनाई गई है, जिसका औपचारिक प्रधान राष्ट्रपति होता है। राष्ट्रपति को सहयोग देने के लिए मंत्रिपरिषद् होती है, जिसका अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है। दूसरे शब्दों में सैद्धान्तिक रूप से समस्त कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होती है, लेकिन कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान प्रधानमंत्री होता है।

❐ प्रधानमंत्री की नियुक्त (Appointment of the Prime Minister)

प्रधानमंत्री के चयन तथा नियुक्ति के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 75 में केवल यह प्रावधान किया गया है कि 'प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा और अन्य मंत्रियों की नियुक्त राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सलाह पर करेगा।' अनुच्छेद 75 में उल्लेखित उपबंध कि 'प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा', इससे स्पष्ट है कि संविधान में प्रधानमंत्री की नियुक्ति के विषय में कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है। अत: सैद्धान्तिक रूप से प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति के व्यक्तिगत अधिकारों का विषय है, लेकिन व्यवहारिक रूप में ब्रिटेन की संसदीय परम्पराओं की तरह बंधा होता है। राष्ट्रपति अपनी इच्छा से किसी भी व्यक्ति को प्रधानमंत्री नियुक्त नहीं कर सकता है।

संसदीय परम्पराओं के अनुसार लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को ही प्रधानमंत्री नियुक्त किया जाता है। परन्तु यदि लोकसभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो, तो राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की नियुक्ति में अपने विवेक का प्रयोग कर सकता है। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति लोकसभा में सबसे बड़े दल के नेता को या किसी ऐसे व्यक्ति, जिसे कई दलों का समर्थन प्राप्त हो, को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त कर सकता है। साथ ही उससे यह अपेक्षा करता है कि वह एक माह के भीतर लोकसभा में अपना बहुमत साबित करें। उदाहरणार्थ – 1979 ई. में चरण सिंह, 1989 ई. में वी. पी. सिंह, 1991 ई. में पी. वी. नरसिंहराव, 1998 ई. में अटल बिहारी वाजपेयी, 2004 ई. व 2009 ई. में मनमोहन सिंह को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया।

इसके अलावा जब कार्यरत मंत्रिमण्डल के विरूद्ध लोकसभा में अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाता है, तब मंत्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पड़ता है। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति लोकसभा में विपक्ष के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करता है, लेकिन उसके इन्कार करने पर उस व्यक्ति को, जिसे अन्य दलों का समर्थन प्राप्त हो, सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करता है। साथ ही उन्हें निर्देश देता है कि सरकार के गठन के पश्चात् एक माह के अन्तर्गत अपना बहुमत सिद्ध करें। 1979 ई. में तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के त्यागपत्र के बाद राष्ट्रपति ने लोकसभा में विपक्ष के नेता वाई. वी. चव्हाण को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया था, लेकिन उनके इन्कार करने पर कई दलों से समर्थन प्राप्त करने वाले चरण सिंह को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया गया था।

एक स्थिति और भी है जब राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के चुनाव व नियुक्ति के लिए अपने विवेक प्रयोग कर सकता है – प्रधानमंत्री की आकस्मिक मृत्यु हो जाए और उसका कोई स्पष्ट उत्तराधिकारी न हो। उदाहरणार्थ – 1984 ई. में इंदिरा गांधी की आकस्मिक मृत्यु होने से प्रधानमंत्री का पद रिक्त हो गया। परिणामस्वरूप तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने राजीव गांधी को प्रधानमंत्री को नियुक्त कर कार्यवाहक प्रधानमंत्री नियुक्त करने की एक नई परम्परा डाली। उल्लेखनीय है कि इसके पूर्व जवाहरलाल नेहरू तथा लाल बहादुर शास्त्री के निधन से जब प्रधानमंत्री का पद रिक्त हुआ, तो दोनों अवसरों पर राष्ट्रपति ने अस्थायी व्यवस्था की। उन्होंने वरिष्ठतम मंत्री (गुलजारीलाल नन्दा) को तब तक के प्रधानमंत्री बनाया, जब तक बहुमत दल ने औपचारिक रूप से अपना नेता न चुन लिया।

❐ प्रधानमंत्री पद के लिए योग्यताएं (Qualifications for the Prime Minister)

प्रधानमंत्री की योग्यता के सम्बन्ध में संविधान में कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं किया गया है, लेकिन इतना अवश्य कहा गया है कि प्रधानमंत्री लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होगा। किन्तु यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि उसे अनिवार्य रूप से लोकसभा का सदस्य ही होना चाहिए। स्पष्ट है कि प्रधानमंत्री को केवल लोकसभा का विश्वास मत हासिल होना चाहिए, वह संसद के किसी भी सदन का सदस्य हो सकता है। उदाहरणार्थ – 1967 ई. में जब इंदिरा गांधी, 1996 ई. में देवेगोड़ा तथा 2004 ई. व 2009 ई. में मनमोहन सिंह राज्यसभा के सदस्य थे। इसके अलावा यदि कोई ऐसा व्यक्ति प्रधानमंत्री नियुक्त किया जाता है, (जिसे लोकसभा का विश्वास मत हासिल हो), जो किसी भी सदन का सदस्य न हों, तो उसे 6 माह की समयावधि में संसद के किसी भी सदन का सदस्य बनना अनिवार्य

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

है अन्यथा 6 माह बाद वह प्रधानमंत्री के पद के योग्य नहीं रहेगा। उदाहरणार्थ – 1991 ई. में जब पी. वी. नरसिंहराव प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किए गए, तब वे लोकसभा सदस्य नहीं थे, लेकिन उन्होंने 6 माह के अन्तर्गत लोकसभा का चुनाव लड़कर लोकसभा के सदस्य बने।

❒ पदावधि व शपथ (Tenure & Oath))

समान्यतया प्रधानमंत्री अपने पद ग्रहण की तिथि से लोकसभा के अगले चुनाव के बाद नए प्रधानमंत्री की नियुक्ति तक पद पर बना रहता है, लेकिन इसके पहले भी वह

1) राष्ट्रपति को त्यागपत्र देकर पदमुक्त हो सकता है,
2) लोकसभा में अविश्वास प्रस्ताव पारित होने के कारण राष्ट्रपति को त्यागपत्र देकर, या
3) राष्ट्रपति द्वारा बर्खास्त किया जा सकता है।

प्रधानमंत्री को अपने पद ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिए गए प्रारूप के अनुसार **पद और गोपनीयता** की शपथ दिलाता है।

❒ कार्य, शक्तियां व दायित्व (Function, Powers & Duty)

प्रधानमंत्री के कार्य व शक्तियां निम्नलिखित हैं –

- **राष्ट्रपति के संबंध में**

राष्ट्रपति के संबंध में प्रधानमंत्री निम्नलिखित कर्तव्यों का निर्वहन करता है –

1) प्रधानमंत्री का यह कर्तव्य है कि वह केन्द्र सरकार के प्रशासन से संबंधित सभी निर्णयों तथा प्रस्तावित विधेयकों की जानकारी राष्ट्रपति को प्रेषित करें [अनुच्छेद 78(1)]।
2) यदि राष्ट्रपति द्वारा केन्द्र सरकार के प्रशासन या किसी प्रस्तावित विधेयक से संबंधित जानकारी मांगी जाती है, तो प्रधानमंत्री का कर्तव्य होगा कि उसे ऐसी जानकारी दें [अनुच्छेद 78(2)]।
3) यदि किसी मंत्री ने किसी विषय पर कोई निर्णय कर लिया है, किन्तु मंत्रिपरिषद् ने उस पर विचार नहीं किया है, तो राष्ट्रपति की अपेक्षा करने पर प्रधानमंत्री का कर्तव्य होगा कि उक्त निर्णय को मंत्रिपरिषद् के समक्ष विचार के लिए रखे [अनुच्छेद 78(3)]।
4) प्रधानमंत्री राष्ट्रपति को विभिन्न संवैधानिक पदों की नियुक्ति के संबंध में परामर्श देता है।

- **मंत्रिपरिषद् के संबंध में**

मंत्रिपरिषद् के अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री के निम्नलिखित कार्य हैं –

1) वह राष्ट्रपति को सिफारिश करता है कि किन व्यक्तियों को मंत्री नियुक्त किया जाना है।
2) वह मंत्रियों को विभिन्न मंत्रालयों का आवंटन करता है तथा उसमें फेरबदल करता है।
3) वह राष्ट्रपति को किसी मंत्री को बर्खास्त करने या त्यागपत्र देने की सलाह दे सकता है।
4) वह सभी मंत्रियों की गतिविधियों को नियंत्रित व निर्देशित करता है तथा विभिन्न मंत्रालयों में समन्वय स्थापित करता है।
5) वह मंत्रिपरिषद् की बैठक की अध्यक्षता करता है।
6) वह राष्ट्रपति व मंत्रिपरिषद् के मध्य एक कड़ी के रूप में कार्य करता है।

- **संसद के संबंध में**

संसद के संबंध में प्रधानमंत्री के निम्नलिखित कार्य हैं –

1) वह राष्ट्रपति को संसद का सत्र आहुत करने एवं सत्रावासान करने की सलाह देता है।
2) प्रधानमंत्री सरकार के मुख्य प्रवक्ता के रूप में कार्य करता है, वह संसद में समक्ष सरकार की नीति को स्पष्ट करता है और विपक्षियों के प्रश्नों का उत्तर भी देता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

3) वह लोकसभा का विघटन करने की सिफारिश राष्ट्रपति से कर सकता है। सामान्य परिस्थितियों में राष्ट्रपति को उसकी सिफारिश माननी होती है।

4) प्रधानमंत्री विरोधी दल से सम्पर्क बनाए रखता है। राष्ट्रीय एकता, अखण्डता तथा सार्वजनिक महत्व के अन्य विषयों पर वह विरोधी दल का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास करता है।

- **राज्य प्रशासन के संबंध में**

राज्य प्रशासन के संदर्भ में भारतीय प्रधानमंत्री की स्थिति काफी महत्वपूर्ण है। वह प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से राज्य प्रशासन में समुचित दखल रखता है। जैसे - राज्यपाल की नियुक्ति में अपनी राय देता है। केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य प्रशासन को दिशा-निर्देश देने का अधिकार उसे प्राप्त है। राज्यों की वित्तीय स्थिति कमजोर होने की दशा में वह केन्द्र पर निर्भर रहते हैं। इस प्रकार वह विभिन्न प्रकार के अनुदान और वित्तीय सहायता द्वारा राज्य प्रशासन को प्रभावित करता है।

- **अन्य कार्य व शक्तियां**

उपरोक्त भूमिकाओं के अलावा प्रधानमंत्री के निम्नलिखित कार्य भी हैं -

1) संघीय कार्यपालिका का प्रमुख होने के नाते विभिन्न राज्यों की सरकारों के साथ समन्वय बनाए रखने में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वह नीति आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद्, राष्ट्रीय एकता परिषद्, अन्तर्राज्यीय परिषद् और राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद् का अध्यक्ष होता है।

2) वह सरकार का मुखिया होने के नाते जनता व मीडिया के समक्ष सरकार के कार्यकलाप तथा नीतियों को रखता है तथा उन पर उठाए जाने वाले प्रश्नों का सरकार की ओर से उत्तर देता है।

3) वह राष्ट्र की विदेश नीति के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

4) वह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर देश का प्रतिनिधित्व करता है। विदेशों में प्रधानमंत्री के वक्तव्य को देश की नीति समझा जाता है। वह समय-समय पर विदेशों की यात्रा करता है तथा भारत सरकार के दृष्टिकोण को दूसरे देशों के सामने प्रस्तुत करता है।

❐ प्रधानमंत्री एवं गठबंधन की सरकार (Prime Minister & Coalition Government)

संसदीय प्रणाली में कार्यपालिका की वास्तविक शक्ति प्रधानमंत्री में निहित होती है तथा उसका पद काफी शक्तिशाली होता है। लॉर्ड मार्ले ने प्रधानमंत्री की स्थिति का वर्णन करते हुए उसे 'समान मंत्रियों में प्रथम' कहा है। इसका अर्थ है कि सारे मंत्री समान हैं, किन्तु प्रधानमंत्री इन सभी में प्रमुख हैं, क्योंकि वह मंत्रिपरिषद् का आधार है, अर्थात् - मंत्रिपरिषद् उसी पर टिकी होती है। जेनिंग्स ने भी प्रधानमंत्री की स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि 'वह सूर्य के समान है, जिसके चारों ओर ग्रह परिभ्रमण करते हैं। वह संविधान सबसे मुख्य आधार है। संविधान के सभी मार्ग प्रधानमंत्री की ओर ही जाते हैं।'

भारत का प्रधानमंत्री भी सिद्धान्तत: इसी अवधारणा के अनुरूप दिखाई पड़ता है, क्योंकि हमारे यहां भी ब्रिटिश संसदीय प्रणाली का अनुसरण किया गया है। किन्तु व्यवहारिक तौर पर देखे तो भारत का प्रधानमंत्री कुछ विशेष स्थितियों में अन्य मंत्रियों से काफी अधिक ताकतवर है। प्रधानमंत्री की असाधारण शक्तियों को दृष्टि में रखते हुए प्रो. के. टी. शाह ने संविधान सभा में कहा है कि प्रधानमंत्री की शक्तियों को देखकर मुझे ऐसा भय होता है कि यदि वह चाहे तो किसी भी समय देश का अधिनायक बन सकता है।

दूसरा, भारत में व्यक्तित्व आधारित राजनीति के कारण प्रधानमंत्री और शक्तिशाली हो जाता है। वह चुनाव में मतदाताओं के आकर्षण का केन्द्र होता है। जैसे - जवाहरलाल नेहरू, इंदिरा गांधी, राजीव गांधी, नरेन्द्र मोदी आदि। इसके अलावा सामान्यत: प्रधानमंत्री अपने दल का भी अध्यक्ष होता है। अत: वह सरकार व दल दोनों पर नियंत्रण स्थापित कर लेता है।

1977 ई. तक प्रधानमंत्री का पद शक्तिशाली बना रहा, किन्तु गठबंधन सरकारों के दौर में प्रधानमंत्री के पद की गरिमा व शक्ति दोनों कम होती गई। 1979 ई., 1989 ई., 1991 ई., 1996 ई., 1998 ई., 2004 ई. एवं 2009 ई. में गठबंधन सरकारें बनी। इन गठबंधन सरकारों में प्रधानमंत्री शक्तिहीन हो गया। क्योंकि विभिन्न विरोधी हितों पर आधारित बहुत से दलों की आकांक्षाओं को संतुष्ट करते हुए सरकार को स्थायित्व देना कठिन हो गया। कई बार प्रधानमंत्री इतना बेबस नजर आता है कि वह अपने किसी मंत्री की कार्य प्रणाली

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

से असहमत होते हुए भी उसे रोकने में असमर्थ रहता है।

1991 ई. में पी. वी. नरसिंह राव की सरकार में पहली बार ऐसा हुआ कि सरकार बचाने के लिए सांसद को घूस देने के आरोप में स्वयं प्रधानमंत्री को न्यायालय के कटघरे में खड़ा होना पड़ा। 1996 ई. में अटल बिहारी वाजपेयी प्रधानमंत्री बनाए गए, यह सरकार 13 दिन चली। इसके बाद खींचतान की राजनीति, राजनीतिक मूल्यों के अवमूल्यन का नजारा देखने को मिला। कांग्रेस के बाहरी समर्थन से पहले देवगोड़ा तथा आई. के. गुजराल प्रधानमंत्री बने। 1998 ई. में पुनः मध्यावधि चुनाव हुआ।

मनमोहन सिंह सरकार में अमेरिका के साथ परमाणु समझौते के मुद्दे पर बाहरी समर्थन दे रही वामपंथी पार्टियों ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी, जिससे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत सरकार व प्रधानमंत्री की विश्वसनीयता पर प्रश्न चिह्न लग गया। किसी तरह सरकार तो बची, लेकिन भारतीय इतिहास में पहली बार संसद की मर्यादाओं की धज्जी उड़ा दी गई। सांसदों को विश्वास मत के समय अनुपस्थित रहने के लिए घूस दी गई।

कुल मिलाकर गठबंधन सरकार में प्रधानमंत्री अत्यन्त कमजोर दिखाई पड़ता है। सामूहिक उत्तरदायित्व का अभाव, सहयोगी दलों के प्रमुखों का दबाव, क्षेत्रीय दलों की संकीर्ण राजनीतिक सोच एवं स्वार्थ और प्रधानमंत्री का तुलनात्मक कमजोर व्यक्तित्व आदि कारकों ने मिलकर सरकार व प्रधानमंत्री दोनों को कमजोर किया।

संघीय मंत्रिपरिषद्
Union Council of Ministers

भारत में संसदीय व्यवस्था को अपनाया गया है, जिसमें राष्ट्रपति औपचारिक प्रमुख होता है तथा प्रधानमंत्री व उसकी परिषद् वास्तविक कार्यपालिका होती है। मंत्रिपरिषद् पद्धति को उत्तरदायी सरकार भी कहते हैं। संविधान 74(1) के अनुसार राष्ट्रपति को सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी। औपचारिक रूप से समस्त कार्यकारी शक्ति राष्ट्रपति में निहित होने के बावजूद वास्तविक रूप से शासन की समस्त शक्तियों का प्रयोग मंत्रिपरिषद् द्वारा होता है। दोहरी कार्यपालिका, राजनीतिक एकता, प्रधानमंत्री का नेतृत्व, सामूहिक उत्तरदायित्व, गोपनीयता, एक सबके लिए एवं सब एक के लिए मंत्रिपरिषद् शासन व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं हैं। मंत्रिपरिषद् में निम्नलिखित प्रकार के मंत्री होते हैं –

1) **कैबिनेट मंत्री (Cabinet Ministers)** – मूल संविधान में कहीं भी कैबिनेट शब्द का उल्लेख नहीं था। 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 के माध्यम से इस शब्द को अनुच्छेद 352 में जोड़ा गया। कैबिनेट मंत्री मंत्रिपरिषद् के सबसे महत्वपूर्ण मंत्री होते हैं। यह अपने-अपने विभाग के प्रमुख होते हैं। कैबिनेट मंत्रियों को ही मंत्रिमण्डल की प्रत्येक बैठक में भाग लेने का अधिकार होता है। वस्तुतः यही वास्तविक नीति-निर्धारक संस्था है।

2) **राज्य मंत्री (State Ministers)** – यह मंत्रिमण्डलीय स्तर के नीचे का मंत्री होता है। यद्यपि तकनीकी तौर पर कैबिनेट मंत्री व इनमें कोई अन्तर नहीं होता है, क्योंकि इनके वेतन-भत्ते आदि में कोई अन्तर नहीं है। किन्तु व्यवहार में इन्हें कैबिनेट मंत्रियों की तुलना में कम महत्वपूर्ण होते हैं। इन्हें मंत्रिमण्डल की बैठकों में भाग लेने का अधिकार नहीं होता है। राज्य मंत्री भी दो प्रकार होते हैं – स्वतंत्र प्रभार वाले राज्य मंत्री तथा वे राज्य मंत्री जिन्हें स्वतंत्र प्रभार नहीं दिया गया है। स्वतंत्र प्रभार वाले राज्य मंत्री अपने विभाग के प्रमुख होते हैं तथा कैबिनेट बैठक में बुलाए जाने पर भाग लेते हैं। जबकि दूसरे प्रकार के राज्य मंत्री जिन्हें स्वतंत्र प्रभार नहीं दिया जाता है, प्रायः किसी कैबिनेट मंत्री के अधीन कार्य करते हैं।

3) **उपमंत्री (Deputy Ministers)** – यह तीसरे स्तर के मंत्री होते हैं। यह या तो कैबिनेट मंत्री के अधीन या राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) के अधीन कार्य करते हैं। यह विभागों में प्रशासनिक कार्यों का भार उठाए रहते हैं। इन्हें मंत्रीमण्डल की बैठकों में भाग लेने का कोई अधिकार नहीं होता है।

4) **संसदीय सचिव (Parliamentary Secretaries)** – ये मंत्रिपरिषद् की अंतिम श्रेणी में आते हैं। इनके पास कोई विभाग नहीं होता है। इन्हें कैबिनेट मंत्री व राज्य मंत्री के साथ उनके संसदीय कार्यों में सहायता के लिए नियुक्त किए जाते है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❐ मंत्रियों की नियुक्ति (Appointment of Ministers)

संविधान के अनुच्छेद 75(1) के अनुसार प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की सलाह पर करेगा। इसका तात्पर्य है कि राष्ट्रपति केवल उन्हीं व्यक्तियों को ही मंत्री नियुक्त कर सकता है, जिनकी सिफारिश प्रधानमंत्री करता है। इस संबंध में राष्ट्रपति के पास कोई विवेकाधिकार नहीं है।

❐ योग्यता (Eligibility)

राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सलाह पर राज्यसभा अथवा लोकसभा के किसी भी सदस्य को मंत्री बना सकता है। अत: मंत्री के लिए यह आवश्यक है कि वह संसद के किसी सदन का सदस्य हो। उल्लेखनीय है कि यदि किसी ऐसे व्यक्ति को मंत्री नियुक्त किया जाता है, जो संसद का सदस्य नहीं है, तो उसे 6 माह की समयावधि में संसद के किसी भी सदन का सदस्य बनना अनिवार्य है।

❐ कार्यकाल, पदरिक्ति व शपथ (Tenure, Vacancy & Oath)

मंत्रिपरिषद् तब तक अपने पद पर बना रहता है, जब तक उसे लोकसभा में बहुमत प्राप्त रहता है तथा लोकसभा के नए चुनाव के बाद नए मंत्रिपरिषद् का गठन नहीं हो जाता। संविधान के अनुच्छेद 75(2) के अनुसार मंत्री राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त अपना पद धारण करेंगे। अर्थात् - उनका कोई कार्यकाल नहीं होता है। प्रधानमंत्री का किसी मंत्री में जब तक विश्वास है, तब तक वह अपने पद को धारण किए रहता है। इसके अलावा मृत्यु होने पर, त्यागपत्र देने पर, राष्ट्रपति द्वारा हटाए जाने पर या किसी भी कारणवश संसद की सदस्यता समाप्त होने पर मंत्री का पदरिक्त हो सकता है। साथ ही राष्ट्रपति मंत्रियों को **पद एवं गोपनीयता की शपथ** दिलवाता है।

❐ मंत्रिपरिषद् का आकार (Size of Council of Ministers)

मूल संविधान में मंत्रिपरिषद् में सदस्यों (मंत्रियों) की संख्या निर्धारित नहीं थी। प्रधानमंत्री अपने विवेकाधिकार के आधार पर मंत्रिपरिषद् के आकार को सुनिश्चित करता था। परन्तु 91वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2004 के द्वारा यह निर्धारित किया गया है कि केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् में मंत्रियों की कुल संख्या लोकसभा के कुल सदस्य संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी। इस प्रकार प्रधानमंत्री अब मंत्रिपरिषद् में सदस्यों की अधिकतम संख्या के मामले में अपने विवेक का प्रयोग नहीं कर सकता है।

❐ मंत्रिपरिषद् का सामूहिक तथा व्यक्तिगत उत्तरदायित्व (Collective & Individual Responsibility Council of Ministers)

संविधान के अनुच्छेद 75(2) तथा 75(3) मंत्रियों के सामूहिक तथा व्यक्तिगत उत्तरदायित्वों को सुनिश्चित करते हैं। अनुच्छेद 75(3) के अनुसार मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होगी। अनुच्छेद 75(2) के अनुसार मंत्रिपरिषद् राष्ट्रपति के प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होती है, क्योंकि वह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त अपना पद धारण करती है।

इस प्रकार हर मंत्री का दोहरा उत्तरदायित्व होता है। वह अपने विभाग के कार्यों एवं निर्णयों के लिए व्यक्तिगत रूप से राष्ट्रपति के प्रति तथा अन्य मंत्रियों के विभागों के कार्यों एवं निर्णयों के लिए अन्य मंत्रियों के साथ सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है। यदि लोकसभा किसी मंत्री के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित कर दे या उस विभाग से संबंधित विधेयक को रद्द कर दे, तो समस्त मंत्रिपरिषद् को त्यागपत्र देना पड़ता है। वस्तुत: सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त मंत्रिपरिषद् को संगठित होकर कार्य करने के लिए प्रेरित करता है।

व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का अर्थ है कि कोई मंत्री अपने विभाग की किसी गड़बड़ी या गलत निर्णय का दोष अपने अधीनस्थ अधिकारी या कर्मचारी पर लगाकर बच नहीं सकता है, वह अपने विभाग के समस्त कार्यों एवं निर्णयों के लिए समस्त रूप से उत्तरदायी होगा। यहां उल्लेखनीय है कि यदि कोई मंत्री मंत्रिपरिषद् के किसी निर्णय से असहमत है, तो उसे त्यागपत्र देना होगा।

यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि भारतीय संसदीय परम्परा में किसी भी मंत्री का कोई **विधिक उत्तरदायित्व** नहीं होता है, जबकि ब्रिटेन में सार्वजनिक कार्य के लिए राजा का प्रत्येक आदेश मंत्री द्वारा हस्ताक्षरित होता है। यदि वह आदेश किसी कानून काउल्लंघन करता है, तो इसका उत्तरदायित्व मंत्री पर होता है तथा वह न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। जबकि भारत में किसी भी मंत्री के लिए कोई विधिक उत्तरदायित्व का प्रावधान नहीं है, यहां तक कि मंत्री द्वारा राष्ट्रपति को दी गई किसी सलाह की भी किसी न्यायालय द्वारा जांच नहीं की जा सकती है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❐ मंत्रिपरिषद् के कार्य एवं अधिकार (Function & Rights of Council of Ministers)

कैबिनेट मंत्री एवं स्वतंत्र प्रभार का राज्य मंत्री अपने विभाग का प्रधान होता है। वह अपने मंत्रालय की देखरेख के अलावा उसके संबंधित महत्वपूर्ण निर्णय भी लेता है। उसके निर्णय आम जनता के हित में लिए जाते हैं तथा वे देश के सर्वांगीण विकास में सहायक होते हैं। इसके अलावा यह राष्ट्रपति की सलाहकारी संस्था है तथा इसकी सलाह पर राष्ट्रपति बाध्यकारी है।

प्रत्येक मंत्री का यह अधिकार है कि वह संसद के किसी सदन में, किसी संयुक्त बैठक में और संसद की किसी समिति में, जिसमें उसका नाम सदस्य के रूप में दिया गया है, बोलने और उसकी कार्यवाहियों में भाग ले। किन्तु वह मतदान वहीं पर कर सकता है, जिसका सदन का वह सदस्य है।

❐ आंतरिक कैबिनेट या किचेन कैबिनेट (Kitchen Cabinet)

आंतरिक कैबिनेट का अर्थ व्यक्तियों के उस समूह से है, जो प्रधानमंत्री का बहुत करीबी होता है तथा हर जरूरी मसले पर निर्णय लेने के पूर्व प्रधानमंत्री उससे सलाह करता है। इसमें प्राय: कैबिनेट स्तर के 4-5 मंत्री शामिल होते हैं। उदाहरणार्थ - अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार में लालकृष्ण आडवाणी, मुरली मनोहर जोशी, प्रमोद महाजन, सुषमा स्वराज, अरुण जेटली, जार्ज फर्नांडीस आदि को आन्तरिक कैबिनेट का सदस्य माना जाता था। किचेन कैबिनेट में बाहर के व्यक्ति भी शामिल हो सकते हैं, यथा मनमोहन सरकार में सोनिया गांधी कैबिनेट की सदस्य न होते हुए भी किचेन कैबिनेट में शामिल थीं तथा सरकार के महत्वपूर्ण फैसलों को प्रभावित करती थीं।

❐ मंत्रिपरिषद् व मंत्रिमण्डल में अन्तर (Difference between Cabinet & Council of Ministers)

1) मंत्रिपरिषद् एक संवैधानिक संस्था है, जिसका उल्लेख अनुच्छेद 74 व 75 में किया गया है। जबकि मूल संविधान में मंत्रिमण्डल का कोई उल्लेख नहीं था। 44वें संविधान संशोधन 1978 द्वारा इसे अनुच्छेद 352 में जोड़ा गया है।

2) मंत्रिपरिषद् एक बड़ा निकाय है, जिसमें कई श्रेणियों के मंत्री होते हैं। जबकि मंत्रिमण्डल मंत्रिपरिषद् का ही एक भाग है।

3) मंत्रिपरिषद् का आकार लोकसभा की कुल संख्या के 15 प्रतिशत के बराबर होता है, जबकि मंत्रिमण्डल में 15 से 20 मंत्री होते हैं।

4) संविधान में संवैधानिक कार्यों के लिए मंत्रिपरिषद् का उल्लेख है, किन्तु वास्तविक रूप से संवैधानिक शक्तियों का प्रयोग मंत्रिमण्डल करता है।

5) मंत्रिपरिषद् व मंत्रिमण्डल में तकनीकी रूप से कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि उनके वेतन-भत्ते समान हैं। किन्तु व्यवहार में काफी अन्तर है। प्रधानमंत्री केवल मंत्रिमण्डल की अध्यक्षता करता है।

Shaping Your Dreams

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

संसद
Parliament

भारत में संसदीय शासन प्रणाली को स्वीकार किया गया है। संसद भारत का सर्वोच्च विधायी निकाय है। अत: संसद की सर्वोच्चता भारतीय शासन की प्रमुख विशेषता है। संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार संघ के लिए एक संसद होगी, जो राष्ट्रपति और दो सदनों से मिलकर बनेगी। उच्च सदन राज्यसभा तथा निम्न सदन लोकसभा कहलाती है। इस प्रकार संसद राष्ट्रपति, राज्यसभा तथा लोकसभा से मिलकर गठित होती है।

राष्ट्रपति संसद का अभिन्न भाग है। इसे संसद का अभिन्न भाग इसलिए माना जाता है, क्योंकि इसकी अनुमति के बिना राज्यसभा तथा लोकसभा द्वारा पारित कोई भी विधेयक अधिनियम का रूप नहीं लेगा। कुछ ऐसे विधेयक भी हैं, जिन्हें राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना संसद में पेश नहीं किया जा सकता। राष्ट्रपति को राज्यसभा तथा लोकसभा का सत्र बुलाने, उसका सत्रावसान करने और लोकसभा को विघटित करने का अधिकार है। इसके अलावा जब संसद का सत्र न चल रहा हो, तो राष्ट्रपति अध्यादेश भी जारी कर सकता है।

यहां उल्लेखनीय है कि भारतीय संविधान अमेरिका के बजाय ब्रिटेन की पद्धति पर आधारित है। अमेरिकी संविधान शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त पर आधारित है। वहां सरकार की शक्तियां अलग-अलग अंगों में निहित है। कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है, उसे विधायिका और न्यायपालिका की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है। राष्ट्रपति और उसके मंत्रिमण्डल के सदस्य विधायिका के सदस्य नहीं होते हैं। विधायी शक्ति कांग्रेस (संसद) में निहित है और न्यायपालिका शक्ति अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट में निहित है।

इंग्लैण्ड में यह सिद्धान्त लागू नहीं होता है, वहां मंत्रिमण्डल के सदस्य कार्यपालिका और विधानमण्डल दोनों के सदस्य होते हैं। ब्रिटिश संसद का उच्च सदन (हाऊस ऑफ लार्ड्स) न्यायिक शक्ति का प्रयोग भी करता है और वह इंग्लैण्ड का सर्वोच्च न्यायालय भी है। भारतीय संविधान में भी इंग्लैण्ड के संविधान की भाँति ही शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त कठोरता से लागू नहीं होता है। भारत में कार्यपालिका, अर्थात् - मंत्रिमण्डल के सदस्य विधायिका (संसद) के भी सदस्य होते हैं। राष्ट्रपति को अनुच्छेद 72 के अधीन क्षमादान की शक्ति प्राप्त है, जो एक न्यायिक कार्य है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति अनुच्छेद 123 के अधीन अध्यादेश जारी करके विधि बना सकता है, जो उसकी विधायी शक्ति है। वस्तुत: संसदीय प्रणाली में कार्यपालिका और विधायिका का अलग-अलग होना संभव नहीं है।

यद्यपि शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्तों को भारतीय संविधान में कठोरता से लागू नहीं किया गया है, किन्तु इस बात का पर्याप्त ध्यान रखा गया है कि सरकार का कोई अंग निरंकुश न हो जाए। इसलिए संविधान में रोक और संतुलन की व्यवस्था अपनाई गई है। इसी उद्देश्य से कार्यपालिका को लोकसभा के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है और विधायिका व कार्यपालिका के मनमानीपूर्ण कार्यों के विरुद्ध न्यायापालिका को यह शक्ति दी गई है कि उनके असंवैधानिक कार्यों को अवैध घोषित करके उन्हें अपनी सीमा में कार्य करने के लिए बाध्य करें।

• संसद की संरचना •
(Structure Patliament)

❒ राज्यसभा

राज्यसभा भारतीय संसद का उच्च सदन है। इसके नाम से ही स्पष्ट होता है कि यह भारत संघ के राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है। इंग्लैण्ड के हाऊस ऑफ लार्ड्स की तरह ही एक स्थायी सदन है। संविधान के अनुच्छेद 80 के अनुसार राज्यसभा का गठन 250 सदस्यों द्वारा होगा, इनमें से 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जाते हैं, जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला या समाजसेवा के संबंध में विशेष ज्ञान या व्यवहारिक अनुभव होना चाहिए। शेष 238 सदस्यों का चुनाव राज्य तथा संघ राज्यक्षेत्रों की विधानसभाओं के सदस्यों द्वारा किया जाता है। वर्तमान समय में राज्यसभा की प्रभावी संख्या 245 (233 + 12) है।

उल्लेखनीय है कि अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया आदि देशों में उच्च सदन में समान प्रतिनिधित्व सिद्धान्त को अपनाया गया है, जिसके अनुसार सभी राज्यों को उच्च सदन में समान प्रतिनिधित्व दिया जाता है। उदाहरणार्थ - अमेरिका में 50 राज्य हैं तथा प्रत्येक राज्य को 2 सीटें प्राप्त हैं। अत: अमेरिकी उच्च सदन में कुल 100 सीटें हैं। जबकि भारत में राज्यसभा के लिए सीटों का आबंटन जनसंख्या के

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

आधार पर किया जाता है, इसीलिए प्रत्येक राज्य के लिए राज्यसभा की सीटों की संख्या अलग-अलग होती हैं। जिसका उल्लेख संविधान की चौथी अनुसूची में किया गया है।

❐ लोकसभा

लोकसभा की संरचना का उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 81 एवं 331 के अन्तर्गत किया गया है। अनुच्छेद 81 के अनुसार लोकसभा में राज्यों से अधिक से अधिक 530 सदस्य प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुनकर आएंगे तथा संघ राज्यक्षेत्रों से अधिक से अधिक 20 सदस्य ऐसी रीति से चुनकर आएंगे, जो संसद विधि द्वारा उपबंधित करे। इस प्रकार लोकसभा में निर्वाचित सदस्यों की अधिकतम संख्या 550 हो सकती है। अनुच्छेद 331 के अनुसार यदि राष्ट्रपति की यह राय में लोकसभा में आंग्ल-भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है तो वह लोकसभा में अधिक से अधिक दो सदस्यों को मनोनीत कर सकता है। वर्तमान में लोकसभा की कुल संख्या 545 है, जिसमें 530 सदस्य 29 राज्यों से तथा 13 सदस्य सात संघ राज्यक्षेत्रों से चुनकर आते हैं, 2 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जा सकते हैं।

◆ निर्वाचन प्रणाली ◆

(Election Procedure)

❐ राज्यसभा

राज्यसभा के सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से होता है। राज्यसभा के सदस्यों का चुनाव राज्यों की विधानसभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है तथा संघराज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधियों का चुनाव उस ढंग से किया जाता है, जिसे संसद विधि बनाकर विहित करे। राज्यसभा में केवल 2 संघ राज्यक्षेत्रों - राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र दिल्ली तथा पाण्डिचेरी के लिए स्थानों का आबंटन किया गया है। इसके अलावा संसद ने 2003 में जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 में संशोधन करते हुए राज्यसभा के चुनाव के लिए खुले मतदान (Open Ballot) की व्यवस्था की है, जबकि इससे पहले गुप्त मतदान (Secret Ballot) की व्यवस्था लागू थी।

❐ लोकसभा

लोकसभा के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा होता है। इसका चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर गुप्त मतदान द्वारा होता है। भारत में प्रत्येक वयस्क को मतदान का अधिकार है। 61वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1988 के अनुसार संविधान के अनुच्छेद 326 में संशोधन कर लोकसभा और विधानसभाओं में मतदान करने की न्यूनतम आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी गई।

अनुच्छेद 81 के अनुसार लोकसभा की सीटों का आबंटन सभी राज्यों में जनसंख्या के आधार पर किया जाएगा। साथ ही प्रत्येक राज्य को आबंटित सीटों को भी जनसंख्या के आधार पर निर्वाचन क्षेत्रों में बांटा जाएगा। संविधान के अनुच्छेद 82 के अनुसार प्रत्येक जनगणना के बाद विभिन्न राज्यों को लोकसभा के स्थानों का पुनः आबंटन करने के लिए तथा राज्यों के भीतर निर्वाचन क्षेत्रों को पुनः विभाजित करने के लिए संसद विधि द्वारा प्राधिकारी (Authority) नियुक्त करेगी। इस प्राधिकारी को ही परिसीमन आयोग (Delimitation Commission) कहा जाता है। इसी शक्ति के तहत् संसद ने 1952 ई., 1962 ई., 1972 ई. व 2002 ई. में परिसीमन अधिनियम लागू किए।

84वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2000 के द्वारा राज्यों को लोकसभा की सीटों का आबंटन 1971 ई. की जनगणना के आधार पर 2026 ई. तक किया जाएगा, अर्थात् - 1971 ई. की जनगणना के आधार पर राज्यों को जो लोकसभा की सीटों का आबंटन हुआ था, वही आबंटन 2026 ई. तक यथावत् बना रहेगा। जबकि 87वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 के द्वारा राज्यों के अंदर निर्वाचन क्षेत्रों का विभाजन 2001 की जनगणना के आधार पर किया जाएगा। 2002 ई. में जस्टिस कुलदीप सिंह की अध्यक्षता में परिसीमन आयोग का गठन किया गया था।

उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद 330 के अनुसार लोकसभा में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए जनसंख्या के आधार पर स्थानों को आरक्षण किया गया है (राज्यसभा में कोई आरक्षण नहीं है)। परिसीमन आयोग अधिनियम 2002 के अनुसार 2001 ई. की जनगणना के आधार पर अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित सीटें 79 से बढ़ाकर 84 कर दी तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित सीटें 41 से बढ़ाकर 47 कर दी गई है। अब सामान्य वर्ग की सीटें 423 से घटकर 412 रह गई हैं (84 + 47 + 412 = 543)।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

• संसद की सदस्यता •

(Membership of Parliament)

❒ योग्यताएं (Qualifications)

संविधान के अनुच्छेद 84 व जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 में संसद सदस्य चुने जाने के लिए योग्यताएं निर्धारित की गई हैं।

➢ **संविधान द्वारा निर्धारित योग्यताएं**

1) वह भारत का नागरिक हो,

2) राज्यसभा के लिए कम से कम 30 वर्ष तथा लोकसभा के लिए कम से कम 25 वर्ष की आयु होना चाहिए,

3) उसे चुनाव आयोग द्वारा धारा अधिकृत किसी व्यक्ति के समक्ष तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिए गए प्रारूप के अनुरूप शपथ लेनी होती है,

4) उसके पास ऐसी अन्य योग्यताएं होनी चाहिए, जो संसद द्वारा बनाई गई हो।

➢ **जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 द्वार निर्धारित योग्यताएं**

1) उस व्यक्ति को राज्य या संघ शासित क्षेत्र के किसी भी निर्वाचन क्षेत्र का पंजीकृत मतदाता होना चाहिए। यह लोकसभा एवं राज्यसभा दोनों के निर्वाचन के लिए अनिवार्य है। यहां उल्लेखनीय है कि 2003 से पूर्व राज्यसभा में चुने जाने के लिए निवास संबंधी शर्त भी पूरी करनी होती थी, किन्तु संसद ने 2003 में जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 में संशोधन करते हुए निवास संबंधी शर्त को हटा दिया है। अब कोई भी नागरिक किसी भी निर्वाचन क्षेत्र से राज्यसभा के लिए चुनाव लड़ जा सकता है।

2) यदि कोई नागरिक किसी आरक्षित सीट पर चुनाव लड़ना चाहता है, तो उसे उसी अनुसूचित जाति या जनजाति का सदस्य होना चाहिए।

❒ अयोग्यताएं (Disqualifications)

कोई संसद सदस्य 3 आधारों पर अयोग्य घोषित हो सकता है, जो निम्नलिखित हैं –

➢ **संविधान द्वारा**

अनुच्छेद 102 के अनुसार कोई व्यक्ति संसद का सदस्य चुने जाने के लिए और सदस्य होने के लिए अयोग्य होगा, यदि वह –

1) भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन लाभ का पद धारण करता है,

2) विकृत मानसिकता का है और न्यायालय ने ऐसी घोषणा की है,

3) दिवालिया घोषित हो जाए,

4) किसी भी कारणवश वह भारत का नागरिक न रहे,

5) संसद द्वारा बनाई गई किसी भी विधि द्वारा अयोग्य घोषित कर दिया जाता है।

➢ **जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951**

इस अधिनियम के अनुसार कोई व्यक्ति संसद का सदस्य चुने जाने के लिए और सदस्य होने के लिए अयोग्य होगा, यदि वह –

1) चुनाव में भ्रष्ट आचरण के तहत् दोषी करार दिया हो,

2) उसे किसी अपराध में दो वर्ष या उससे अधिक की सजा हुई हो,

3) वह निर्धारित समय के अन्दर चुनाव खर्च का ब्यौरा देने में असफल रहा हो,

4) वह किसी ऐसे निगम में लाभ के पद पर हो, जिसमें सरकार की 25 प्रतिशत हिस्सेदारी हो,

5) उसे भ्रष्टाचार के कारण सरकारी सेवाओं से बर्खास्त किया गया हो,

6) सामाजिक कुरीतियों व अपराधों के प्रसार में संलिप्त हो, जैसे – अस्पृश्यता, दहेज, सती आदि।

किसी संसद सदस्य की अयोग्यता संबंधी कोई प्रश्न उत्पन्न होता है, तो उसका अंतिम फैसला राष्ट्रपति करेगा। यद्यपि राष्ट्रपति ऐसा निर्णय करने से पूर्व निर्वाचन आयोग की सलाह लेगा।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

➢ **दलबदल के आधार पर अयोग्यता**

किसी व्यक्ति को संसद सदस्यता के अयोग्य ठहराया जा सकता है, यदि वह 10वीं अनुसूची के प्रावधानों के अनुसार दलबदल का दोषी पाया गया हो। यह प्रावधान निम्नलिखित हैं –

1) यदि वह स्वेच्छा से अपने राजनीतिक दल से त्यागपत्र देता है, जिससे वह निर्वाचित होकर आया है,

2) यदि वह अपने दल को छोड़कर (जिस दल से निर्वाचित होकर आया है) दूसरे दल की सदस्यता ग्रहण कर लेता है,

3) यदि कोई निर्दलीय सदस्य किसी राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है,

4) यदि कोई मनोनीत सदस्य अपने मनोनयन के 6 माह बाद किसी राजनीतिक दल में शामिल हो जाता है,

5) यदि वह अपने राजनीतिक दल द्वारा जारी किए गए व्हिप या निर्देशों के विरुद्ध सदन में मतदान करता है या नहीं करता है।

कोई सदस्य दलबदल के आधार पर अयोग्य है या नहीं, इसका फैसला पीठासीन अधिकारी (राज्यसभा में सभापति व लोकसभा में अध्यक्ष) करता है। पीठासीन अधिकारी के निर्णय की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है।

◆ पदरिक्ति ◆

(Vacancy)

निम्नलिखित आधारों पर संसद सदस्य की सीट रिक्त हो सकती है –

➢ **दोहरी सदस्यता** – कोई सदस्य एक साथ संसद के दोनों सदनों या संसद व विधायिका का सदस्य नहीं हो सकता है। यदि वह ऐसा करता है, तो कोई एक सीट रिक्त हो जाएगी। इस संदर्भ में जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 में निम्नलिखित प्रावधान है –

1) यदि कोई नागरिक संसद के दोनों सदनों में चुन लिया जाता है, तो उसे 10 दिनों के अंदर ये बताना होगा कि उसे किस सदन में रहना है। सूचना न देने पर राज्यसभा की सीट रिक्त हो जाएगी।

2) यदि किसी सदन का सदस्य दूसरे सदन का भी सदस्य चुन लिया जाता है, तो पहले वाले सदन में उसका पद रिक्त हो जाएगा।

3) यदि कोई नागरिक एक ही सदन में दो सीटों पर चुन लिया जाता है, तो उसे स्वेच्छा से किसी एक सीट को रिक्त करना पड़ेगा। अन्यथा दोनों सीटें रिक्त हो जाएंगी।

4) यदि कोई नागरिक एक ही समय संसद व विधानसभा का सदस्य निर्वाचित हो जाता है, तो उसे 14 दिनों के अंदर विधानसभा की सीट छोड़ना होती है।

➢ **अयोग्यता के अधार पर** – कोई व्यक्ति संविधान, जनप्रतिनिधित्व अधिनियम व दलबदल के आधार पर अयोग्य होने पर उसका स्थान रिक्त हो जाता है।

➢ **त्यागपत्र** – यदि कोई सदस्य अपनी सदस्यता से त्यागपत्र दे देता है, तो उसका स्थान रिक्त हो जाता है। उल्लेखनीय है कि राज्यसभा का सदस्य सभापति को और लोकसभा का सदस्य अध्यक्ष को अपना त्यागपत्र देता है।

➢ **अनुपस्थिति** – यदि कोई सदस्य सदन की अनुमति के बिना 60 दिन से अधिक समय के लिए सदन की बैठक में अनुपस्थित रहता है, तो सदन उसका पद रिक्त घोषित कर सकता है।

➢ **अन्य स्थिति** – किसी सदस्य की सदस्यता निम्नलिखित तरीकों से भी रिक्त हो सकती है –

1) यदि न्यायालय उसके चुनाव को अवैध या शून्य घोषित कर दें,

2) यदि वह राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के पद पर चुन लिया जाता है,

3) यदि वह किसी राज्य का राज्यपाल नियुक्त कर दिया जाता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

◆ शपथ ◆

(Oath)

संसद का प्रत्येक सदस्य राष्ट्रपति या उसके द्वारा नियुक्त व्यक्ति के समक्ष शपथ लेता है। जब तक वह शपथ नहीं ले लेता, तब तक वह न तो सदन की किसी बैठक में हिस्सा ले सकता है और न ही मत दे सकता है।

◆ पदावधि ◆

(Tenure)

राज्यसभा एक स्थायी सदन है, जिसका कभी विघटन नहीं होता। इसके सदस्य 6 वर्ष के लिए चुने जाते हैं। इसके सदस्यों में से एक तिहाई (1/3) सदस्य प्रत्येक दूसरे वर्ष पदमुक्त हो जाते हैं तथा पदमुक्त होने वाले सदस्यों के स्थानों को भरने के लिए प्रत्येक दूसरे वर्ष चुनाव होते है। लोकसभा का गठन अपने प्रथम अधिवेशन की प्रथम तारीख से 5 वर्ष की अवधि के लिए होता है। राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सलाह पर 5 वर्ष की अवधि के पहले भी विघटन कर सकता है। यदि आपातकाल लगा हो, तो संसद विधि द्वारा लोकसभा की अवधि को एक बार में अधिक से अधिक 1 वर्ष के लिए बढ़ा सकती है।

◆ संसद के पीठासीन अधिकारी ◆

(Presiding Officers of Parliament)

❐ लोकसभा

संसद के प्रत्येक सदन के अपने पीठासीन अधिकारी होते हैं। लोकसभा में अध्यक्ष और उपाध्यक्ष दो प्रमुख अधिकारी होते हैं। संविधान के अनुच्छेद 93 से 97 तक में इनसे संबंधित प्रावधान दिए गए हैं। इनके अलावा लोकसभा में एक पैनल भी नियुक्त किया जाता है, जो आवश्यकता पड़ने पर इन अधिकारियों के कर्तव्य का निर्वहन करता है।

➢ **अध्यक्ष** – आम चुनाव में चुनी गई लोकसभा की प्रथम बैठक के पश्चात् उपस्थित सदस्यों में से अध्यक्ष का चुनाव किया जाता है। अध्यक्ष के चुनाव की तारीख राष्ट्रपति तय करता है,। संविधान में अध्यक्ष व उपाध्यक्ष की शपथ का कोई उल्लेख नहीं है। वे केवल लोकसभा का सदस्य होने के नाते ही शपथ लेता है। लोकसभा अध्यक्ष अपने पद पर तब तक बना रहता है, जब तक नया लोकसभा अध्यक्ष अपना पद ग्रहण न कर ले। अर्थात् – लोकसभा का जीवनकाल ही अध्यक्ष का कार्यकाल है। इसके अलावा इसका पद निम्नलिखित तरीकों से रिक्त हो सकता है –

1) यदि वह लोकसभा का सदस्य नहीं रहता है,

2) किसी भी समय वह लोकसभा के उपाध्यक्ष को अपना त्यागपत्र दे दें,

3) यदि लोकसभा के तत्कालीन समस्त सदस्य बहुमत से पारित संकल्प द्वारा उसे हटा दे।

ऐसा संकल्प तब तक प्रस्तावित नहीं किया जाएगा, जब तक लोकसभा अध्यक्ष को इस आशय की सूचना 14 दिन पूर्व न दे दी गई हो। जब अध्यक्ष को उसके पद से हटाने का कोई संकल्प लोकसभा में विचाराधीन रहता है, तब वह सदन की अध्यक्षता नहीं कर सकता है। यद्यपि उसे लोकसभा में बोलने व उसकी कार्यवाहियों में भाग लेने तथा मतदान करने का अधिकार होता है।

➢ **लोकसभा अध्यक्ष की शक्तियां एवं कार्य (Powers & Functions of the Speaker) -** लोकसभा अध्यक्ष लोकसभा का सबसे महत्वपूर्ण अधिकारी होता है, वह सदन का प्रवक्ता तथा अभिभावक होता है। वह सदस्यों के शक्तियों का संरक्षक होता है, सभी संसदीय मामलों में उसका निर्णय अंतिम होता है। उसका कार्य एवं शक्तियां लोकसभा के सम्बन्ध में काफी अधिक हैं, जिनका वर्णन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है –

1) व्यवस्था संबंधी शक्तियां – लोकसभा अध्यक्ष को लोकसभा में व्यवस्था बनाए रखने के सम्बन्ध में निम्नलिखित शक्तियां प्रदान की गई हैं –

a) कार्यवाही संचालित करने के लिए सदन में व्यवस्था व मर्यादा बनाए रखना।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

b) सदन की कार्यवाही के लिए समय का निर्धारण करना।

c) संविधान और सदन के प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों की व्याख्या करना।

d) विवादास्पद विषयों पर मतदान कराना और निर्णय की घोषणा करना।

e) मतदान के पक्ष तथा विपक्ष में बराबर मत पड़ने की स्थिति में निर्णायक मत (Casting Vote) देना।

f) प्रस्ताव, प्रतिवेदन और व्यवस्था के प्रश्नों को स्वीकार करना।

g) मंत्रिपरिषद् के किसी सदस्य को पदत्याग करने की स्थिति में उसे सदन के समक्ष अपना वक्तव्य देने की अनुमति देना।

h) सदस्यों को जानकारी प्रदान करने के लिए विचाराधीन महत्वपूर्ण विषयों की घोषणा करना।

i) संविधान सम्बन्धी मामलों पर अपनी सहमति देना।

j) गणपूर्ति के अभाव में सदन की बैठक स्थगित करना।

k) किसी सदस्य को अपनी मातृभाषा में बोलने की अनुमति देना तथा उसके भाषण के हिन्दी और अंग्रेजी अनुवाद की व्यवस्था करना।

l) सदन के नेता के अनुरोध पर सदन की गुप्त बैठक को आयोजित करने की स्वीकृति देना।

2) निरीक्षण तथा भर्त्सना सम्बन्धी शक्तियां – अध्यक्ष की निरीक्षण तथा भर्त्सना सम्बन्धी शक्तियं निम्नलिखित हैं –

a) संसदीय समितियों की अध्यक्षता करना।

b) संसदीय समितियों के अध्यक्षों को निर्देश देना।

c) सार्वजनिक हित में सदन या समिति को आवश्यक जानकारी प्रदान करने के लिए सरकार को निर्देश देना।

d) सदन में असंसदीय तथा अनावश्यक विचार–विमश को रोकना।

e) सदन में बोले गए असंसदीय तथा अश्लील सन्दर्भों को सदन की कार्यवाही से निकालना।

f) सदन में बोलने के लिए सदन के सदस्यों को अनुमति देना।

i) सदन के किसी सदस्य को असंसदीय व्यवहार के कारण निष्कासित करना अथवा उसे मार्शल द्वारा बाहर निकलवाना।

j) सदन में अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न होने पर सदन की कार्यवाही को स्थगित करना।

k) सदन के सीमाक्षेत्र के अन्तर्गत सदन के किसी सदस्य की गिरफ्तार या उसके विरूद्ध कार्यवाही करने की अनुमति देना।

l) सदन में पेश किए गए विशेषाधिकार प्रस्ताव को स्वीकार करना तथा जिसके ऊपर विशेषाधिकार हनन का आरोप लगाया गया है, उसके विरूद्ध गिरफ्तारी का आदेश जारी करना।

m) किसी व्यक्ति को सदन की अवमानना करने या उसके विशेषाधिकार के उल्लंघन करने पर सदन द्वारा किए गए निर्णय को लागू करना।

3) प्रशासन सम्बन्धी शक्तियां – अध्यक्ष को सदन प्रशासन के सम्बन्ध में निम्नलिखित शक्तियां प्रदान की गई हैं –

a) लोकसभा के सचिवालय पर नियंत्रण रखना।

b) लोकसभा की दर्शक दीर्घा और प्रेस दीर्घा पर नियंत्रण रखना।

c) लोकसभा सदस्यों के लिए आवास तथा अन्य सुविधाओं की व्यवस्था करना।

d) लोकसभा तथा उसकी समितियों की बैठकों की व्यवस्था करना।

e) संसदीय कार्यवाही के अभिलेखों को सुरक्षित रखने की व्यवस्था करना।

f) लोकसभा के सदस्यों तथा कर्मचारियों के जीवन और सदन की सम्पत्ति की सुरक्षा की उपयुक्त व्यवस्था करना।

g) लोकसभा के सदस्यों का त्यागपत्र स्वीकार करना अथवा उसे इस आधार पर अस्वीकार करना कि त्यागपत्र विवशता के कारण दिया गया है।

4) विधायी तथा अन्य कार्य – विधायी तथा अन्य कार्यों के सम्बन्ध में अध्यक्ष को निम्नलिखत शक्तियां प्राप्त हैं –

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

a) लोकसभा द्वारा पारित विधेयक को प्रमाणित करना।

b) कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं इसका निर्णय करना।

c) लोकसभा तथा राज्यसभा की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता करना।

d) राष्ट्रपति तथा लोकसभा के बीच सम्पर्क सूत्र के रूप में कार्य करना।

e) अर्न्तसंसदीय संघ में भारतीय संसदीय दल के नेता के रूप में कार्य करना।

f) भारत में विधायिकाओं के पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन की अध्यक्षता करना।

g) विदेश जाने वाले संसदीय शिष्टमण्डल के लिए सदस्यों को मनोनीत करना।

h) लोकसभा द्वारा पारित विधेयक की स्पष्ट त्रुटियों को दूर करना।

i) दलबदल कानून का उल्लंघन करने वाले लोकसभा के सदस्यों को सदन की सदस्यता के अयोग्य निर्णित करना।

➢ **लोकसभा अध्यक्ष की स्वतंत्रता व निष्पक्षता (Independence & Impartiality of the Speaker) -** लोकसभा अध्यक्ष की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। अत: उससे अपेक्षा की जाती है कि वह दलगत राजनीति से मुक्त होकर निष्पक्ष ढंग से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करें। उसकी स्वतंत्रता और निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिए निम्नलिखित प्रावधान किए गए हैं –

1) उसे कार्यकाल की सुरक्षा होती है, अर्थात् – लोकसभा के जीवनकाल ही उसका कार्यकाल होता है। इसके अलावा उसे लोकसभा के तत्कालीन सदस्यों के बहुमत से ही हटाया जा सकता है, न कि उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से। लोकसभा अध्यक्ष को हटाने से संबंधित प्रस्ताव तभी प्रारंभ किया जा सकता है, जब उसे कम से कम 50 सदस्य समर्थन दें।

2) लोकसभा अध्यक्ष का वेतन भारत की संचित निधि पर भारित होता है, जिस पर संसद में मतदान नहीं होता है।

3) लोकसभा में उसके कार्यों एवं आचरण के संबंध में न तो चर्चा की जा सकती है और न ही आलोचना।

4) लोकसभा को संचालित करने की उसकी शक्ति तथा उसके द्वारा की गई कार्यवाहियां न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर होती है।

5) लोकसभा में होने वाले मतदान में उसे पहली बार मत डालने का अधिकार नहीं है, किन्तु मत बराबर होने की स्थिति में वह अपना निर्णायक मत डाल सकता है। यह अध्यक्ष के पद को निष्पक्षता बनाता है।

6) उसे वरीयता सूची में काफी ऊँचा स्थान दिया गया है। भारत के मुख्य न्यायाधीश के समकक्ष उसे भी 7वें स्थान पर रखा गया है, अर्थात् – उसका स्थान भारत के प्रधानमंत्री तथा शेष मंत्रियों से भी ऊपर है।

यहां उल्लेखनीय है कि इंग्लैण्ड में अध्यक्ष का पद अत्यधिक गौरव तथा प्रतिष्ठा का पद समझा जाता है। अत: वह अपनी निष्पक्षता बनाए रखने के लिए अपने दल से त्यागपत्र दे देता है। जबकि भारत में अध्यक्ष अपने दल से त्यागपत्र नहीं देता है और वह सदन के बाहर पूरी तरह से दलीय व्यक्ति होता है। स्पष्ट है कि भारत में लोकसभा अध्यक्ष सदन के अंदर निर्दलीय एवं निष्पक्ष रूप से कार्य करता है, लेकिन सदन के बाहर वह अपने दल का सक्रिय सदस्य होता है और सक्रिय राजनीति में भाग लेता है।

यद्यपि संजीव नीलम रेड्डी ने इंग्लैण्ड की तरह भारत में स्वस्थ्य परम्परा डालने का प्रयास किया था। जब वे लोकसभा अध्यक्ष निर्वाचित हुए, तो उन्होंने अपने दल से त्यागपत्र दे दिया था, लेकिन बाद में यह परम्परा कायम नहीं रह पाई। इसके अलावा इंग्लैण्ड में अध्यक्ष पद की निष्पक्षता बनाए रखने के लिए वहां कई परम्पराओं का विकास हुआ है। अध्यक्ष के संबंध में वहां एक कहावत है कि एक बार स्पीकर सदैव स्पीकर होता है, अर्थात् – यदि सदन का स्पीकर दुबारा निर्वाचित हो जाए, तो उसे बिना किसी चुनाव के पुन: स्पीकर निर्वाचित कर लिया जाता है और जब तक वह व्यक्ति चुनाव जीतकर आता रहता है, तब तक वह स्पीकर बना रहता है। स्पीकर जिस निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव लड़ता है, वहां अन्य कोई दल अपना उम्मीदवार खड़ा नहीं करता है। इसका उद्देश्य यह होता है कि पुराना स्पीकर निर्विरोध निर्वाचित होकर आ सके।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

इसके अलावा इंग्लैण्ड में स्पीकर के संबंध में यह भी प्रथा है कि उसे सेवानिवृत्ति के पश्चात् उच्च सदन का सदस्य बना दिया जाता है। इसका उद्देश्य यह है कि बिना किसी स्वार्थ के या कार्यपालिका के प्रभाव में आए बिना निष्पक्ष ढंग से अपना कार्य करें। भारत में अध्यक्ष पद की स्वतंत्रता एवं निष्पक्षता को बनाए रखने वाली इन संसदीय परम्पराओं की उपेक्षा की गई है।

दूसरी ओर अमेरिकी कांग्रेस में स्पीकर पूर्णरूप से दलीय व्यक्ति होता है, जो दल के अन्य सदस्यों के समान ही सदन की कार्यवाही और वाद-विवाद में भाग लेता है। सदन के बाहर वह दल के एक सक्रिय सदस्य के रूप में कार्य करता है। अमेरिका में इस सिद्धान्त को माना गया है कि अध्यक्ष का कार्य अपने दलीय हितों को सुरक्षित रखना तथा बढ़ावा देना है। इंग्लैण्ड व अमेरिका के लोकसभा अध्यक्षों की तुलना में भारत का लोकसभा अध्यक्ष सैद्धान्तिक रूप से इंग्लैण्ड के स्पीकर के निकट और व्यवहारिक रूप अमेरिकी स्पीकर के करीब दिखाई देता है। भारत के संविधान निर्माताओं का उद्देश्य यह था कि अध्यक्ष इंग्लैण्ड की तरह दलगत राजनीति से ऊपर रहकर निष्पक्ष रूप से कार्य करें, लेकिन उन्होंने इंग्लैण्ड की परम्पराओं के अनुरूप संविधान में न तो ऐसा कोई प्रावधान रखा और न ही संविधान लागू होने के बाद ऐसी प्रथाओं का विकास किया।

- **लोकसभा उपाध्यक्ष** – लोकसभा अध्यक्ष की तरह सदन के सदस्य उपाध्यक्ष का चुनाव करते हैं। उपाध्यक्ष के चुनाव में वही प्रक्रिया अपनाई जाती है, जो अध्यक्ष के चुनाव में अपनाई जाती है। उपाध्यक्ष तब तक अपने पद पर बना रहता है, जब तक वह सदन का सदस्य रहता है। वह लोकसभा अध्यक्ष को त्यागपत्र देकर या लोकसभा के सदस्यों द्वारा पारित संकल्प के आधार पर हटाया जा सकता है। उपाध्यक्ष को उसके पद से हटाने के लिए कोई संकल्प लोकसभा मे पेश करने के लिए 14 दिन पूर्व उसकी सूचना उसे दी जानी चाहिए।

  अध्यक्ष का पद रिक्त या अनुपस्थित होने की दशा में वह उसके कार्यों का संपादन करता है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में वह दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता करता है। इसके अलावा उसके पास एक विशेषाधिकार होता है कि उसे जब भी किसी संसदीय समिति का सदस्य बनाया जाता है, तो वह स्वाभाविक रूप से उसका अध्यक्ष बन जाता है।

- **अस्थायी (प्रोटेम) अध्यक्ष** – लोकसभा अध्यक्ष नई लोकसभा की पहली बैठक के ठीक पहले तक अपने पद पर बना रहता है। जबकि नया अध्यक्ष नई लोकसभा द्वारा चयनित किया जाता है। अत: पुराने और नए अध्यक्ष के अन्तराल को भरने के लिए राष्ट्रपति नई लोकसभा के सबसे वरिष्ठ सदस्य को अस्थायी अध्यक्ष के रूप में नियुक्त करता है। राष्ट्रपति स्वयं उसे नियुक्त करता है।

  अस्थायी अध्यक्ष को लोकसभा अध्यक्ष के समान ही शक्तियां प्राप्त होती है और वह लोकसभा की प्रथम बैठक की अध्यक्षता करता है। उसके 2 मुख्य कर्तव्य होते हैं –

  1) नए सदस्यों को राष्ट्रपति की ओर से शपथ दिलाना,

  2) नए अध्यक्ष का चुनाव करवाना।

  जब लोकसभा के सदस्य नया अध्यक्ष चुन लेते हैं, तो अस्थायी अध्यक्ष का पद स्वत: ही समाप्त हो जाता है। वस्तुत: नए अध्यक्ष चुनने की शक्ति लोकसभा के सदस्यों के पास होती है, किन्तु यह शक्ति उन्हें तब तक प्राप्त नहीं होती, जब तक वह शपथ न ले ले। अत: इस अन्तराल को अस्थायी अध्यक्ष के माध्यम से पूरा किया जाता है।

- **राज्यसभा** – सभापति व उपसभापति राज्यसभा के प्रमुख अधिकारी होते हैं। उपराष्ट्रपति ही राज्यसभा का पदेन सभापति होता है। राज्यसभा के सभापति को तभी पद से हटाया जा सकता है, जब उसे उपराष्ट्रपति पद से हटा दिया जाए। जब उपराष्ट्रपति कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है, तो वह राज्यसभा के सभापति के रूप में कार्य नहीं करता है। सदन के पीठासीन अधिकारी के रूप में वह उसकी शक्ति व कार्य लोकसभा अध्यक्ष के समान ही होती है। यद्यपि उसके पास 2 विशेष शक्तियां नहीं होती है, जो केवल लोकसभा अध्यक्ष के पास ही होती है –

  1) कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं, उसका अंतिम निर्णय लोकसभा अध्यक्ष ही करता है,

  2) संसद की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता लोकसभा अध्यक्ष ही करता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

संसद में विधायी प्रक्रिया
Legislative Procedure in Parliament

संसद का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है – देश के लिए कानून बनाना। संविधान के अनुच्छेद 107 से 111 में विधायी प्रक्रिया का वर्णन किया गया है। विधायी प्रक्रिया सदन में एक विधेयक के रूप में प्रारंभ की जाती है। जब विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया जाता है और राष्ट्रपति उस पर अपनी सहमति प्रदान कर देता है, तो वह अधिनियम बन जाता है। संसद में पेश किए जाने वाले विधेयकों को हम 2 भागों में बांट सकते हैं –

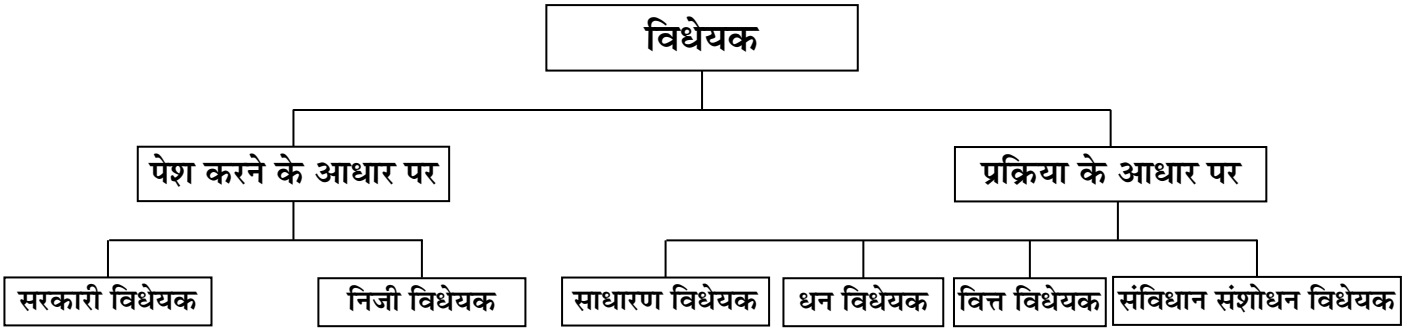

संसद में प्रस्तुत किए जाने वाले विधेयक 2 प्रकार के होते हैं – सरकारी विधेयक (Goverment Bill) एवं निजी विधेयक (Private Bill)। सरकारी विधेयक वे होते हैं, जो मंत्रिपरिषद् के किसी मंत्री द्वारा पेश किए जाते हैं। जबकि निजी विधेयक मंत्रिपरिषद के किसी अन्य सदस्य (चाहे वह सत्तारूढ़ दल का ही क्यों न हो) द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं। यद्यपि दोनों को पारित करने के लिए समान प्रक्रिया अपनाई जाती है।

विधि निर्माण की प्रक्रिया की दृष्टि से संसद में पेश किए जाने वाले विधेयकों को 4 श्रेणियों में बांटा जा सकता है –

❒ साधारण विधेयक (Ordinary Bill)

इन विधेयकों की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं है। वस्तुतः वित्त, धन और संविधान संशोधन विधेयक को छोड़कर सभी विधेयक साधारण विधेयक माने जाते हैं। प्रत्येक साधारण विधेयक कानून बनने से पूर्व 5 चरणों से गुजरता है, जो निम्नलिखित है –

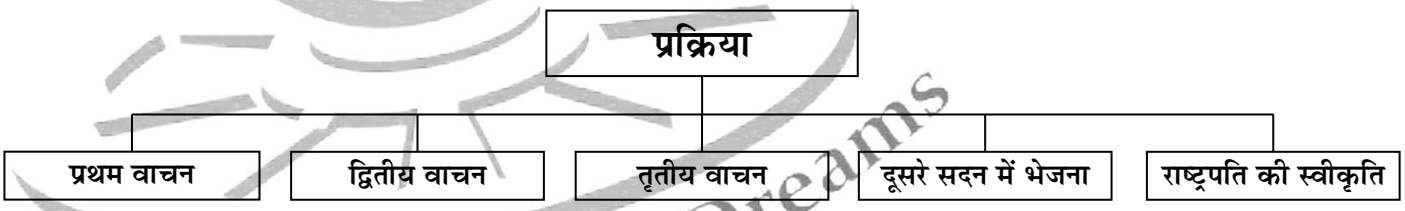

a) प्रथम वाचन (First Reading) – इस चरण में विधेयक को संसद के किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है तथा यह सरकारी या निजी कोई भी विधेयक हो सकता है। जब कोई सदस्य विधेयक प्रस्तुत करना चाहता है, तो इससे पहले सदन को इसकी सूचना देनी पड़ती है। इस चरण में विधेयक पेश करने वाला सदस्य विधेयक पेश करने के कारण शीर्षक तथा उद्देश्य के संबंध में बताता है। इसके साथ-साथ विधेयक की प्रकाशित प्रतियां सदन के सभी सदस्यों को बांटी जाती है। इस चरण में सामान्यतः विधेयक पर कोई चर्चा नहीं होती है, सिर्फ सदन की अनुमति प्राप्त की जाती है। सदन की अनुमति के पश्चात् विधेयक को राज-पत्र (गज़ट) में प्रकाशित किया जाता है। यदि विधेयक प्रस्तुत करने से पहले राज-पत्र में प्रकाशित हो चुका हो, तो सदन की अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं होती है। एक दिन में संसद में कितने विधेयक पेश किए जा सकते हैं, इसके लिए कोई सीमा निधारित नहीं है।

b) द्वितीय वाचन (Second Reading) – यह विधेयक विचार-विमर्श की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण चरण होता है। इसमें विधेयक के खण्ड-उपखण्ड पर विस्तृत एवं गंभीरता से विचार किया जाता है। द्वितीय वाचन के अन्तर्गत विधेयक 3 उपचरणों से गुजरता है, जो निम्नलिखित है –

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

i) **साधारण बहस की अवस्था (Stage of General Discussion)** - इसमें विधेयक की प्रकाशित प्रतियां सभी सदस्यों में बांट दी जाती है। इसमें विधेयक पर सैद्धान्तिक चर्चा होती है, लेकिन विधेयक पर विस्तार से विचार-विमर्श नहीं किया जाता है। इस चरण में सदन निम्नलिखित में से कोई भी कदम उठा सकता है -

- इस पर तुरन्त चर्चा कर सकता है।
- चर्चा के लिए बाद की तिथि निर्धारित कर सकता है।
- विधेयक को सदन की प्रवर समिति को सौंप सकता है।
- विधेयक को दोनों सदनों की संयुक्त समिति को सौंपा जा सकता है।
- इसे जनता की राय जानने के लिए सार्वजनिक किया जा सकता है।

ii) **समिति अवस्था (Committee Stage)** - सामान्यत: विधेयक को प्रवर समिति या संयुक्त समिति को सौंप दिया जाता है। यह समिति विधेयक के प्रत्येक खण्ड पर विस्तारपूर्वक विचार करती है और सुझाव देती है। समिति इसके मूल विषय में परिवर्तन नहीं कर सकती है।

iii) **विचार अवस्था (Consideration Stage)** - समिति द्वारा प्रतिवेदन दिए जाने के बाद विधेयक को संसद के समक्ष विचार के लिए रखा जाता है। सदन को समिति के प्रतिवेदन के संदर्भ में विधेयक विचार करना होता है। इस चरण में विधेयक के प्रत्येक प्रावधान पर खण्डवार चर्चा एवं मतदान होता है। इस अवस्था में सदस्यों को संशोधन प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अधिकार होता है। यदि उनके संशोधन सदन द्वारा स्वीकृत हो जाते हैं, तो विधेयक का हिस्सा बन जाते हैं। इस प्रकार जब सभी खण्डों पर मतदान पूरा हो जाता है, तो विधेयक नए रूप में सामने आता है।

c) **तृतीय वाचन (Third Reading)** - इस चरण में विधेयक को स्वीकार या अस्वीकार करने के संबंध में चर्चा होती है। इस चरण में विधेयक में कोई संशोधन नहीं किया जा सकता है। यदि सदन अपेक्षित बहुमत से विधेयक को पारित कर देता है, तो उस विधेयक को विचार और स्वीकृति के लिए दूसरे सदन में भेजा जाता है।

d) **दूसरे सदन में भेजना (Sending the Bill to the Second House)** - पहले सदन से प्राप्त विधेयक पर विचार-विमर्श के लिए उसे सदन के पटल पर रखा जाता है। इस सदन में भी विधेयक प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय वाचन होते हैं। इस संबंध में दूसरे सदन के पास विधेयक के संबंध में निम्नलिखित विकल्प होते हैं -

i) वह विधेयक को बिना किसी संशोधन के पारित करके प्रथम सदन को वापस भेज सकता है।

ii) वह विधेयक को कुछ संशोधनों सहित पारित करके प्रथम सदन को वापस भेज सकता है।

ii) वह विधेयक को अस्वीकार कर सकता है।

iv) वह विधेयक पर किसी प्रकार की कार्यवाही न करके उसे लम्बित पड़े रहने दे सकता है।

यदि दूसरे सदन ने बिना संशोधन के विधेयक पारित कर दिया है, तो विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है। यदि दूसरे सदन ने कुछ संशोधन प्रस्तावित किए हो और पहला सदन उन संशोधनों को स्वीकार कर लें, तो विधेयक संसद द्वारा पारित मान लिया जाता है। इन दोनों स्थितियों में उस विधेयक को अनुमति हेतु राष्ट्रपति के पास भेज दिया जाता है।

इसके अलावा यदि द्वितीय सदन द्वारा किए गए संशोधनों के प्रथम सदन अस्वीकृत कर देता है या द्वितीय सदन विधेयक को पूर्णरूप से अस्वीकृत कर देता है या द्वितीय सदन 6 माह तक कोई कार्यवाही नहीं करता है, तो दोनों सदनों के मध्य गतिरोध की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस तरह के गतिरोध को समाप्त करने के लिए राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकता है। यदि संयुक्त बैठक में उपस्थित व मत देने वाले सदस्यों का बहुमत विधेयक को पारित कर देता है, तो उसे दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

e) **राष्ट्रपति की स्वीकृति (Assent of the President)** – संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित किए जाने के बाद विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। अनुच्छेद 111 के तहत् राष्ट्रपति के पास विधेयक के संबंध 3 विकल्प होते हैं –

i) वह विधेयक को स्वीकृति दे सकता है, उसकी स्वीकृति मिलने के बाद विधेयक अधिनिमय बन जाता है।

ii) वह स्वीकृति देने हेतु विधेयक को अपने पास रोक सकता है।

iii) वह पुनर्विचार हेतु सदन को विधेयक वापस लौटा सकता है। यदि दोनों सदन राष्ट्रपति के सुझावों को स्वीकार या अस्वीकार करते हुए विधेयक को पुन: पारित कर देते हैं, तो राष्ट्रपति अपनी सहमति देने हेतु बाध्य होता है।

❐ धन विधेयक (Money Bill)

संविधान के अनुच्छेद 110 में धन विधेयक की परिभाषा दी गई है। इसके अनुसार कोई विधेयक माना जाएगा, यदि उसमें निम्नलिखित विषयों से जुड़ा हुआ कोई प्रावधान हो –

1) किसी कर को लगाया जाना, समाप्त किया जाना, परिवर्तित किया जाना या नियमित किया जाना।

2) केन्द्रीय सरकार द्वारा धन उधार लेने से संबंधित विनियम।

3) भारत की संचित निधि या आकस्मिक निधि में धन जमा करना, उसमें धन निकालना या उस धन की अभिरक्षा से संबंधित कोई प्रावधान बनाना।

4) भारत की संचित निधि में से धन का विनियोग।

5) किसी व्यय को भारत की संचित निधि पर भारित व्यय घोषित करना।

अनुच्छेद 110(2) में यह स्पष्ट किया गया है कि कोई विधेयक केवल इसलिए धन विधेयक नहीं समझा जाएगा, कि –

1) उसका संबंध किसी जुर्माने या आर्थिक दण्ड के साथ है।

2) उसका संबंध किन्हीं सेवाओं या लाइसेंसों की फीस के साथ है।

3) उसका संबंध किसी स्थानीय या प्राधिकारी या निकाय द्वारा स्थानीय प्रयोजन के लिए कोई कर लगाने, हटाने, परिवर्तित करने या विनियमित करने से है।

यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं, तो इस संबंध में लोकसभा अध्यक्ष का निर्णय अंतिम होगा। उसके निर्णय को किसी न्यायालय, संसद या राष्ट्रपति द्वारा चुनौती नहीं दी जा सकती है। धन विधेयक को पारित करने के लिए संसद द्वारा अलग प्रक्रिया अपनाई जाती है, जो निम्नलिखित है –

1) प्रत्येक धन विधेयक सरकारी विधेयक ही होते हैं, अत: इसे कोई मंत्री ही पेश कर सकता है।

2) धन विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश से केवल लोकसभा में ही प्रस्तुत किया जाता है।

3) लोकसभा में पारित होने के पश्चात् इसे राज्यसभा में विचार हेतु भेजा जाता है। उल्लेखनीय है कि लोकसभा अध्यक्ष इसे धन विधेयक के रूप में पृष्ठांकित करता है।

4) धन विधेयक के संदर्भ में राज्यसभा की शक्ति सीमित है। वह धन विधेयक को अस्वीकृत या संशोधित नहीं कर सकता है। वह केवल सिफारिश कर सकता है। इसके लिए उसके पास अधिकतम 14 दिनों का समय होता है। यदि वह 14 दिनों के अन्दर विधेयक वापस नहीं लौटाता है, तो मान लिया जाता है कि विधेयक उसी रूप में पारित हो गया, जिस रूप में उसे लोकसभा ने पारित किया था। उल्लेखनीय है कि लोकसभा राज्यसभा की सिफारिश को स्वीकार या खारिज कर सकता है।

5) इसके बाद धन विधेयक राष्ट्रपति के पास जाता है। इसके साथ लोकसभा अध्यक्ष का यह प्रमाण-पत्र पृष्ठांकित होता है कि यह धन विधेयक है। राष्ट्रपति के पास धन विधेयक के संदर्भ में केवल 2 ही विकल्प होते हैं – पहला, वह उस पर स्वीकृति दे दे और दूसरा, वह विधेयक को रोक ले। राष्ट्रपति धन विधेयक को संसद के पास पुनर्विचार के लिए नहीं लौटा सकता, क्योंकि धन विधेयक को पेश करने की अनुमति पहले ही राष्ट्रपति से ली जा चुकी है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❐ वित्त विधेयक (Financial Bill)

धन विधेयक की तरह वित्त विधेयक की परिभाषा संविधान में नहीं दी गई है, किन्तु अनुच्छेद 117 में वित्त विधेयक के संबंध में विशेष प्रावधान दिए गए हैं। वित्तीय विधेयक उन सभी विधेयकों को कहते हैं, जिनका संबंध वित्त से जुड़े मामलों से होता है। जैसे – राजस्व या व्यय से संबंधित विधेयक इनमें आगामी वित्तीय वर्ष में किसी नए कर लगाने या कर में संशोधन आदि से संबंधित विषय होते हैं। वित्त विधेयक को 3 भागों में बांटा जा सकता है –

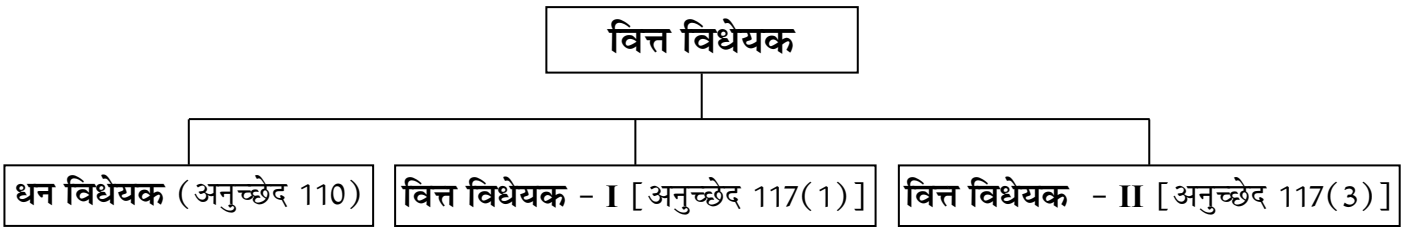

- **वित्त विधेयक – I**

वित्त विधेयक – I वह विधेयक है, जिसमें अनुच्छेद 110 में उल्लेखित सभी विषय तो आते हैं। साथ ही कुछ ऐसे विषय भी शामिल हैं, जो अनुच्छेद 110 की परिधि के बाहर के हैं। वित्त विधयेक – I दो मामलों में धन विधेयक के समान होता है –

1) यह भी धन विधेयक की तरह केवल लोकसभा में पेश किया जा सकता है।

2) यह भी धन विधेयक की तरह राष्ट्रपति की सिफारिश से ही पेश किया जा सकता है।

इन दो बातों के अलावा वित्त विधेयक को पारित करने के लिए साधारण विधेयक की तरह ही प्रक्रिया अपनाई जाती है। दूसरे शब्दों में राज्यसभा को वित्त विधेयक के संदर्भ में साधारण विधेयक की तरह ही शक्ति प्राप्त होती है। वह इसमें संशोधन या खारिज भी कर सकती है। साथ ही गतिरोध की स्थिति में संयुक्त बैठक भी की जा सकती है। राष्ट्रपति वित्त विधेयक को भी साधारण विधेयक की तरह स्वीकार, अस्वीकार या पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकता है।

- **वित्त विधेयक – II**

वित्त विधेयक – II में वे सभी विधेयक आते हैं, जिनकी चर्चा अनुच्छेद 117(3) में की गई हैं। इन विधेयकों में भारत की संचित निधि पर भारित व्यय से संबंधित उपबंध होते हैं, लेकिन ऐसा कोई विषय शामिल नहीं होता है, जिसका संबंध अनुच्छेद 110 में शामिल विषयों से हो। इसीलिए कहा जाता है कि प्रत्येक धन विधेयक वित्त विधेयक होता है, किन्तु प्रत्येक वित्त विधेयक धन विधेयक नहीं होता है।

इन विधेयकों की प्रक्रिया भी साधारण विधेयकों की तरह होती हैं। इन्हें किसी भी सदन में प्रारंभ किया जा सकता है। राष्ट्रपति की पूर्वानुमति की कोई आवश्यकता नहीं होती है। साथ ही दोनों सदनों में गतिरोध होने की स्थिति में संयुक्त बैठक भी बुलाई जा सकती है। राष्ट्रपति को इन विधेयकों के संबंध में स्वीकृति देने, रोक लेने तथा पुनर्विचार हेतु वापस भेजने, के तीनों विकल्प प्राप्त होते हैं। इस विधेयक के संबंध में एक बात महत्वपूर्ण है कि ऐसे विधेयक को किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है, किन्तु उसे पारित करने से पूर्व राष्ट्रपति की सिफारिश आवश्यक होती है। यह सिफारिश दोनों सदनों को लेनी होती है।

❐ संविधान संशोधन विधेयक (Constitution Amendments Bills)

भारतीय संविधान संघात्मक संविधान है। प्राय: संघात्मक संविधान में संशोधन की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल होती है। अमेरिका, ऑस्ट्रेलिय, कनाडा, स्वीट्जरलैण्ड आदि सभी संघात्मक संविधानों में उनके संशोधन की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल है। इसी आधार पर संघात्मक संविधानों की आलोचना की जाती है कि यह अपरिवर्तनशील होने के कारण विकास की गति से मेल नहीं रख पाते हैं।

भारतीय संविधान निर्माता संघात्मक संविधानों की इस कठिनाई से परिचित थे। अत: वे भारतीय संविधान को अत्यधिक जटिलता से बचाना चाहते थे। संविधान किसी राष्ट्र की आवश्यकताओं व परिस्थितियों को ध्यान में रखकर बनाया जाता है, किन्तु समय के साथ आवश्यकताओं व परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाता है। अत: भारतीय संविधान एक लिखित संविधान होते हुए भी पर्याप्त परिवर्तनशील संविधान है। अत: संविधान में संशोधन की प्रक्रिया ब्रिटेन की तरह आसान तथा अमेरिका की तरह अत्यधिक कठिन नहीं है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

इस प्रकार हमारे संविधान निर्माताओं ने मध्यम मार्ग का अनुसरण किया है। यह न तो इतना अनम्य है कि आवश्यक संशोधन न किए जा सकते हो और न इतना नम्य है कि अवांछित संशोधन किए जा सकते हो। अत: यह कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान नम्यता-अनम्यता का अनोखा मिश्रण है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 368 संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्रदान करता है।

➢ **संविधान संशोधन की प्रक्रिया** - अनुच्छेद 368 में संविधान संशोधन की प्रक्रिया दी गई है, जो निम्नलिखित है -

1) संविधान संशोधन विधेयक संसद के किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है (राज्य विधानमण्डल में नहीं)।

2) यह सरकारी या निजी विधेयक हो सकता है तथा इसके लिए राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं होती है।

3) संविधान संशोधन विधेयक को पारित करने के लिए वही प्रक्रिया अपनाई जाएगी, जैसी साधारण विधेयक के लिए अपनाई जाती है।

4) यह विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा विशेष बहुमत से पारित होना चाहिए। ध्यातव्य है कि दोनों सदनों में अलग-अलग पारित होना अनिवार्य है। दोनों सदनों के बीच गतिरोध की स्थिति में संयुक्त बैठक का कोई प्रावधान नहीं है।

5) यदि विधेयक संविधान के संघीय विषय से संबंधित है, तो इसे आधे से अधिक राज्यों के विधानमण्डलों से भी अनुमोदन प्राप्त करना आवश्यक है।

6) सभी औपचारिकताएं पूरी होने के पश्चात् विधेयक राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत होता है। उल्लेखनीय है कि राष्ट्रपति संविधान संशोधन विधेयक पर अपनी अनुमति देने के लिए बाध्य है। राष्ट्रपति की सहमति के बाद यह विधेयक अधिनियम बन जाता है तथा संविधान में शामिल कर लिया जाता है।

➢ **संविधान संशोधन के प्रकार** - भारतीय संविधान में 3 प्रकार से संशोधन किया जा सकता है, जो निम्नलिखित हैं -

1) **साधारण बहुमत द्वारा संशोधन** - संविधान में कुछ ऐसे अनुच्छेद हैं, जिन्हें संसद साधारण बहुमत से संशोधित कर सकती है। किन्तु संसद द्वारा किए गए इस प्रकार के संशोधन को संविधान संशोधन नहीं माना जाता है। जैसे - राज्यों के नाम व सीमाओं में परिवर्तन, राज्यों के क्षेत्र को कम करने या वृद्धि करने, राज्यों में विधानपरिषद् को गठित करने या समाप्त करने संबंधी आदि।

2) **विशेष बहुमत द्वारा संशोधन** - संविधान के अधिकांश संशोधन संसद के विशेष बहुमत द्वारा किए जाते हैं। विशेष बहुमत से तात्पर्य है - सदन के कुल सदस्यों का बहुमत तथा उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई (2/3)। जैसे - मूल अधिकार आदि।

3) **विशेष बहुमत तथा राज्यों के अनुमोदन द्वारा संशोधन** - संविधान के संघात्मक ढांचे से जुड़े प्रावधानों में संशोधन करने के लिए अत्यन्त कठिन प्रक्रिया अपनाई गई है। ऐसे विधेयकों को संसद के दोनों सदनों द्वारा विशेष बहुमत से पारित किया जाना तो आवश्यक है। साथ ही आधे से अधिक राज्यों के विधानमण्डलों का अनुमोदन भी आवश्यक है। जैसे - राष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित निर्वाचकमण्डल, 7वीं अनुसूची में विषय संबंधी संशोधन आदि।

स्पष्ट है कि संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया को न बहुत आसान बनाया है और न ही बहुत जटिल। बहुत आसान इसलिए नहीं बनाया, ताकि कोई निरंकुश सत्ता तीव्रता से इसे अपने अनुकूल संशोधित न कर ले। बहुत जटिल इसलिए नहीं बनाया, ताकि समय के साथ बदलते आर्थिक-सामाजिक परिवेश में नई अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए इसमें वांछित परिवर्तन किए जा सके।

❒ दोनों सदनों की संयुक्त बैठक (Joint Sitting of both houses)

संविधान में संयुक्त बैठक का प्रावधान अनुच्छेद 108 में उल्लेखित है। संयुक्त बैठक राष्ट्रपति तब बुलाई जाती है, जब संसद के दोनों सदनों के मध्य किसी विधेयक को लेकर गतिरोध उत्पन्न हो जाए। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि संयुक्त बैठक केवल साधारण विधेयक और वित्त विधेयक के संबंध में ही बुलाई जा सकती है। धन विधेयक व संविधान संशोधन विधेयक के संबंध में संयुक्त बैठक का कोई प्रावधान नहीं है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

संयुक्त बैठक की कार्यवाहियों का संचालन और उसकी अध्यक्षता लोकसभा अध्यक्ष द्वारा की जाती है। यदि लोकसभा अध्यक्ष किसी कारणवश अनुपस्थित हो, तो लोकसभा का उपाध्यक्ष उसकी अध्यक्षता करता है। यदि उपाध्यक्ष भी अनुपस्थित है, तो राज्यसभा का उपसभापति इसकी अध्यक्षता करता है और यदि वह भी उपस्थित न हो, तो उपस्थित सदस्यों द्वारा निर्णय किया जाता है कि बैठक की अध्यक्षता कौन करेगा। ध्यातव्य है कि राज्यसभा का सभापति इसकी अध्यक्षता कभी नहीं करेगा, क्योंकि वह किसी भी सदन का सदस्य नहीं होता है। संयुक्त बैठक की कार्यवाही लोकसभा के नियमों के अनुसार संचालित होती हैं और इसके लिए भी गणपूर्ति 1/10 ही होगी। यदि विधेयक दोनों सदनों के उपस्थित व मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से पारित हो जाता है, तो विधेयक को दोनों सदनों द्वारा पारित मान लिया जाता है।

देश के संसदीय इतिहास में अब तक केवल 3 बार किसी विवादित विधेयक को पारित करवाने के लिए संसद का संयुक्त अधिवेशन बुलाया गया है। पहली बार 1961 ई. में प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के काल में दहेज विरोधी अधिनियम को पारित करवाने के लिए, दूसरी बार 1978 ई. में मुरारजी देसाई के काल में बैंकिंग सेवा आयोग विधेयक पर तथा तीसरी बार 2002 ई. में अटल बिहारी वाजपेयी के काल में आतंकवादी निवारक अध्यादेश (पोटा) को पारित करवाने के उद्देश्य से।

संसद के सत्र, सत्रावसान तथा विघटन लोकसभा
Parliament's Sessions, Prorogation and Dissolution of Lok sabha

❐ संसद के सत्र (Sessions of Parliament)

राष्ट्रपति समय-समय पर संसद के प्रत्येक सदन को ऐसे समय और स्थान पर जैसा वह उचित समझे अधिवेशन के लिए आहूत करेगा। किन्तु शर्त यह है कि उसके एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के मध्य 6 माह से अधिक का अन्तर नहीं होना चाहिए। इस प्रकार एक वर्ष में 2 बार संसद का अधिवेशन बुलाया जाना अवश्यक है। सामान्यत: वर्ष में 3 सत्र होते हैं -

1) बजट सत्र। **2)** मानसून सत्र। **3)** शीतकालीन सत्र।

लोकसभा के प्रत्येक आम चुनाव के पश्चात् प्रथम सत्र के आरंभ पर तथा प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के आरंभ में एक साथ आहूत दोनों सदनों को राष्ट्रपति संबोधित करता है। संसद को उसके बुलाए जाने के कारण को बताता है। राष्ट्रपति के अभिभाषण में सरकार की नीतियों एवं भावी कार्यक्रमों का संकेत होता है। यह राष्ट्रपति का व्यक्तिगत् अभिभाषण नहीं होता है, मंत्रिमण्डल इस अभिभाषण को तैयार करता है और राष्ट्रपति इसे संसद में पढ़ता है।

❐ संसद का स्थगन (Adjournment of Parliament)

स्थगन का तात्पर्य है - सदन के कामकाज को कुछ समय के लिए निलम्बित कर देना। यह निलम्बन कुछ घंटे, दिन या सप्ताह का हो सकता है। लोकसभा व राज्यसभा की दैनिक बैठकों को स्थगित करने की शक्ति उनके पीठासीन अधिकारी के पास होती है। स्थगन भी 2 प्रकार से हो सकता है - **1)** निश्चित काल के लिए स्थगन। **2)** अनिश्चित काल के लिए स्थगन।

निश्चितकालीन स्थगन कुछ घंटे, दिन या सप्ताह का हो सकता है, जो निश्चित समयावधि के लिए होता है। निश्चितकालीन स्थगन में पीठासीन अधिकारी समय पूर्व भी बैठक को बुला सकता है। जबकि अनिश्चितकालीन स्थगन में सदन को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया जाता है, अर्थात् - अब उन्हें पुन: किस दिन सत्र के लिए आहूत होना है, यह नहीं बताया जाता है। दूसरे शब्दों में अनिश्चितकालीन स्थगन की घोषणा के बाद राष्ट्रपति सत्रावसान करता है।

❐ संसद का सत्रावसान (Prorogation of Parliament)

किसी सत्र के समापन को सत्रावसान कहते हैं। जब पीठासीन अधिकारी सदन का सत्र पूर्ण होने पर अनिश्चित काल के लिए स्थगित करता है, तो उसके कुछ दिन पश्चात् ही राष्ट्रपति सत्र का अवसान कर देता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❐ लोकसभा का विघटन (Dissolution of Lok sabha)

सदन को भंग करने की क्रिया को विघटन कहते हैं। विघटन सदन की कालावधि को ही समाप्त कर देता है, जिसके बाद नई लोकसभा के निर्माण के लिए निर्वाचन आवश्यक हो जाता है। राज्यसभा का विघटन नहीं होता है। लोकसभा का विघटन करने की शक्ति राष्ट्रपति में निहित होती है। सत्रावसान व विघटन में अन्तर यह है कि सत्रावसान सदन के किसी विशेष सत्र को समाप्त करता है, जबकि विघटन उस सदन को समाप्त कर देता है। लोकसभा का विघटन 2 कारणों से होता है –

1) 5 वर्ष की सामान्य अवधि के समाप्त होने पर। **2)** जब राष्ट्रपति सदन को विघटित करने का निर्णय ले।

सामान्यत: राष्ट्रपति मत्रिपरिषद् के परामर्श से ही लोकसभा का विघटन करता है, किन्तु हर परिस्थिति में राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं है। जब मंत्रिपरिषद् को लोकसभा में बहुमत प्राप्त नहीं है अथवा वह लोकसभा में विश्वास मत में पराजित हो गई है, तो राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की परामर्श मानने के लिए बाध्य नहीं है। जब संसद का सत्रावसान होता है, तो विधेयक समाप्त नहीं होते हैं, किन्तु लोकसभा के विघटन से कुछ विधेयक समाप्त हो जाते हैं, जो निम्नलिखित हैं –

1) लोकसभा में लंबित (विचाराधीन) सभी विधेयक समाप्त हो जाते हैं। चाहे वह लोकसभा में लंबित (विचाराधीन) हो या राज्यसभा द्वारा पारित, किन्तु लोकसभा में लंबित हो, समाप्त हो जाते हैं।

2) लोकसभा से पारित विधेयक, किन्तु राज्यसभा में लंबित (विचाराधीन) सभी विधेयक समाप्त हो जाते हैं।

3) राज्यसभा में लंबित विधेयक, जिसे लोकसभा में पारित नहीं है, वह लोकसभा के विघटन पर समाप्त नहीं होता है।

4) ऐसा विधेयक, जो दोनों सदनों द्वारा पारित हो और राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए विचाराधीन हो, समाप्त नहीं होता है।

5) ऐसा विधेयक, जो दोनों सदनों में गतिरोध के कारण पारित न हुआ हो तथा राष्ट्रपति ने संयुक्त बैठक की घोषणा कर दी हो, तो वह विधेयक भी समाप्त नहीं होता है।

6) ऐसा विधेयक, जो दोनों सदनों द्वारा पारित हो, किन्तु राष्ट्रपति द्वारा पुनर्विचार के लिए लौटा दिया हो, समाप्त नहीं होता है।

❐ लेम डक सत्र (Lame Duck Session)

लेम डक सत्र का अर्थ है – नई लोकसभा के चुनाव के बाद पुरानी लोकसभा का अंतिम सत्र होता है। इस बैठक में जो सदस्य नई लोकसभा के लिए नहीं चुने जाते हैं, उन्हें लेम डक कहा जाता है।

❐ सदन में गणपूर्ति (कोरम – Quorum)

गणपूर्ति (कोरम) सदन की वह न्यूनतम संख्या है, जिनकी उपस्थिति से ही सदन की कार्यवाही प्रारंभ हो सकेगी। यह प्रत्येक सदन में पीठासीन अधिकारी सहित कुल सदस्यों का 1/10 होना चाहिए। यदि किसी समय गणपूर्ति नहीं होती है, तो अध्यक्ष या सभापति का यह कर्तव्य है कि वह सदन की कार्यवाही को स्थगित कर दें।

❐ सदन में मतदान (Voting in House)

किसी भी सदन में किसी भी मामले पर उपस्थित सदस्यों के बहुमत से निर्णय लिया जाता है। अध्यक्ष या सभापति प्रथमत: मतदान नहीं करेगा, किन्तु बराबर की स्थिति में उसे निर्णायक मत (Casting Vote) देने का अधिकार होगा।

❐ संसद में भाषा (Language in Parliament)

संविधान के अनुसार संसद में कार्य हिन्दी या अंग्रेजी भाषा में किया जाएगा। परन्तु सभापति या अध्यक्ष किसी सदस्य को अपनी मातृभाषा में बोलने का अधिकार दे सकता है। दोनों ही सदनों में समानान्तर रूप से अनुवाद की व्यवस्था है। वस्तुत: अंग्रेजी का प्रावधान केवल 15 वर्षों के लिए किया गया था, अर्थात् – 26 जनवरी, 1965 ई. के बाद संसद के कार्य केवल हिन्दी भाषा में होने थे, किन्तु देश की अहिन्दी भाषीय जनता के विरोध को देखते हुए राजभाषा अधिनियम, 1963 के द्वारा संसद ने हिन्दी के साथ अंग्रेजी की संवैधानिक स्थिति को अनिश्चितकाल के लिए मान्यता प्रदान कर दी।

❐ संसद का सचिवालय (Secretariat of Parliament)

संसद के दोनों सदनों के लिए अलग-अलग सचिवालय होते हैं। जरूरत पड़ने पर दोनों सदनों के लिए सम्मिलित सचिवीय पदों

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

का भी सृजन किया जा सकता है। संसद के प्रत्येक सदन के सचिवीय कर्मचारी की नियुक्ति एवं सेवा शर्तों का विनियम (Regulation) संसद के द्वारा किया जाता है (अनुच्छेद 98)।

- **महासचिव (Secretary General)**

महासचिव संसद के प्रत्येक सदन के सचिवालय का सर्वोच्च एवं स्थायी अधिकारी होता है। महासचिव प्राय: राजनीति से जुड़ा कोई व्यक्ति नहीं होता है। उसे उन अधिकारियों में से चुना जाता है, जिन्हें सदन के सचिवालय में कार्य करने का व्यापक अनुभव होता है। इसे चुनने और नियुक्त करने का अधिकार सदन के पीठासीन अधिकारी (अध्यक्ष/सभापति) को होता है। एक बार नियुक्त होने के बाद वह 60 वर्ष की उम्र तक अपने पद पर बना रह सकता है।

महासचिव सभी संसदीय कार्यों एवं प्रक्रिया तथा नियम संबंधी मामलों में पीठासीन अधिकारी, सदन एवं सदस्यों को सलाह देता है। वह संसद के परिसर की सुरक्षा का सर्वोच्च प्रभारी अधिकारी होता है। संसद ग्रन्थालय, शोध, संदर्भ, प्रलेखन और सूचना सेवाएं इसी के अधीन कार्य करती हैं। वह संसद के संग्रहालय एवं अइभलेखागार का सर्वोच्च अधिकारी होता है। वह विधायी सेवाओं का प्रमुख अधिकारी होता है। वह सदन का जर्नल एवं कार्यवाही सारांश तैयार करता है तथा पीठासीन अधिकारी की ओर से सदन के सदस्यों एवं अन्य लोगों के साथ पत्र-व्यवहार करता है। वह दर्शक-दीर्घाओं एवं प्रेस-दीर्घाओं के लिए प्रवेश-पत्र जारी करता है। महासचिव अपने कृत्यों के लिए सदन के पीठासीन अधिकारी के प्रति उत्तरदायी होता है।

❒ संसद की प्रक्रिया के नियम (Rules of Procedure of Parliament)

संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए संसद का प्रत्येक सदन अपनी प्रक्रिया और अपने कार्य संचालन के लिए नियम बना सकता है। संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठकों एवं उनमें आपसी संचार से संबंधित प्रक्रिया के नियम राष्ट्रपति द्वारा सभापित व अध्यक्ष से परामर्श के बाद बनाए जाएंगे।

❒ सदन के प्रमुख नेता

संसद के प्रत्येक सदन में पीठासीन अधिकारी के अलावा कुछ अन्य महत्वपूर्ण सदस्य भी होते हैं, जो निम्नलिखित हैं -

1) **सदन का नेता (Leader of the House)** - संविधान में इसकी चर्चा नहीं की गई है, किन्तु लोकसभा के नियमों के अनुसार सदन के नेता का अर्थ है - प्रधानमंत्री। उसे सदन का नेता इसलिए कहा जाता है, क्योंकि वह सदन में बहुमत प्राप्त दल का नेता होता है। यदि प्रधानमंत्री राज्यसभा का सदस्य है, तो प्रधानमंत्री अपनी मंत्रिपरिषद् के किसी मंत्री को (जो लोकसभा सदस्य है) सदन का नेता मनोनीत करता है। राज्यसभा में राज्यसभा में एक सदन का नेता होता है, जो या तो प्रधानमंत्री या मंत्रिपरिषद का कोई मंत्री होता है।

2) **विपक्ष का नेता (Leader of the Opposition)** - संसद के प्रत्येक सदन में एक विपक्ष का नेता होता है। प्रारंभ में विपक्ष के नेता को कोई विशेष मान्यता प्राप्त नहीं थी। किन्तु 1977 ई. से दोनों सदनों में नेता विपक्ष को वैधानिक मान्यता प्रदान की गई। वर्तमान में विपक्ष के नेता को कैबिनेट मंत्री का दर्जा प्राप्त होता है। उल्लेखनीय है कि विपेक्ष के नेता का दर्जा तभी मिलता है, जब विपक्ष में सबसे बड़े दल के सदस्यों की संख्या कुल सदस्यों के 10 प्रतिशत या उससे अधिक हो।

3) **सचेतक (Whip)** - संसदीय दल का संचेतक वह होता है, जो अपने दल के सदस्यों को महत्वपूर्ण प्रश्नों पर चर्चा के समय पर्याप्त संख्या में सदन में उपस्थित रहने तथा दल द्वारा निर्धारित आदेशों के अनुसार मतदान करने का निर्देश देता है। इसका मुख्य कार्य सदस्यों को अनुशासित रखते हुए अपने दल को मजबूती प्रदान करना है। लोकसभा तथा राज्यसभा में सत्तारूढ़ दल का मुख्य सचेतक संसदीय कार्यमंत्री होता है, जो सदन के नेता के प्रतिउत्तरदायी होती है।

भारत के संविधान में या संसद की प्रक्रिया संबंधी नियमों में या राजनीतिक दलों से संबंधित नियमों में सचेतक से संबंधित पद का कोई उल्लेख नहीं, लेकिन दलबदल निरोध अधिनियम लागू होने के बाद सचेतक की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है, क्योंकि सचेतक के निर्देशों का उल्लंघन करने पर दल की सदस्यता के साथ सदन की सदस्यता से भी वंचित किया जा सकता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

संसदीय कार्यवाही
Business of Parliament

जिस समय संसद का सत्र चल रहा होता है, तब उसका प्रत्येक कार्य दिवस एक अधिवेशन होता है। अधिवेशन को सामान्यत: 2 बैठकों में विभाजित किया जाता है - पहली बैठक सुबह 11 से 1 बजे तक तथा दूसरी बैठक दोपहर 2 बजे तब तक चलती है, जब तक पीठासीन अधिकारी उसे स्थगित न कर दे।

❐ प्रश्नकाल (Question hour)

संसद के कार्य दिवस का पहला घंटा प्रश्नकाल के लिए होता है। प्रश्नकाल के दौरान दोनों सदनों में सदस्यों द्वारा लोक महत्व के मामलों पर प्राय: मंत्री या सरकारी सदस्यों से प्रश्न पूंछे जाते हैं। प्रश्न गैर सरकारी सदस्यों से भी पूंछे जा सकते हैं। जब किसी सदस्य को प्रश्न पूंछना होता है, तो वह उस सदन के महासचिव को प्रश्न की सूचना देता है। जिस तिथि को वह प्रश्न का उत्तर सदन में जानना चाहता है, उस तिथि से कम से कम 10 दिन तथा अधिक से अधिक 21 दिन पूर्व इसकी सूचना महासचिव को देनी होती है। संसद में पुछे जाने वाले प्रश्नों को 3 श्रेणियों में बांटा गया है -

1) **तारांकित प्रश्न** (Starred Questions) - वे प्रश्न, जिनका उत्तर मंत्री द्वारा मौखिक रूप से दिया जाता है, उसे तारांकित प्रश्न कहते हैं। इन प्रश्नों के ऊपर तारा चिह्न लगाकर इसे सामान्य प्रश्न से अलग किया जाता है। इन प्रश्नों पर अनुपूरक प्रश्न पूंछने की अनुमति होती है।

2) **अतारांकित प्रश्न** (Unstarred Questions) - ऐसे प्रश्न, जिनका उत्तर लिखित रूप से दिया जाता है, अतारांकित प्रश्न कहलाते हैं। इनमें अनुपूरक प्रश्न पूंछने का अधिकार नहीं होता है।

3) **अल्पसूचना प्रश्न** (Short Notice Questions) - सदन में किसी प्रश्न का उत्तर जानने हेतु निर्धारित 10 दिनों की न्यूनतम अवधि से पहले प्रश्न का उत्तर मांगा जाए, तो इसे अल्पसूचना प्रश्न कहा जाता है। इसके तहत ऐसे प्रश्नों को शामिल किया जाता है, जो अत्यन्त जरूरी एवं लोक महत्व का होता है। अल्पसूचना प्रश्न का उत्तर मौखिक दिया जाता है।

❐ शून्यकाल (Zero hour)

शून्यकाल का उल्लेख न तो संविधान में है और न ही संसदीय प्रक्रिया के नियमों में। इस नाम का प्रचलन समाचार-पत्रों के माध्यम से तब हुआ, जब संसद में बिना पूर्व सूचना के अविलम्बनीय लोक महत्व के मुद्दों को उठाने की परम्परा विकसित हुई। 'शून्यकाल' नाम 2 कारणों से चर्चित हुआ - पहला, यह 12 बजे दिन से प्रारंभ होता है तथा दूसरा, इस काल के दौरान कौन-से मुद्दे उठाए जाएंगे इसके लिए कोई पूर्व निर्धारित योजना नहीं होती है। अर्थात् - यह काल अपने में शून्यता या खालीपन लिए होता है, जिसमें कोई भी मुद्दा सदस्यों द्वारा उठाया जा सकता है। शून्यकाल को एक अनियमितता के रूप में देखा गया है, क्योंकि इसमें मुद्दे बिना अनुमति के तथा बिना पूर्व सूचना के उठाए जाते हैं। इसी कारण सदन में उत्तेजना तथा अफरा-तफरी की स्थिति बन जाती है।

❐ आधे घंटे की चर्चा (Halfan hour discussion)

संसद के दोनों सदनों में ऐसे मुद्दों पर चर्चा के लिए आधे घंटे का समय निर्धारित किया गया है, जिससे जुड़े प्रश्नों का उत्तर सदन में दिया जा चुका है। ऐसी चर्चा का विषय लोक महत्व के किसी प्रश्न से जुड़ा होता है, जिसके उत्तर में किसी तथ्यात्मक मामले का स्पष्टीकरण करना आवश्यक होता है। यह विषय हाल के किसी तारांकित, अतारांकित व अल्पसूचना प्रश्न से संबंधित होता है। लोकसभा में आधे घंटे की चर्चा सप्ताह में 3 दिन (सोमवार, बुधवार व शुक्रवार) होती है।

❐ प्रस्ताव एवं संकल्प (Motions & Resolutions)

प्रस्ताव सदन के भीतर किसी सदस्य द्वारा प्रस्तुत कोई जानकारी या मत होता है, जिससे सहमति या असहमति जताकर पूरा सदन अपनी राय व्यक्त करता है। दूसरे शब्दों में प्रस्ताव किसी सदस्य का सदन के समक्ष रखा गया सुझाव है, जिस पर सदन अपना फैसला सुनाती है। कोई प्रस्ताव यदि सदन द्वारा पारित या स्वीकृत हो जाता है, तो वह पूरे सदन की राय मानी जाती है। प्रस्ताव सरकार के मंत्री या गैर-सरकारी सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

संकल्प भी प्रस्ताव का ही एक प्रकार होता है। किसी भी सदन के भीतर लोक महत्व के मामले को उठाने के लिए अपनाए जाने वाले प्रक्रियागत उपाय को संकल्प कहा जाता है। संकल्प दोनों सदनों के भीतर प्राय: राय या सिफारिश के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं। संकल्प व प्रस्ताव में सूक्ष्म अन्तर है और यह भेद विषयवस्तु से नहीं, वरन प्रक्रिया से जुड़ा है। संकल्प के द्वारा सदन देश की किसी विशेष समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट करता है और उसे दूर करने का आग्रह करता है।

- **सदन में लाए जाने वाले प्रमुख प्रस्ताव**

➢ **अविश्वास प्रस्ताव (No Confidence Motion)** – संविधान के अनुच्छेद 75 के अनुसार मंत्रिपरिषद् लोकसभा के प्रति सामूहिक उत्तरदायी होगी। इसका तात्पर्य है कि मंत्रिपरिषद् तब तक सत्ता में रहती है, जब तक उसे लोकसभा का विश्वास प्राप्त होता है। यदि सरकार के किसी मंत्री के कार्य से लोकसभा संतुष्ट नहीं होगी, तो वह सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद् को हटाने के लिए लोकसभा में प्रस्ताव ला सकती है, जिसे अविश्वास प्रस्ताव कहा जाता है। यह प्रस्ताव केवल लोकसभा में ही लाया जा सकता है तथा लोकसभा के नियम 198 के अन्तर्गत इसकी प्रक्रिया बताई गई है। यह विपक्ष के सदस्य द्वारा ही लाया जा सकता है। सरकार के विरुद्ध अविश्वास लाने के लिए कारण बताने की जरूरत नहीं होती है। यह प्रस्ताव तभी लाया जा सकता है, जब लोकसभा के कम से कम 50 सदस्य अपनी सहमति दे। यदि यह प्रस्ताव पारित हो जाता है, तो मंत्रिपरिषद् को त्यागपत्र देना होता है।

➢ **विश्वास प्रस्ताव (Confidence Motion)** – विश्वास प्रस्ताव का लोकसभा की प्रक्रिया संबंधी नियमों में कोई प्रावधान नहीं है। किन्तु इस प्रस्ताव लाने का आशय यह है कि मंत्रिपरिषद् को लोकसभा में विश्वास प्राप्त है। अविश्वास प्रस्ताव जहां विपक्ष द्वारा लाया जाता है, वहीं विश्वास प्रस्ताव सरकारी की ओर से लाया जाता है। यदि सरकार को समर्थन देने वाले दल के द्वारा उसकी नीतियों की आलोचना की जाती है, या उससे अलग होने की घोषणा करता है, तो राष्ट्रपति यह जांच कर सकता है कि सरकार को लोकसभा में बहुमत प्राप्त है की नहीं। यदि लोकसभा मंत्रिपरिषद् द्वारा पेश किए गए किसी प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है, तो मंत्रिपरिषद् को त्यागपत्र देना पड़ता है।

➢ **ध्यानाकर्षण प्रस्ताव (Callinge Attention Motion)** – संसदीय प्रक्रिया में ध्यानाकर्षण का प्रावधान सबसे पहली बार 1994 में किया गया। इस प्रस्ताव के माध्यम से सदन का कोई सदस्य पीठासीन अधिकारी की अनुमति से अविलम्बनीय लोक महत्व के किसी मामले की ओर संबंधित मंत्री का ध्यान आकृष्ट करता है तथा उसके स्पष्टीकरण की मांग करता है। इस प्रस्ताव के माध्यम से संबंधित मंत्री से भी यह अपेक्षा की जाती है कि वह उस मुद्दे पर तुरन्त स्पष्टीकरण दे या कुछ समय की मांग कर सकता है।

➢ **निन्दा प्रस्ताव (Censure Motion)** – निन्दा प्रस्ताव भी अविश्वास प्रस्ताव की तरह लोकसभा में ही लाया जा सकता है तथा इसे विपक्ष के किसी सदस्य द्वारा ही पेश किया जाता है। यह सरकार के किसी एक मंत्री या मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध इस उद्देश्य लाया जाता है कि उसके कुछ कार्य एवं नीतियों के प्रति असहमति प्रदर्शित की जा सके। उल्लेखनीय है कि अविश्वास प्रस्ताव को पेश करते समय कारण बताने की जरूरत नहीं होती है, जबकि निन्दा प्रस्ताव में उन कारणों और आरोपों का उल्लेख किया जाता है, जिसके लिए निन्दा प्रस्ताव लाया गया है। दूसरा अविश्वास प्रस्ताव किसी एक मंत्री के विरुद्ध न लाकर पूरे मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध लाया जाता है, जबकि निन्दा प्रस्ताव किसी एक मंत्री या कुछ मंत्रियों के विरुद्ध भी लाया जा सकता है। यदि यह प्रस्ताव लोकसभा में पारित हो जाता है, तो मंत्रिपरिषद् के लिए इस्तीफा देना जरूरी नहीं होता है, लेकिन उस पर यह दबाव आ जाता है कि वह जल्द से जल्द लोकसभा में अपना बहुमत सिद्ध करें।

➢ **विशेषाधिकार प्रस्ताव (Privilege Motion)** – यह प्रस्ताव विपक्ष के किसी सदस्य द्वारा सदन में लाया जाता है, जब उसे ऐसा लगता है कि किसी मंत्री या मंत्रिपरिषद् ने संसदीय विशेषाधिकारों का उल्लंघन किया है। यदि मंत्री ने सही तथ्यों को छुपाया हो या सदन को गलत सूचना दी हो, तो मंत्री के इस व्यवहार की निन्दा करने के उद्देश्य से यह प्रस्ताव लाया जाता है। यह लोकसभा और राज्यसभा किसी भी सदन में लाया जा सकता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **स्थगन प्रस्ताव (Adjournment Motion)** – यह प्रस्ताव पेश करने का मुख्य उद्देश्य किसी अविलम्बनीय लोक महत्व के मामले की ओर सदन का ध्यान आकर्षित करना है। यदि यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है, तब सदन की नियमित कार्यवाही रोक दी जाती है। इस प्रस्ताव के लिए कम से कम 50 सदस्यों का समर्थन आवश्यक है। यह लोकसभा एवं राज्यसभा दोनों में पेश किया जा सकता है, साथ ही कोई भी सदस्य पेश कर सकता है। इस प्रस्ताव पर कम से कम ढाई घंटे की चर्चा होती है। इस प्रस्ताव को पेश करने के लिए निम्नलिखित तत्व आवश्यक होने चाहिए –
  1) मामले का स्वरूप निश्चित हो,
  2) मामले का आधार तथ्यात्मक हो,
  3) मामले में विलम्ब किया जाना उचित न हो,
  4) मामला लोक महत्व का हो।
- **धन्यवाद प्रस्ताव (Motion of Thanks)** – संसदीय प्रणाली में आम चुनाव के पश्चात् जब नई सरकार स्थापित होती है, तब राष्ट्रपति संसद में अभिभाषण देता है, जिसमें वह सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों का सांकेतिक उल्लेख करता है। सरकार की ओर से उसके बाद राष्ट्रपति के प्रति धन्यवाद प्रदान करने के लिए धन्यवाद प्रस्ताव लाया जाता है। इस प्रस्ताव के पारित होने का यह अर्थ लगाया जाता है कि सरकार की नीतियों में सदन का विश्वास है। इस प्रस्ताव के पारित न होने का अर्थ है कि सरकार ने अपना बहुमत खो दिया है।
- **औचित्य प्रश्न (Point of Order)** – यदि सदन की कार्यवाही के संचालन में सामान्य नियमों का पालन नहीं किया जाता है, तो कोई सदस्य औचित्य प्रश्न के माध्यम से सदन का ध्यान इस ओर आकर्षित कर सकता है। यह सामान्यत: विपक्षीय सदस्य द्वारा सरकार पर नियंत्रण के लिए लाया जाता है।
- **नियम 377 (Rule 377)** – सदन की कार्यवाहियां नियमों के अनुसार चलती हैं। सदन के नियमों के अनुरूप ही वहां कोई मामला उठाया जाता है या प्रस्ताव पेश किया जाता है। कई बार कुछ ऐसे संवेदनशील मामले होते हैं, जो प्रश्नकाल, अल्पकालीन चर्चा, स्थगन प्रस्ताव या अन्य किसी प्रस्ताव में नहीं उठाए जा सकते हैं। लेकिन किसी सदस्य के निर्वाचन क्षेत्र से जुड़ा कोई गंभीर एवं अविलम्बनीय महत्व का मुद्दा हो सकता है। ऐसे मुद्दे लोकसभा के नियम 377 के अधीन उठाए जा सकते हैं। इस तरह के मामलों को राज्यसभा में '**विशेष उल्लेख**' (Special Mention) के तहत् उठाया जाता है।
- **कटौती प्रस्ताव (Cut Motion)** – सरकार द्वारा पेश किए गए बजट मांगों के किसी प्रकार की कटौती के लिए लाए गए सहायक प्रस्ताव को कटौती प्रस्ताव कहा जाता है। लोकसभाध्यक्ष की स्वीकृति से ही कटौती प्रस्ताव सदन के पटल पर रखा जाता है। कटौती प्रस्ताव 3 प्रकार के होते हैं –
  1) **नीति निरनुमोदन कटौती (Disapproval of Policy Cut)** – निरनुमोदन का अर्थ है स्वीकृति न देना। जब लोकसभा का कोई सदस्य सरकार की किसी विशेष मांग से जुड़ी मूल नीति का विरोध करना चाहता है तो वह सदन में नीति निरनुमोदन कटौती प्रस्ताव पेश करता है। इस प्रस्ताव में कहा जाता है कि मांग की राशि घटाकर 1 रुपया कर दी जाए। यह सबसे प्रभावी कटौती प्रस्ताव माना जाता है। जो सदस्य यह प्रस्ताव लाता है उसे स्पष्ट रूप में यह बताना होता है कि वह किस नीति के ऊपर बहस करना चाहता है।
  2) **मितव्ययता कटौती प्रस्ताव (Economy Cut)** – इसमें सरकार के खर्च में कमी लाने के लिए बजट मांगों में एक निश्चित धनराशि की कटौती का प्रस्ताव रखा जाता है।
  3) **सांकेतिक कटौती प्रस्ताव (Token Cut)** – इस प्रकार की कटौती प्रस्ताव के तहत मांग की राशि में 100 रुपए की कमी का प्रस्ताव रखा जाता है। इसके द्वारा सरकार के प्रति किसी विशिष्ट मुद्दे पर शिकायत व्यक्त की जाती है। बहस उसी मुद्दे तक सीमित रहती है, जिसे प्रस्ताव में उठाया गया है। इस कटौती प्रस्ताव का प्रयोग सबसे अधिक किया जाता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **समापन प्रस्ताव (Closure Motion)** – सदन के किसी सदस्य द्वारा सदन में जारी बहस को समाप्त करने के लिए लाया गया प्रस्ताव ही समापन प्रस्ताव है। यदि यह प्रस्ताव पारित हो जाता है, तो चर्चा को बीच में रोककर संबंधित विषय पर मतदान करा लिया जाता है।
- **नियम 184 (Rule 184)** – संसद के नियम 184 के तहत् आम जनहित के मामलों पर बहस की जाती है। महत्वपूर्ण यह है कि इस नियम के तहत् बहस के बाद मतदान होता है। यदि सरकार के पक्ष में कम मत पड़े तो सरकार गिरने का खतरा होता है।

संसदीय समितियां
Parliamentry Committees

संसद देश की सर्वोच्च विधायी संस्था है, जिसका प्रमुख कार्य देश के लिए कानून बनाना है। उसे कानून बनाने के अलावा भी कई प्रकार के कार्य करने होते हैं, परिणामस्वरूप कार्य का अत्यधिक बोझ होता है। उसके कार्य की प्रकृति भी अत्यन्त विस्तृत, जटिल एवं व्यापक है। इसके अलावा संसद के पास पर्याप्त समय भी नहीं होता है कि वह जरूरी विषयों या मुद्दों पर चर्चा करवा सके। अत: इन समस्याओं को दूर करने के लिए ही विभिन्न संसदीय समितियों का गठन किया जाता है। इसके अन्तर्गत संसद के कुछ सदस्यों से मिलकर समितियां बनाई जाती हैं और यह विभिन्न वैधानिक विषयों तथा अन्य मामलों पर गहन विचार-विमर्श करती हैं। इन संसदीय समितियों के माध्यम से सभी सांसदों को संसदीय कार्यों में भाग लेने का अवसर मिलता है।

भारत में इनका विकास मॉन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड द्वारा किए गए सुधारों के परिणामस्वरूप हुआ था। हालांकि उस समय समितियों को इतनी स्वतंत्रता नहीं थी, जितनी वर्तमान में है। भारतीय संविधान के प्रवर्तन के बाद संसदीय समितियां कुछ हद तक लघु संसद के रूप में कार्य करती हैं। संसदीय समितियों का गठन संसद द्वारा निर्मित प्रक्रिया तथा कार्य संचालन के नियमों के अधीन किया जाता है। सामान्य तौर पर हमें यह लगता है कि संसद से बनी समिति को संसदीय समिति कहते हैं, लेकिन यह जरूरी नहीं है। संसदीय समिति वह है, जो –

1) संसद के किसी सदन द्वारा नियुक्त या निर्वाचित की जाए अथवा सदन के पीठासीन अधिकारी (अध्यक्ष/सभापति) द्वारा मनोनीत की जाए,
2) अध्यक्ष/सभापति के निर्देश के अनुसार कार्य करे,
3) अपना प्रतिवेदन (रिपोर्ट) सदन को या उसके पीठासीन अधिकारी को प्रस्तुत करे,
4) लोकसभा अथवा राज्यसभा सचिवालय द्वारा उपलब्ध कराए गए कर्मचारियों की सहायता से कार्य करे,

यदि कोई समिति उपर्युक्त चारों शर्तों को पूरा करती है, तो वह संसदीय समिति कहलाती है, भले ही उस समिति में एक भी संसद सदस्य शामिल नहीं हो। परामर्शदाता समितियां पूर्णत: संसद सदस्यों से बनती हैं, लेकिन उनकी नियुक्ति न तो सदन या पीठासीन अधिकारी द्वारा की जाती है और न ही वह पीठासीन अधिकारी को अपनी रिपोर्ट सौंपती है, इसलिए वह संसदीय समिति नहीं कहलाती है। संसदीय समिति के गठन के निम्नलिखित लाभ हैं –

1) यह संसद के समय को बचाते हुए किसी मामले की विस्तृत जांच करती है।
2) इसके तहत किसी मामले की गहन छानबीन विशेषज्ञ व्यक्तियों द्वारा कारवाई जा सकती है।
3) ऐसी समितियां चूंकि प्रचार तंत्र से दूर रहकर कार्य करती है, अत: यहां दलगत राजनीति हावी नहीं होती है। विपक्ष के सदस्य के रचनात्मक सुझाव सदस्यों द्वारा आसानी से मान लिए जाते हैं।
4) कुछ समितियां ऐसी होती हैं, जो सरकार को सदा सतर्क करती है एवं उन्हें मनमानी करने से रोकती हैं। इस प्रकार वे विपक्ष की भूमिका में नजर आती हैं।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❐ समितियों का गठन व कार्य-पद्धति (Establishment & Parocedure of Committees)

1) संसदीय समितियों का गठन या तो लोकसभा के सदस्यों द्वारा या राज्यसभा के सदस्यों द्वारा या दोनों सदनों के सदस्यों से मिलकर होता है।

2) समिति में सदस्यों का निर्धारण आनुपातिक प्रतिनिधित्व एकल संक्रमणीय मतदान से होता है या फिर अध्यक्ष या सभापित द्वारा उसका मनोनयन होता है।

3) समिति की कार्यवाही के लिए कम से कम एक तिहाई (1/3) सदस्यों की सहमति आवश्यक होती है।

4) समिति में विचाराधीन प्रत्येक प्रश्न पर बहुमत से निर्णय लिए जाते हैं और यदि मत बराबर पड़ जाए, तो समिति का अध्यक्ष निर्णायक मत डालता है।

5) समितियों की सभी बैठकें गोपनीय होती हैं, उनकी कार्यवाही और रिपोर्ट तब गोपनीय रखी जाती हैं, जब तक वह सदन में पेश नहीं कर दी जाए।

❐ समितियों के प्रकार (Types of Committees)

संसदीय समितियों को 2 भागों में बांटा जा सकता है - स्थायी समिति और तदर्थ समिति।

- **स्थायी समितियां (Standing of Committees)**

स्थायी समितियां वे समितियां हैं, जो प्रत्येक वर्ष या समय-समय पर नियमित रूप से सदन द्वारा निर्वाचित या अध्यक्ष अथवा सभापति द्वारा मनोनीत की जाती है। ऐसी समितियां स्थायी प्रकृति की होती हैं। स्थायी समितियों को उसके कृत्यों के आधार पर निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है -

- **तदर्थ समितियां (Ad-hoc Committees)**

तदर्थ समितियां वे समितियां हैं, जो अस्थायी स्वरूप की होती हैं तथा किसी विशेष प्रयोजन के लिए निर्धारित समयावधि के लिए बनाई जाती है। अध्यक्ष या सभापति को रिपोर्ट सौंपने के बाद इन समितियों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। सामान्यत: यह 2 प्रकार की होती हैं - जांच समिति और सलाहकार समिति।

जांच समितियों का गठन किसी तात्कालिक घटना की जांच के लिए किया जाता है। उदाहरणार्थ - कारगिल जांच के लिए बनी सुब्रमण्यम समिति। सलाहकार समितियां वे हैं, जिन्हें किसी विधेयक इत्यादि पर विचार करने के लिए गठित किया जाता है। यह 2 प्रकार की होती है - प्रवर समिति और संयुक्त समिति।

➢ **वित्तीय समितियां (Financial Committees)** - संसद की वित्तीय समितियां निम्नलिखित हैं -

1) **प्राक्कलन समिति (Estimates Committee)** - इस समिति में लोकसभा के 30 सदस्य होते हैं और इसमें राज्यसभा के सदस्यों को शामिल नहीं किया जाता। इस समिति को स्थायी मितव्ययिता समिति भी कहा जाता है। यह समिति सरकारी अपव्यय को रोकने की सिफारिश करती है। समिति के सदस्यों का चुनाव प्रत्येक वर्ष आनुपतिक प्रतिनिधित्व के अनुसार एकल संक्रमणीय मत के माध्यम से एक वर्ष के लिए किया जाता है। कोई भी मंत्री इसका सदस्य नहीं हो

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

सकता है। इस समिति के निम्नलिखित कार्य हैं –

i) बजट अनुमानों की जांच कर यह बताना कि क्या उसमें शामिल नीति से मितव्ययिता, संगठन में सुधार, कार्य कुशलता या प्रशासनिक सुधार किए जा सकते हैं।

ii) वह यह सिफारिश करे कि प्रशासन में कुशलता एवं मितव्ययिता लाने के लिए किसी वैकल्पिक नीति को स्वीकार किया जा सकता है।

iii) वह यह जांच करे कि क्या बजट अनुमानों में शामिल नीति की सीमाओं में रहकर धन ठीक ढंग से लगाया गया है।

iv) वह यह सिफारिश करे कि संसद के समक्ष बजट अनुमान किस रूप में पेश किए जाए।

2) सरकारी उपक्रमों सम्बन्धी समिति (Committee on public undertaking) – इस समिति का गठन 22 सदस्यों द्वारा किया जाता है, जिनमें से 15 लोकसभा से तथा 7 राज्यसभा से निर्वाचित होते हैं। समिति का अध्यक्ष लोकसभा के सदस्यों में से लोकसभा अध्यक्ष द्वारा नियुक्त किया जाता है। कोई भी मंत्री इस समिति का सदस्य नहीं हो सकता है। इस समिति के निम्नलिखित कार्य हैं –

i) सरकारी उपक्रमों के प्रतिवेदनों और लेखाओं की और उन पर नियंत्रक–महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदनों की जांच करना।

ii) सरकारी उपक्रमों की स्वायतत्ता और कार्यकुशलता के सन्दर्भ में यह जांच करना कि क्या सरकारी उपक्रमों के कार्य व्यापार सिद्धान्तों और विवेकपूर्ण वाणिज्यिक प्रथाओं के अनुसार चलाए जाते हैं।

iii) ऐसे विषयों की जांच करना, जो सदन या अध्यक्ष द्वारा निर्दिष्ट किए जाए।

3) लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) – यह संसद की सबसे महत्वपूर्ण समिति मानी जाती है। इसे प्राक्कलन समिति की जुंड़वा बहन के रूप में भी जाना जाता है। इस समिति में 22 सदस्य होते हैं, जिनमें से 15 सदस्य लोकसभा के सदस्यों द्वारा तथा 7 सदस्य राज्यसभा के सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं। 1967 ई. से स्थापित प्रथा के अनुसार इस समिति के अध्यक्ष के रूप में विपक्ष के किसी सदस्य को नियुक्त किया जाता है। कोई भी मंत्री इस समिति का सदस्य नहीं हो सकता है। इस समिति के निम्नलिखित कार्य हैं –

i) भारत के नियंत्रक–महालेखा परीक्षक द्वारा दी गई लेखा परीक्षण सम्बन्धी प्रतिवेदनों की जांच करना।

ii) भारत सरकार के व्यय के लिए सदन द्वारा प्रदान की गई राशियों का विनियोग दर्शाने वाले लेखाओं की जांच करना। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना होता है कि क्या धन संसद द्वारा प्राधिकृत रूप से खर्च किया गया है और उसी प्रयोजन के लिए खर्च किया गया है, जिस प्रयोजन के लिए दिया गया था।

iii) यदि किसी वित्तीय वर्ष के दौरान किसी सेवा पर उसके प्रयोजन के लिए सदन द्वारा प्रदान की गई धनराशि से अतिरिक्त धनराशि को व्यय किया गया हो, तो समिति उन परिस्थितियों की जांच करती है, जिनके कारण ऐसा अतिरिक्त व्यय करना पड़ा है और इस सम्बन्ध में ऐसी सिफारिश करती है, जिसे वह उचित समझे।

iv) समिति राष्ट्र के वित्तीय मामलों के संचालन में अपव्यय, भ्रष्टाचार अकुशलता या कार्य–चालन में कमी के किसी प्रमाण की भी खोज करती है।

- **विभागीय समिति (Departmental Committee)** – लोकसभा की नियम समिति की अनुशंसा पर संसद में 1993 ई. में पहली बार 17 विभागीय स्थायी समितियों की स्थापना की गई थीं। इसका मुख्य उद्देश्य कार्यपालिका पर संसदीय नियंत्रण को प्रभावी बनाना है, विशेषकर वित्तीय दायित्व को। ये समितियां बजट पर अधिक सार्थक चर्चा करवाने में सहायक होती हैं। वर्तमान में 24 विभागीय समितियां हैं। इनमें से 16 समितियां लोकसभा के तथा 8 समितियां राज्यसभा के अधीन कार्य करती हैं। लोकसभा के अधीन काम करने वाली समितियों के अध्यक्ष की नियुक्ति लोकसभा अध्यक्ष करता है, जबकि राज्यसभा से जुड़ी समितियों की अध्यक्षों की नियुक्ति सभापति करता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

प्रत्येक समिति में अधिकतम में 45 सदस्य हो सकते हैं। लोकसभा का अध्यक्ष प्रत्येक समिति के लिए 30 सदस्य मनोनीत करता है, जबकि राज्यसभा का सभापति 15 सदस्य मनोनीत करता है। इसका कार्यकाल 1 वर्ष होता है तथा किसी भी मंत्री को इसका सदस्य नहीं बनाया जा सकता है। इन विभागीय समितियों के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं –

1) संबंधित मंत्रालय/विभाग के विधेयकों की जांच-परख करना तथा अपनी रिपोर्ट देना।
2) संबंधित मंत्रालय/विभाग के वार्षिक प्रतिवेदन की जांच करना तथा उसके संबंध में अपनी रिपोर्ट देना।
3) संबंधित मंत्रालय/विभाग के अनुदान की मांगों को लोकसभा में मतदान के लिए पेश करने से पहले जांचना।
4) सदन में पेश किए गए राष्ट्रीय आधारभूत दीर्घकालीन नीतिगत दस्तावेजों पर विचार करना तथा अपनी रिपोर्ट देना।

- **संदन संबंधी समिति (House Committee)** – इससे जुड़ी 2 समितियां महत्वपूर्ण हैं, जो निम्नलिखित हैं –

1) **कार्य मंत्रणा समिति (Business Advisory Committee)** – संसद के प्रत्येक सदन में एक कार्य मंत्रणा समिति होती है। लोकसभा की कार्य मंत्रणा समिति में अध्यक्ष सहित 15 सदस्य होते हैं। लोकसभाध्यक्ष समिति का पदेन सभापति होता है। राज्यसभा का सभापति समिति का पदेन सभापति होता है। समिति के सदस्यों का मनोनयन अध्यक्ष/सभापति के द्वारा किया जाता है। समिति का कार्य यह सिफारिश करना है कि सरकार द्वारा लाए जाने वाले विधायी तथा अन्य कार्यों को निपटाने के लिए कितना समय निश्चित किया जाए। राज्यसभा की कार्य मंत्रणा समिति यह भी सिफारिश करती है कि गैर-सरकारी सदस्यों के द्वारा पेश किए गए विधेयकों एवं संकल्पों पर चर्चा हेतु कितना समय नियत किया जाए। समिर्त किसी विशेष विषय पर सदन में चर्चा कराने के लिए खुद भी सरकार से सिफारिश कर सकती है।

2) **नियम समिति (Rules Committee)** – नियम समिति सदन की प्रक्रिया एवं कार्य संचालन से संबंधित नियमों पर विचार करती है तथा आवश्यक होने पर नियमों में संशोधन का सुझाव भी देती है। संसद के प्रत्येक सदन में एक नियम समिति का गठन किया गया है। लोकसभा की नियम समिति में अध्यक्ष सहित 15 सदस्य होते हैं। लोकसभाध्यक्ष ही समिति का पदेन सभापति होता है। राज्यसभा में सभापति और उपसभापति सहित 16 व्यक्ति इस समिति के सदस्य होते हैं। राज्यसभा का सभापति समिति का पदेन सभापति होता है।

- **मंत्रिमण्डलीय समिति (Cabinet Committee)** – मंत्रिमण्डलीय समितियां संसदीय समितियों से भिन्न होती हैं। यह प्रधानमंत्री द्वारा समय की मांग व स्थिति के अनुसार गठित की जाती है। अत: इनकी संरचना व नाम समय-समय पर भिन्न होती है। इसकी सदस्य संख्या 3 से लेकर 8 तक होती हैं। सामान्यत: इनमें 1 कैबिनेट मंत्री शामिल होता है। सामान्यत: इन समितियों की अध्यक्षता प्रधानमंत्री करता है, किन्तु कभी-कभी अन्य कैबिनेट मंत्री भी इसके अध्यक्ष के रूप में कार्य करते हैं। वस्तुत: यह कैबिनेट पर पड़ने वाले कार्य के दबाव को कम करने के लिए बनाई जाती है। इनके माध्यम से नीतिगत विषयों पर गहन अध्ययन और विचार-विमर्श होता है। इनके द्वारा लिए गए निर्णयों व सुझावों पर कैबिनेट समीक्षा करती है।

संसदीय विशेषाधिकार
Parliamentary Privileges

संसद के सदस्यों को अपने संसदीय कार्यों का ठीक ढंग से निर्वहन करने के लिए कुछ विशेष अधिकार दिए गए हैं, ताकि वह बिना किसी भय के स्वतंत्र व निष्पक्ष ढंग से कार्य कर सके। संविधान ने संसदीय अधिकार उन व्यक्तियों को भी दिए हैं, जो संसद के सदनों या इसकी किसी भी समिति में बोलते या भाग लेते हैं, जैसे – महान्यायवादी। संविधान के अनुच्छेद 105 में संसद सदस्यों के लिए तथा अनुच्छेद 194 में राज्य विधानमण्डलों में ऐसे अधिकारों का उल्लेख किया गया है। यहां उल्लेखनीय है कि राष्ट्रपति को यह अधिकार नहीं दिए गए हैं, जबकि वह संसद का अंग होता है। संसद के सदनों तथा सदस्यों के विशेषाधिकारों को 2 भागों में बांटा जा सकता है – व्यक्तिगत और सामूहिक विशेषाधिकार।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❒ व्यक्तिगत विशेषाधिकार (Individual Privileges)

1) **गिरफ्तारी से उन्मुक्ति** – किसी संसद के सदस्य को संसद के सत्र के दौरान या उससे 40 दिन पहले या 40 दिन बाद तक गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है। यह उन्मुक्ति सिविल मामलों में गिरफ्तारी तक ही सीमित है। आपराधिक मामलों में या निवारक निरोध के तहत उसकी गिरफ्तारी हो सकती है।

2) **साक्षी के रूप में हाजिर होने से उन्मुक्ति** – जब संसद का अधिवेशन चल रहा हो, तो सदन की अनुमति के बिना किसी सदस्य को सम्मन जारी (साक्ष्य के लिए बुलाना) नहीं किया जा सकता है।

3) **वाक्-स्वातंत्र्य से संबंधित उन्मुक्ति** – संसद के अंदर वाक्-स्वातंत्र्य सुनिश्चित किया गया है। इसका अर्थ यह नहीं कि सदस्य सदन की गरिमा की परवाह न करें। संसद की प्रक्रिया का संचालन करने वाले नियमों के अधीन वाक्-स्वातंत्र्य पर युक्ति-युक्त पाबंदी लगाई जा सकती है।

❒ सामूहिक विशेषाधिकार (Collective Privileges)

1) **कार्यवाही चलाने का अधिकार** – संसद के प्रत्येक सदन को यह अधिकार है कि वह अपनी कार्यवाहियों को अपने तरीके से चलाने और नियमित करे। यदि इससे संबंधित कोई प्रश्न उत्पन्न होता है, तो इसके संबंध में सदन का निर्णय अंतिम होता है।

2) **कार्यवाहियों के प्रकाशन का अधिकार** – संसद के प्रत्येक सदन को अपनी चर्चा तथा कार्यवाहियों को प्रकाशित करने या किसी अन्य व्यक्ति को प्रकाशित करने का अधिकार दे सकती है। साथ ही किसी को भी संसदीय कार्यवाहियों के प्रकाशन से रोक सकती है। यहां उल्लेखनीय है कि संसद की कार्यवाहियों का प्रकाशन सही अर्थों में होना चाहिए, उसमें कोई दुर्भावना नहीं होनी चाहिए। यदि कोई प्रकाशन दुर्भावनावश किया गया है, तो उसे दण्ड दिया जा सकता है।

3) **बाहरी व्यक्तियों को सदन से निकालने का अधिकार** – संसद के दोनों सदनों को यह अधिकार है कि वह अपनी किसी बैठक को गुप्तरूप से कर सकती है। साथ ही उन्हें यह भी अधिकार है कि वह किसी भी बाहरी व्यक्ति को सदन से बाहर भेज सकती है।

4) **दण्ड देने का अधिकार** – संसद के प्रत्येक सदन को यह शक्ति है कि वह अपने विशेषाधिकार उल्लंघन के लिए सदन के सदस्य या बाहरी व्यक्ति को दण्ड दे सकती है। इसके लिए सदन की अवमानना भी कहा जाता है।

5) **सूचना प्राप्त करने का अधिकार** – संसद के प्रत्येक सदन को अपने किसी सदस्य की बंदी, निरोध, अपराध सिद्धि, कारावास या मुक्ति संबंधी तत्कालिक सूचना प्राप्त करने का अधिकार है।

6) **गिरफ्तारी के संबंध में अधिकार** – सदन क्षेत्र में पीठासीन अधिकारी की अनुमति के बिना कोई व्यक्ति को चाहे वह सदस्य हो या बाहरी व्यक्ति गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है और न ही कोई कानूनी कार्यवाही की जा सकती है।

संसद के कार्य एवं शक्तियां
Powers & Functions of the Parliament

भारत ने संसदीय प्रणाली को अपनाया, फलत: भारतीय राजनीति में संसद महत्वपूर्ण स्थिति रखती है। भारतीय संविधान द्वारा उसे बहुत सारे कार्य व शक्तियां प्रदान की गई हैं। इनकी शक्तियों एवं कार्यों को निम्नलिखित तरीके से देखा जा सकता है –

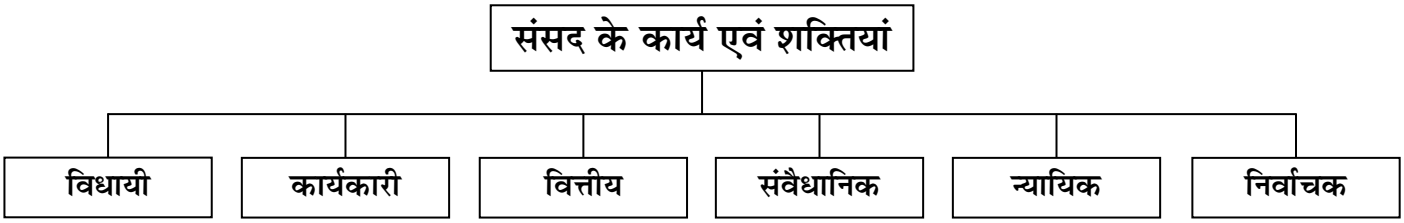

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

- **विधायी शक्ति (Legislative Power)** – संसद का सबसे महत्वपूर्ण कार्य देश के लिए कानून बनाना है। वह संघ सूची, संवर्ती सूची तथा अवशिष्ट विषयों पर कानून बनाने का अधिकार रखती है। इसके अलावा विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के किसी विषय पर भी कानून बना सकती है।
- **कार्यकारी शक्ति (Executive Power)** – संसदीय प्रणाली में मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। संसद मंत्रिपरिषद् पर विभिन्न प्रश्नों, प्रस्तावों और चर्चा के माध्यम से नियंत्रण स्थापित करती है। वह अविश्वास प्रस्ताव पारित करके और धन्यवाद प्रस्ताव व धन विधेयक को अस्वीकार करके सरकार को हटा भी सकती है।
- **वित्तीय शक्ति (Financial Power)** – संसद सरकार पर वित्तीय नियंत्रण स्थापित करती है। संसद की सहमति के बिना संचित निधि से कोई धन नहीं निकाला जा सकता है। उसकी अनुमति के बिना कार्यपालिका कोई कर नहीं लगा सकती है। इसके अलावा विभिन्न वित्तीय समितियों तथा बजट अनुदान के माध्यम से वह सरकार पर नियंत्रण रखती है।
- **संवैधानिक शक्ति (Constituent Power)** – संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्राप्त है। वह संविधान के किसी भी भाग में कोई भी संशोधन कर सकती है, बशर्ते उसके मूल ढांचे की भावना के विरुद्ध न हो।
- **न्यायिक शक्ति (Judicial Power)** – संसद को कुछ न्यायिक शक्तियां भी प्राप्त हैं, जैसे – राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, उच्चतम तथा उच्च न्यायालय के सभी न्यायाधीश, मुख्य चुनाव आयुक्त, नियंत्रक लेखा महापरीक्षक आदि को हटाने के लिए राष्ट्रपति से सिफारिश कर सकती है। इसके अलावा वह अपनी अवमानना व विशेषाधिकारों के उल्लंघन के लिए किसी संसद सदस्य या बाहरी व्यक्ति को दंडित भी कर सकती है।
- **निर्वाचक शक्ति (Electoral Power)** – संसद राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति का चुनाव करती है। इसके अलावा लोकसभा अपने अध्यक्ष व उपाध्यक्ष का तथा राज्यसभा उपसभापति का चयन करती है।

❐ लोकसभा व राज्यसभा के कार्यों व शक्तियों की तुलना
(Comparison between Powers & Functions of Loksabha & Rajyasabha)

भारत का संविधान संसद के दोनों सदनों को समान शक्ति व अधिकार प्रदान करता है, किन्तु लोकसभा तथा राज्यसभा की अपनी विशिष्ट भूमिका के कारण दोनों की शक्तियों एवं कार्यों में कुछ अन्तर भी है। इन दोनों सदनों की तुलना हम निम्नलिखित तरीके से देख सकते हैं –

- **दोनों सदनों की शक्तियां**

1) साधारण विधेयक तथा संविधान संशोधन विधेयक को आरंभ करना तथा पारित करना।
2) वित्तीय विधेयक (II) को आरंभ करना तथा पारित करना।
3) राष्ट्रपति का निर्वाचन करना तथा उस पर महाभियोग लगाना।
4) उपराष्ट्रपति का निर्वाचन व उसे पद से हटाना। (उल्लेखनीय है कि उपराष्ट्रपति को हटाने संबंधी पहल राज्यसभा ही कर सकती है, किन्तु उसका अनुमोदन लोकसभा द्वारा आवश्यक है)
5) प्रधानमंत्री तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करना।
6) राष्ट्रपति द्वारा जारी अध्यादेश व आपातकाल की स्वीकृति देना।
7) उच्चतम एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, मुख्य निर्वाचन आयुक्त, लेखा महानियंत्रक परीक्षक को हटाने की राष्ट्रपति को सिफारिश करना।
8) संवैधानिक तथा गैर-संवैधानिक आयोगों की रिपोर्ट पर विचार करना।

- **लोकसभा की शक्तियां**

1) धन विधेयक सिर्फ लोकसभा में ही पेश किए जा सकते हैं, राज्यसभा में नहीं। राज्यसभा धन विधेयक को अधिक से अधिक 14 दिनों तक रोक सकती है, वह उसमें न तो संशोधन कर सकती है और न ही उसे खारिज कर सकती है। हर स्थिति में

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

अंतिम निर्णय लोकसभा का ही माना जाएगा।

2) कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं, इसका निर्णय करने की शक्ति लोकसभा अध्यक्ष के पास है।

3) वित्तीय विधेयक (I) को केवल लोकसभा में ही पेश किया जा सकता है। यद्यपि पेश हो जाने के बाद ऐसे विधेयक के मामले में दोनों सदनों की शक्तियां बराबर हो जाती है।

4) बजट पारित करने की प्रक्रिया में भी लोकसभा को ज्यादा शक्ति है। वह विभिन्न मंत्रालयों द्वारा मांगे गए अनुदानों पर विचार-विमर्श भी कर उन्हें पारित भी करता है। राज्यसभा उस पर बहस तो कर सकता है, किन्तु पारित नहीं कर सकता है।

5) संयुक्त बैठक के विषय में भी लोकसभा को ज्यादा शक्ति है। संयुक्त बैठक में लोकसभा के नियम लागू होते हैं तथा इसकी अध्यक्षता लोकसभा अध्यक्ष करता है। इसके अलावा संयुक्त बैठक में बहुमत से निर्णय लिया जाता है, अत: स्वाभाविक सी बात है कि लोकसभा की संख्या ज्यादा होने के कारण वह निर्णायक स्थिति में होगी।

6) मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। अत: मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव केवल लोकसभा में ही लाया जा सकता है।

7) राष्ट्रीय आपातकाल को सामाप्त करने का संकल्प लोकसभा में ही पारित किया जा सकता है।

- **राज्यसभा की शक्तियां**

1) अनुच्छेद 249 के तहत् राज्यसभा राज्य सूची के किसी विषय पर संसद को एक वर्ष के लिए कानून बनाने के लिए शक्ति दे सकती है। ऐसा प्रस्ताव एक वर्ष तक लागू रहता है, जिसे राज्यसभा बार-बार पारित कर कितनी बार भी बढ़ा सकती है।

2) अनुच्छेद 312 के अनुसार यदि राष्ट्र हित के लिए आवश्यक या उपयोगी हो, तो राज्यसभा अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन हेतु संसद को अधिकृत कर सकती है।

3) लोकसभा के भंग होने पर राज्यसभा ही राष्ट्रपति के आपातकालीन अधिकारों के प्रयोग पर लोकतांत्रिक नियंत्रण लगा सकती है।

4) राज्यसभा भारत के उपराष्ट्रपति के निष्कासन के प्रस्ताव को प्रारंभ कर सकती है।

सैद्धान्तिक रूप से अनेक देशों में संसद का उच्च सदन निम्न सदन की तुलना में कम महत्व रखता है। भारत में भी राज्यसभा को लोकसभा की तुलना में कम शक्तिया एवं कार्य प्राप्त है, किन्तु फिर भी उसकी महत्ता एवं उपयोगिता है, जो निम्नलिखित हैं -

1) यह लोकसभा में बहुमत की निरंकुशता को रोकने का प्रयास करता है। लोकसभा द्वारा जल्दबाजी में या अविवेकपूर्ण विधेयकों को पारित होने से रोकता है।

2) राज्यसभा का निर्वाचन अप्रत्यक्ष तरीके से होता है, अत: इसमें अनुभवी एवं बुद्धिजीवी लोगों को प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है, जो प्रकारान्तर से भारतीय संसद के लिए उपयोगी है।

3) राज्यसभा में राष्ट्रपति साहित्य, कला, समाज व विज्ञान क्षेत्र से 12 लोगों को मनोनीत करता है, फलत: संसद को इनके ज्ञान व अनुभव का लाभ मिलता है।

4) राज्यसभा राज्यों का प्रतिनिधित्व कर संघीय संतुलन को बनाए रखता है।

5) संविधान संशोधन विधेयक के संदर्भ में राज्यसभा की भूमिका निर्णायक हो सकती है। यदि राज्यसभा में किसी अन्य दल का बहुमत हो तथा लोकसभा में किसी अन्य दल का बहुमत हो तो सत्तारूढ़ दल के लिए इसे पारित करवाना कठिन हो जाता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

संसद की सर्वोच्चता
Supremacy of Parliament

संसद की सर्वोच्चता या सम्प्रभुता का सिद्धान्त ब्रिटेन की राजव्यवस्था का महत्वपूर्ण लक्षण है। इंग्लैण्ड में सर्वोच्च शक्ति संसद में निहित है। इसके प्रभाव व न्याय क्षेत्र पर वहां किसी प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं है। यहां तक कि शासन के 3 अंगों में भी सर्वोच्च स्थान रखती है। कार्यपालिका और न्यायापालिका के पास भी संसद की तुलना में कम शक्तियां हैं। ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता को हम निम्नलिखित बिन्दुओं से समझ सकते हैं –

1) इंग्लैण्ड में अलिखित संविधान है, अत: वहां की संसद संविधान की सीमाओं के अधीन नहीं है।

2) इंग्लैण्ड में एकात्मक शासन व्यवस्था है, अत: संसद को सभी विषयों पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है।

3) इंग्लैण्ड की संसद द्वारा बनाए गए किसी भी कानून को न्यायपालिका अवैध घोषित नहीं कर सकती है। दूसरे शब्दों में यह न्यायिक पुर्विलोकन से भी मुक्त है।

❐ क्या भारतीय संसद सर्वोच्च है? (Is Indian Parliament Supreme?)

भारत ने भी संसदीय व्यवस्था को शासन प्रणाली के रूप में स्वीकार किया है, किन्तु भारतीय संसद को वैसी सर्वोच्चता प्राप्त नहीं है, जैसी ब्रिटिश संसद को है। भारत में संसद की शक्ति को सीमित करने करने वाले कई तत्व हैं, जो निम्नलिखित हैं –

1) भारत में संविधान की सर्वोच्चता का सिद्धान्त अपना गया है, अर्थात् – संविधान ही सर्वोच्च विधि है। चूंकि भारतीय संविधान लिखित है, अत: संसद के लिए आवश्यक है कि वह संविधान की सीमाओं के अंदर रहते हुए ही कार्य करे।

2) भारत ने संघात्मक शासन प्रणाली को अपनाया है, जो स्पष्टत: केन्द्र व राज्य के मध्य शक्तियों का विभाजन करता है। अत: संसद केवल संघ सूची व समवर्ती सूची पर ही कानून बना सकती है।

3) भारत ने शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को अपनाया है, ताकि शासन के विभिन्न अंगों में रोक व संतुलन बना रहे। अत: भारतीय न्यायपालिका के पास न्यायिक पुनर्विलोकन की व्यापक शक्ति है, ताकि संसद द्वारा बनाए गए किसी असंवैधानिक कानून को अवैध घोषित कर सके।

4) भारतीय संविधान में मूल अधिकारों को गारंटी प्रदान की गई है। अनुच्छेद 13(2) स्पष्टत: घोषित करता है कि संसद कोई ऐसी विधि नहीं बना सकती, जो मूल अधिकारों को शून्य या कम करती है।

5) भारतीय संविधान में संघात्मक ढांचे से जुड़े प्रावधानों का संशोधन संसद अकेले नहीं कर सकती है। उसे इसके लिए आधे से अधिक राज्यों का समर्थन अवश्यक रूप से चाहिए।

कुल मिलाकर भारतीय संसद ब्रिटिश संसद की तरह सर्वोच्च नहीं है। यद्यपि भारत ने ब्रिटेन की संसदीय परम्पराओं का अनुसरण जरूर किया है, किन्तु उसे भारतीय परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक परिवर्तन भी किया है। संविधान निर्माता यह कभी नहीं चाहते थे कि शासन कोई भी एक अंग शक्तिशाली हो जाए। वह शासन के 3 अंगों में संतुलन चाहते थे, इसीलिए उन्होंने न्यायिक पुनर्विलोकन, संविधान की सर्वोच्चता तथा शक्ति पृथक्करण जैसे प्रावधानों को लागू किया।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

न्यायपालिका
Judiciary

आज विश्व के अधिकांश देशों ने लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को स्वीकार किया है। लोकतंत्र के सफल कार्यान्वयन के लिए इसके शासन के अंगों विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका में शक्ति का पृथक्करण किया जाता है। शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त का अभिप्राय राजकीय शक्ति को किसी एक व्यक्ति, वर्ग अथवा संस्था में केन्द्रीत होने से बचाना है। अत: यह शासन के किसी भी अंग की निरंकुशता को सीमित व नियंत्रित करता है। इस सिद्धान्त को संस्थागत रूप देने का श्रेय संयुक्त राज्य अमेरिका को है।

भारत का संविधान भी लोकतंत्र की स्थापना करता है, जिसमें शक्ति का पृथक्करण किया गया है। भारत में शक्तियों का पृथक्करण अमेरिका की तरह कठोर नहीं है, किन्तु न्यायपालिका का विधायिका और कार्यपालिका से पृथक्करण किया गया है। अनुच्छेद 50 में भी कार्यपालिका और न्यायपालिका के पृथक्करण का उल्लेख मिलता है। स्पष्ट है कि भारतीय संविधान ने स्वतंत्र न्यायपालिका की स्थापना की है। भारत में स्वतंत्र न्यायपालिका बनाए जाने की आवश्यकता को निम्नलिखित बिन्दुओं में समझा जा सकता है –

1) भारत का संविधान लिखित है, अत: समय-समय पर इसकी व्याख्या की आवश्यकता महसूस की जाती है। कोई भी संस्था संविधान के प्रावधानों का अर्थ तोड़-मरोड़कर अपने हित में प्रयोग कर सकती है। अत: इसकी स्पष्ट व्याख्या के लिए एक निष्पक्ष व स्वतंत्र न्यायिक संस्था होनी चाहिए, जो संविधान के लक्ष्यों एवं सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर स्पष्ट व्यख्या करें।
2) भारतीय संविधान एक संघात्मक सरकार की स्थापना की है, जिसमें केन्द्र व राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण संविधान द्वारा किया गया है लेकिन केन्द्र व राज्यों के बीच या विभिन्न राज्यों के आपस में क्षेत्राधिकार झगड़े उठ सकते हैं, अत: इन विवादों को न्यायपूर्ण ढंग से हल करने के लिए एक स्वतंत्र व निष्पक्ष न्यायिक संस्था का होना आवश्यक है।
3) भारत ने संसदीय लोकतंत्र को अपनाया है, जिसमें कार्यपालिका संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। सरकार वही दल बना सकता है, जिसका संसद में बहुमत हो। अत: कोई बहुमत प्राप्त सरकार अपनी शक्ति का प्रयोग कर कोई भी कानून या संविधान में संशोधन कर निरंकुश हो सकती है। इस प्रकार सरकार की निरंकुशता को रोकने के लिए निष्पक्ष व स्वतंत्र न्यायपालिक होनी चाहिए।
4) संविधान के भाग 3 में नागरिकों को अपने सर्वांगीण विकास के लिए मूल अधिकार प्रदान किए गए हैं। मूल अधिकारों की रक्षा के लिए भी एक स्वतंत्र व निष्पक्ष न्यायपालिका की आवश्यकता महसूस होती है।
5) भारत एक बहुसांस्कृतिक राष्ट्र है, जहां पर जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा आदि के आधार पर विविधता पाई जाती है। इनमें से कुछ वर्ग अपनी जनसंख्या के दृष्टिकोण से अल्पसंख्यक होते हैं, अत: उन्हें बहुसंख्यक के तानाशाही का सदैव भय बना रहता है। एक निष्पक्ष न्यायपालिका ही अल्पसंख्यकों के अधिकारों को संरक्षित कर उनके भय को दूर कर सकती है।

यहां उल्लेखनीय है कि भारत ने संघात्मक शासन प्रणाली को जरूर अपनाया है, किन्तु अमेरिका की तरह न्यायपालिका का विभाजन नहीं किया है। भारतीय संविधान एकीकृत न्यायपालिका की स्थापना करता है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय में सम्मिलित रूप से उच्चतम न्यायपालिका कहा जाता है। जबकि उच्च न्यायालय से नीचे सभी न्यायालयों को निम्नतर न्यायपालिका कहा जाता है। इस प्रकार न्यायपालिका न केवल लोकतंत्र का प्रहरी है, अपितु संवैधानिक व साधारण कानूनों की प्रगतिवादी व्याख्या करके सामाजिक व आर्थिक बदलाव का अग्रदूत भी है।

बदलते समय के साथ न्यायपालिका ने भी अपनी परम्परागत् ढांचे में बदलाव कर कुछ नए प्रयोग किए हैं, जैसे – अधिकरण। अधिकरण किसी विशेष या अधिनियम से जुड़े मामलों को देखते हैं। यद्यपि यह मूल संविधान में नहीं थे, लेकिन 42वें संविधान संशोधन, 1976 द्वारा भाग 14(A) के अनुच्छेद 323(A) व 323(B) में शामिल किया गया है। इनके अलावा पारिवारिक अदालत, लोक अदालत, उपभोक्ता अदालत, बाल एवं किशोर न्यायालय, फास्ट ट्रेक कोर्ट, मोबाइल अदालत, ई-अदालत, ग्राम न्यायालय आदि भी स्थापित किए गए हैं। साथ ही सेना न्यायलय भी होती हैं, जो सैनिकों से जुड़े मामलों पर विचार करते हैं।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

सर्वोच्च न्यायालय
Supreme Court

❐ गठन (Formation)

संविधान के अनुच्छेद 124 में उच्चतम न्यायालय के गठन के सम्बन्ध में प्रावधान किया गया है, जिसमें यह कहा गया है कि उच्चतम न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश तथा 7 अन्य न्यायाधीश होंगे तथा संसद समय-समय पर न्यायाधीशों की संख्या का निर्धारण कर सकती है। वर्तमान समय में उच्चतम न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और 30 अन्य न्यायाधीश (कुल 31 न्यायाधीश) हैं।

❐ स्थान (Place)

उच्चतम न्यायालय की मुख्यपीठ नई दिल्ली में स्थित है, लेकिन यह नई दिल्ली के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान पर भी सुनवाई कर सकता है। इस अन्य स्थान का निर्धारण मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रपति की अनुमति से कर सकता है।

❐ न्यायाधीशों की योग्यता (Eligibility)

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने के लिए किसी व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यता की अपेक्षा की जाती है -

1) वह भारत का नागरिक हो,
2) वह किसी उच्च न्यायालय में लगातार कम से कम 5 वर्ष तक न्यायाधीश रह चुका हो, या
   किसी उच्च न्यायालय में लगातार 10 वर्ष तक अधिवक्ता रहा हो, या
   वह राष्ट्रपति की राय से पारंगत् विधिवेता हो।

❐ न्यायाधीशों की नियुक्ति (Appointment)

अनुच्छेद 124 के अनुसार उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को राष्ट्रपति नियुक्त करता है। राष्ट्रपति ऐसी नियुक्ति से पूर्व उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श ले सकता है, जिससे वह आवश्यक समझे। नियुक्ति संबंधि यह प्रावधान न्यायपालिका और कार्यपालिका के मध्य मतभेद का विषय रहा है। यह मतभेद 'परामर्श' शब्द को लेकर हुआ है। परामर्श शब्द को लेकर 2 महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होते हैं -

1) क्या यह परामर्श राष्ट्रपति मानने को बाध्य है?
2) परामर्श कितने और किन न्यायाधीशों से किया जाना चाहिए?

इस संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समय-समय पर विभिन्न व्याख्याएं दी गई हैं। प्रथम न्यायाधीश मामले (1982 ई.) में न्यायालय ने परामर्श का अर्थ विचारों का आदान-प्रदान से लिया तथा निर्णय यह माना कि अनुच्छेद 124 के अधीन परामर्श राष्ट्रपति पर बाध्यकारी नहीं है। किन्तु द्वितीय न्यायाधीश मामले (1993 ई.) में न्यायालय ने अपना मत बदलते हुए यह निर्धारित किया कि अनुच्छेद 124 के तहत् न्यायाधीशों द्वारा दिया गया परामर्श राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी है। इसी तरह तृतीय न्यायाधीश मामले (1998 ई.) में न्यायालय ने परामर्श को बाध्यकारी तो माना, किन्तु परामर्श प्रक्रिया के संबंध में कुछ सिद्धान्त भी निर्धारित किए। ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं -

1) अनुच्छेद 124 में वर्णित परामर्श का तात्पर्य केवल एक व्यक्ति के परामर्श से नहीं है। मुख्य न्यायाधीश को सर्वोच्च न्यायालय के 4 वरिष्ठतम न्यायाधीशों के मण्डल से परामर्श करके ही राष्ट्रपति के पास सिफारिश भेजनी चाहिए।
2) इस परामर्शमण्डल द्वारा निर्णय आम सहमति से होने चाहिए न कि बहुमत से। यदि कोई दो न्यायाधीश भी किसी व्यक्ति के नियुक्ति का विरोध करेंगे, तो उस व्यक्ति के नाम की सिफारिश राष्ट्रपति को नहीं की जा सकती है।

इसके अलावा समय-समय पर सरकार द्वारा यह आलोचना की जाती रही कि परामर्शमण्डल द्वारा की गई नियुक्तियों में न्यायपालिका का एकाधिकार हो जाता है। न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में कार्यपालिका को भी अधिकार होना चाहिए, ताकि इनकी नियुक्तियां निष्पक्ष व पारदर्शी ढंग से की जा सके। इस संदर्भ में सरकार ने 99वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2014 द्वारा संविधान में एक नया अनुच्छेद 124(A) जोड़ा है। यह अनुच्छेद राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग की स्थापना करता है, जो उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति एवं स्थानान्तरण संबंधी सिफारिश राष्ट्रपति से करेगा।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❐ राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (National Judicial Appointment Commission)

अनुच्छेद 124(A) में राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग की स्थापना का प्रावधान करता है।

◆ गठन (Formation)

संविधान के संशोधित प्रावधानों के अनुसार आयोग निम्नलिखित व्यक्तियों से मिलकर बनता है –

1) भारत के मुख्य न्यायाधीश (अध्यक्ष)।
2) भारत के मुख्य न्यायाधीश के बाद में सर्वोच्च न्यायालय के 2 वरिष्ठ न्यायाधीश।
3) केंद्रीय कानून एवं न्याय मंत्री (पदेन सदस्य)।
4) दो प्रख्यात व्यक्तियों (इन दो व्यक्तियों का मनोनयन एक समिति द्वारा किया जाएगा, जो प्रधानमंत्री, मुख्य न्यायाधीश और लोकसभा के विपक्ष के नेता से मिलकर बनेगी। इन दो प्रतिष्ठित व्यक्तियों में से एक अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति या अन्य पिछड़ा वर्ग या अल्पसंख्यक समुदायों या एक महिला वर्ग से होगा। इन्हें 3 वर्ष की अवधि के लिए नामित किया जाएगा और वे पुनः मनोनयन के लिए पात्र नहीं होंगे।)

◆ आयोग के कार्य (Duties of Commission)

1) आयोग उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश व अन्य न्यायाधीशों और उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश व अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए राष्ट्रपति को सिफारिश करेगा।
2) आयोग उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश व अन्य न्यायाधीशों का किसी अन्य उच्च न्यायालय में स्थानांतरण की सिफारिश करेगा।
3) आयोग क्षमता व योग्यता को ध्यान में रखकर किसी व्यक्ति की सिफारिश करेगा।

◆ प्रक्रिया (Procedure)

आयोग न्यायाधीशों के चयन के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया को अपनाएगा –

1) **भारत का मुख्य न्यायाधीश** – आयोग भारत के मुख्य न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए उच्चतम न्यायालय के सबसे वरिष्ठ न्यायाधीश की सिफारिश करेगा।
2) **सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीश** – सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधिशों की नियुक्ति करते समय आयोग क्षमता, योग्यता और विनियमों में विनिर्दिष्ट अन्य मानदंडों के आधार पर सिफारिश करेगा। यदि आयोग के कोई 2 सदस्य किसी नाम पर सहमत नहीं है, तो आयोग द्वारा उसकी सिफारिश नहीं की जाएगी।
3) **उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश** – आयोग किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के पद हेतु वरिष्ठता के आधार पर सिफारिश करेगा। आयोग सिफारिश करते समय क्षमता, योग्यता और नियमों में विनिर्दिष्ट अन्य मापदंडों को भी ध्यान में रखेगा।
4) **उच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीश** – आयोग सर्वप्रथम उच्च न्यायालय के न्यायाधीश से अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के विषय में सिफारिश मांगेंगे। ऐसी सिफारिश मुख्य न्यायाधीश अन्य 2 वरिष्ठ न्यायाधीशों की सलाह से देंगे तथा विनिर्दिष्ट मानदण्डों के आधार पर करेंगे। आयोग राज्य के मुख्यमंत्री एवं राज्यपाल की सिफारिश को भी ध्यान में रखेगा। यदि आयोग के कोई 2 सदस्य किसी नाम पर सहमत नहीं हैं, तो आयोग द्वारा उसकी सिफारिश नहीं की जाएगी।

नोट – सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 99वें संविधान संशोधन को असंवैधानिक करार देते हुए न्यायिक नियुक्ति के संदर्भ में कॉलेजियम व्यवस्था को ही जारी रखा है।

◆ कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति (Appointment of Acting CJI)

संविधान के अनुच्छेद 126 में कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश को नियुक्त करने के सम्बन्ध में प्रावधान किया गया है। इसके अनुसार जब कभी भी मुख्य न्यायाधीश का पद किसी भी कारणवश रिक्त हो जाए, तो राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों में से किसी भी न्यायाधीश को मुख्य न्यायाधीश के कर्तव्यों का पालन करने के लिए नियुक्त कर सकता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति (Ad hoc Judge)**

अनुच्छेद 127 के अनुसार यदि कभी सर्वोच्च न्यायालय में गणपूर्ति न हो, तो तदर्थ आधार पर न्यायाधीशों की नियुक्ति की जा सकती है। मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रपति की पूर्व सहमति तथा सम्बद्ध उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करके ही तदर्थ न्यायाधीश की नियुक्ति करेगा। वह उच्च न्यायालय में से उस न्यायाधीश को तदर्थ न्यायाधीश के रूप में नियुक्त करेगा, जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश बनने की योग्यता रखता हो।

- **सेवानिवृत्त न्यायाधीश (Retired Judge)**

अनुच्छेद 128 के अनुसार भारत का मुख्य न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश से अल्पकाल के लिए उच्चतम न्यायालय में कार्य करने का अनुरोध कर सकता है। ऐसा करने से पूर्व मुख्य न्यायाधीश को संबंधित न्यायाधीश एवं राष्ट्रपति की सहमति लेना होगी। उसे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की तरह ही सभी अधिकार प्राप्त होंगे, किन्तु वह उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नहीं माना जाएगा।

❒ **शपथ (Oath)**

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को राष्ट्रपति उनके पद का शपथ ग्रहण कराता है (अनुच्छेद 127)। न्यायाधीश निम्नलिखित के लिए शपथ ग्रहण करता है –

1) विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखने के लिए,
2) भारत की प्रभुता तथा अखण्डता को अक्षुण्ण रखने के लिए,
3) सम्यक् प्रकार के श्रद्धापूर्वक तथा अपनी पूरी योग्यता, ज्ञान और विवेक से अपने पद के कर्तव्यों का भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना पालन करने के लिए, तथा
4) संविधान एवं विधियों की मर्यादा बनाए रखने के लिए,

❒ **कार्यकाल व पदरिक्ति (Tenure or Vacancy)**

अनुच्छेद 124(2) के अनुसार उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु पूरी करने तक अपने पद पर बना रहता है। इसके अलावा निम्नलिखित तरीकों से उसका पद भी रिक्त हो सकता है –

1) यदि वह राष्ट्रपति को संबोधित कर अपना त्यागपत्र दे दे।
2) उसकी आकस्मिक मृत्यु हो जाए।
3) उसे संसद द्वारा पारित समावेदन पर राष्ट्रपति द्वारा उसके पद से हटा दिया गया हो।

❒ **न्यायाधीशों को हटाने की प्रक्रिया (Removal of Judges)**

1) किसी भी न्यायाधीश को साबित असमर्थता या कदाचार के आधार पर ही हटाया जा सकता है।
2) किसी भी न्यायाधीश को हटाने से संबंधित प्रस्ताव किसी भी सदन में प्रारंभ किया जा सकता है, किन्तु शर्त यह है कि ऐसा प्रस्ताव लोकसभा में 100 या राज्यसभा में 50 सदस्यों के हस्ताक्षर के साथ ही अध्यक्ष/सभापति को दिया जा सकता है।
3) अध्यक्ष/सभापति को यह निर्णय करना होता है कि प्रस्ताव स्वीकार किए जाने योग्य है या नहीं।
4) यदि इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया जाता है, तो अध्यक्ष/सभापति द्वारा इसकी जांच हेतु 3 सदस्यीय समिति का गठन किया जाएगा।
5) यह समिति मुख्य न्यायाधीश या उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश, किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश व प्रतिष्ठित न्यायविद (पीठासीन अधिकारी की राय में) से मिलकर बनेगी।
6) यदि समिति न्यायाधीश को दुरुव्यवहार का दोषी या असक्षम पाती है, तो वह अपना प्रतिवेदन सदन में पेश कर देगी। किन्तु यदि आरोप गलत पाए जाता है, तो यह प्रक्रिया यहीं समाप्त हो जाती है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

7) इसके पश्चात् यदि दोनों सदनों में विशेष बहुमत से प्रस्ताव पारित कर इसे राष्ट्रपति के पास भेज दिया जाता है, तो राष्ट्रपति उसे पद से हटाने का आदेश जारी कर देता है।

❐ सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार एवं शक्तियां (Jurisdiction & Powers of Supreme Court)

सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार व शक्ति काफी व्यापक है। उसे विश्व के किसी भी न्यायालय की तुलना में ज्यादा शक्तियां प्राप्त हैं। वह अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय की तरह परिसंघीय न्यायालय है, मूल अधिकारों का संरक्षक तथा संविधान का अंतिम व्याख्याकार है। साथ ही ब्रिटिश हाऊस ऑफ लॉर्ड्स की तरह देश के सभी सिविल तथा आपराधिक मामलों में अपील का अंतिम न्यायालय भी है। इसके अलावा उसके पास परामर्शदात्री शक्ति भी है। सर्वोच्च न्यायालय की क्षेत्राधिकार एवं शक्तियों को निम्नलिखत वर्गों में बांटा जा सकता है –

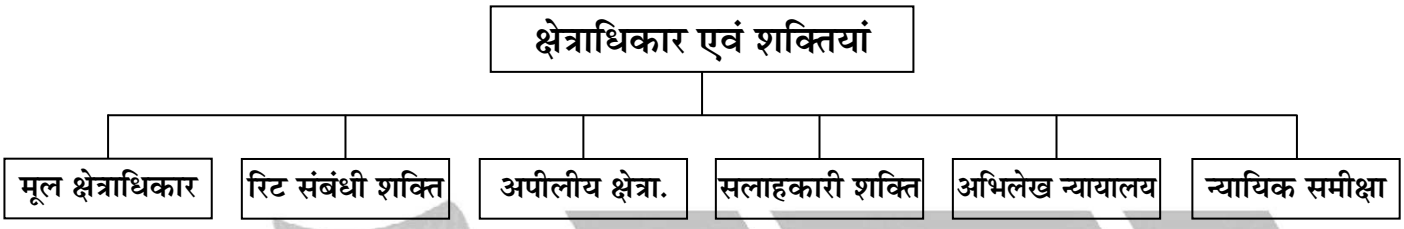

◆ मूल क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction)

उच्चतम न्यायालय के मूल क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत ऐसे मामले आते हैं, जिनकी सुनवाई करने का अधिकार किसी उच्च न्यायालय अथवा अधीनस्थ न्यायालयों को नहीं होता है (अनुच्छेद 131)। वस्तुत: संघीय ढांचे की विभिन्न इकाइयों के मध्य कोई विवाद उत्पन्न होता है, तो उच्चतम न्यायालय संघीय न्यायालय की तरह निर्णय लेता है। उच्चतम न्यायालय को निम्न मामलों में मूल क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं –

1) भारत संघ तथा एक या एक से अधिक राज्यों के मध्य उत्पन्न विवादों में,

2) भारत संघ तथा कोई एक राज्य या अनेक राज्यों और एक या एक से अधिक राज्यों के बीच विवादों में,

3) दो या दो से अधिक राज्यों के बीच ऐसे विवाद में, जिसमें उनके वैधानिक अधिकारों का प्रश्न निहित हो।

मूल क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय उसी विवाद को निर्णय के लिए स्वीकार करेगा, जिसमें किसी तथ्य या विधि का प्रश्न शामिल है।

◆ रिट संबंधी शक्ति (Writ Jurisdiction)

संविधान के अनुच्छेद 32 के अनुसार सर्वोच्च न्यायलय को मूल अधिकारों के रक्षक के रूप में स्थापित किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय को मूल अधिकारों की रक्षा के लिए 5 रिटें जारी करने की शक्ति प्रदान की गई है। इसके अन्तर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण तथा अधिकार प्रक्षा है। **(विस्तृत व्याख्या मूल अधिकार में की जा चुकी है)**

◆ अपीलीय अधिकारिता (Appellate Jurisdiction)

देश का सबसे बड़ा अपीलीय न्यायालय उच्चतम न्यायालय है। इसे भारत के सभी उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार है (अनुच्छेद 132)। उच्चतम न्यायालय में निम्नलिखित मामलों में अपील की जा सकती है –

1) **संवैधानिक मामले** – संवैधानिक मामलों में उच्च न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में तभी अपील की जा सकती है, जब संविधान की व्याख्या से सम्बन्धित विधि के किसी महत्वपूर्ण प्रश्न पर अनेक उच्च न्यायालयों के भिन्न-भिन्न निर्णय दिए हों और उच्चतम न्यायालय ने अपना निर्णय दिया हो। संवैधानिक मामलों में की गई अपील की सुनवाई के लिए संवैधानिक पीठ का गठन किया जाता है, जिसमें कम से कम 5 न्यायाधीश शामिल किए जाते हैं।

2) **दीवानी मामले** – संविधान के अनुच्छेद 133 के अनुसार भारत के राज्य क्षेत्र में स्थित किसी उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में तब अपील की जा सकती है, जब उच्चतम न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि –

a) मामलों में विधि या सार्वजनिक महत्व का कोई सारभूत प्रश्न शामिल है, तथा

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

b) मामले का निर्णय उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाना आवश्यक है।

3) **आपराधिक मामले** – संविधान के अनुच्छेद 134 के अनुसार किसी उच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक अथवा फौजदारी मामलों में दिए गए निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में दो तरह से अपील की जा सकती है। इनमें से कुछ मामलों में उच्च न्यायालय का प्रमाण–पत्र लगता है तथा कुछ मामलों में बिना प्रमाण–पत्र के भी अपील की जा सकती है।

4) **विशेष इजाजत से अपील** – जब उच्चतम न्यायालय अपने विवेक से किसी उच्च न्यायालय या न्यायिक अधिकरण के निर्णय के विरुद्ध अपील करने की इजाजत दे, तब उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है (अनुच्छेद 136)।

- **सलाहकारी शक्ति (Advisory Jurisdiction)**

संविधान के अनुच्छेद 143 के तहत् राष्ट्रपति को ऐसा लगता है कि विधि या तथ्य का कोई ऐसा प्रश्न है, जो व्यापक महत्व का है और उस पर उच्चतम न्यायालय की राय प्राप्त करना जरूरी है, तो वह उच्चतम न्यायालय से परामर्श मांग सकता है। यहां उल्लेखनीय है कि उच्चतम न्यायालय राष्ट्रपति द्वारा ऐसे किसी परामर्श पर अपनी राय देने के लिए बाध्य नहीं है, दूसरी ओर राष्ट्रपति भी उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं है। किन्तु किसी पूर्व संवैधानिक संधि, समझौता, प्रंसविदा आदि के संबंध में राष्ट्रपति परामर्श मांगता है, तो सर्वोच्च न्यायालय अनुमति देने के लिए बाध्य है।

- **अभिलेख न्यायालय (A Court of Record)**

संविधान के अनुच्छेद 129 के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय एक अभिलेखीय न्यायालय होगा। अभिलेखीय न्यायालय वह होता है, जिसके अभिलेखों का साक्ष्य की दृष्टि से मूल्य हो और जब उन्हें किसी न्यायालय में प्रस्तुत किया जाए, तो उन पर कोई संदेह नहीं किया जाए। अभिलेखीय न्यायालय के रूप में उच्चतम न्यायालय के पास 2 शक्तियां हैं –

1) उच्चतम न्यायलय की कार्यवाही, निर्णय और अभिलेख साक्ष्य के रूप में रखे जाएंगे।

2) उच्चतम न्यायालय को अपनी अवमानना के लिए दंडित करने का अधिकार होगा।

- **न्यायिक समीक्षा (Power of Judicial Review)**

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 13, 32, 132 तथा 133 से सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्राप्त होती है। इसके अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय संसद या विधानमण्डल द्वारा पारित किसी अधिनियम तथा कार्यपालिका द्वारा दिए गए आदेश की संवैधानिकता का पुनर्विलोकन कर सकती है। यदि कोई विधि या आदेश संविधान की मूल भावना के विपरीत पाया जाता है, तो सर्वोच्च न्यायालय इसे शून्य घोषित कर सकती है। न्यायिक पुनर्विलोकन शक्ति से न्यायपालिका संविधान की सर्वोच्चता को सुनिश्चित करती है। कार्यपालिका व विधायिका की निरंकुशता को रोकती है। संघीय समानता को बनाए रखती है। इसके अलावा वह इसके माध्यम से नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा करती है। सर्वोच्च न्यायालय ने भी अपने विभिन्न निर्णयों में न्यायिक समीक्षा को संविधान का आधारभूत ढांचा बताया है।

- **अन्य शक्तियां (Other Powers)**

उपरोक्त शक्तियों के अलावा उच्चतम न्यायालय को कुछ अन्य शक्तियां भी प्राप्त हैं, जो निम्नलिखित हैं –

1) राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित यदि कोई विवाद उत्पन्न होता है, तो उसकी सुनवाई उच्चतम न्यायालय ही करेगा।

2) सर्वोच्च न्यायालय संघ लोक सेवा अध्यक्ष व सदस्यों के व्यवहार व आचरण की जांच करता है। यदि वह किसी दुरुव्यवहार के दोषी पाए जाते हैं, तो उसे हटाने से संबंधित राष्ट्रपति को सिफारिश करता है। इस संबंध में उच्चतम न्यायालय द्वारा दी गई सलाह राष्ट्रपति मानने के लिए बाध्य है।

3) सर्वोच्च न्यायालय पूर्व में दिए गए स्वयं के निर्णय की समीक्षा कर सकता है। अपने निर्णय में संशोधन व सुधार कर सकता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

4) उच्चतम न्यायालय उच्च न्यायालय में लंबित पड़े लंबित मामलों को अपने यहां मंगवा सकता है और उनका निपटारा कर सकता है।

5) यह संविधान का अंतिम व्याख्याता है।

6) यह देश के सभी न्यायालयों पर न्यायिक अधिक्षण की शक्ति रखता है।

उच्च न्यायालय
High Court

भारत ने एकीकृत न्यायपालिका की अवधारणा को अपनाया है। भारत की न्यायिक प्रणाली के शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय स्थित है। सर्वोच्च न्यायालय के अधीन राज्यों के उच्च न्यायालय आते हैं। संविधान के अनुच्छेद 214 के अनुसार प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय होगा, लेकिन यदि संसद चाहे तो विधि बनाकर दो या दो से अधिक राज्यों के लिए और किसी संघ शासित राज्य क्षेत्र के लिए एक उच्च न्यायालय स्थापित कर सकती है। इस समय भारत में कुल 24 उच्च न्यायालय हैं।

❒ गठन (Establishment)

प्रत्येक उच्च न्यायालय का गठन एक मुख्य न्यायाधीश तथा ऐसे अन्य न्यायाधीशों को मिलाकर किया जाता है, जिन्हें राष्ट्रपति समय-समय पर नियुक्त करे (अनुच्छेद 216)। इस प्रकार अलग-अलग उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की संख्या भी अलग-अलग होती है।

❒ न्यायाधीशों की योग्यता (Qualification of Judges)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 217 के अनुसार कोई व्यक्ति किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के योग्य तभी माना जाएगा, जब वह -

1) भारत का नागरिक हो और 62 वर्ष की आयु पूरी न किया हो,

2) भारत के राज्य क्षेत्र में कम से कम 10 वर्ष तक न्यायिक पद धारण कर चुका हो, अथवा किसी उच्च न्यायालय में या एक से अधिक उच्च न्यायालयों में लगातार 10 वर्ष तक अधिवक्ता रहा हो।

❒ न्यायाधीशों की नियुक्ति (Appointment of Judges)

संविधान के अनुच्छेद 217 के अनुसार उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राष्ट्रपति ऐसी नियुक्त करने से पूर्व भारत के मुख्य न्यायाधीश, संबंधित राज्य के राज्यपाल तथा संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करेगा। किन्तु व्यवहार में राष्ट्रपति 1998 ई. के तीसरे न्यायाधीश मामले में अपनाई गई परामर्शमण्डल प्रक्रिया के द्वारा दी गई सलाह के अनुसार ही नियुक्ति करता था। वर्तमान में उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश व अन्य न्यायाधीश की नियुक्ति व स्थानान्तरण के संबंध में राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग के गठन का प्रावधान किया गया है। यह आयोग नियुक्ति व स्थानान्तरण के संबंध में राष्ट्रपति को परामर्श देगा, जो राष्ट्रपति मानने के लिए बाध्य है। (वर्तमान में राष्ट्रीय नियुक्ति आयोग का गठन नहीं हो पाया है।)

- **कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति (Appointment of Acting Chief Justice)**

जब किसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का पद किसी भी कारण रिक्त जाए, तो राष्ट्रपति न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों में से किसी को मुख्य न्यायाधीश के कार्यों का निर्वहन करने के लिए नियुक्त कर सकता है (अनुच्छेद 233)।

- **अपर एवं कार्यकारी न्यायाधीशों की नियुक्ति**

जब किसी उच्च न्यायालय में कार्य की अस्थायी वृद्धि हो जाए और राष्ट्रपति को यह प्रतीत हो कि कार्य निपटाने के लिए और अधिक न्यायाधीशों की आवश्यकता है, तब राष्ट्रपति न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किए जाने योग्य किसी व्यक्ति को 2 वर्ष तक की अवधि के लिए अपर एवं कार्यकारी न्यायाधीश के रूप में नियुक्त कर सकता है (अनुच्छेद 224)।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

इसी तरह जब उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश अपने पद के कर्तव्यों का निर्वहन करने में असमर्थ हो जाता है या अपनी अनुपस्थिति के कारण अपने पद के कर्तव्यों का निर्वहन नहीं कर पाता, तब राष्ट्रपति न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति किए जाने के लिए योग्य किसी व्यक्ति को अपर कार्यकारी न्यायाधीश के रूप मे नियुक्त कर सकता है।

- **सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की नियुक्ति**

उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से सेवानिवृत्त न्यायाधीश की नियुक्ति कर सकता है (अनुच्छेद 228)। जब कोई सेवानिवृत्त न्यायाधीश न्यायाधीश के रूप में कार्य करने का अनुरोध स्वीकार करता है, तो उसे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समान सभी अधिकार प्राप्त होंगे। किन्तु वह उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नहीं कहलाएगा।

❒ शपथ

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को राज्यपाल उसके पद की शपथ दिलाता है (अनुच्छेद 219)।

❒ कार्यकाल व पदरिक्त

उच्च न्यायालय का न्यायाधीश 62 वर्ष की आयु पूरी करने तक अपना पद को धारण करेगा। इसके अलावा निम्नलिखित तरीकों से उसका पद रिक्त हो सकता है –

1) वह किसी समय राष्ट्रपति को अपना त्यागपत्र दे सकता है (अनुच्छेद 217)।
2) आकस्मिक मृत्यु हो जाने पर।
3) संसद की सिफारिश से राष्ट्रपति द्वारा उसे पद से हटा सकता है। (उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीश को उसी आधार और प्रक्रिया से हटाया जाता है, जो सर्वोच्च न्यायाधीश के लिए अपनाई जाती है।)
4) उसकी नियुक्ति उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में हो जाने पर या किसी अन्य उच्च न्यायालय में स्थानान्तरण हो जाने पर।

❒ क्षेत्राधिकार व शक्तियां

उच्च न्यायालय को उच्चतम न्यायालय की तरह व्यापक क्षेत्राधिकार शक्तियां प्राप्त हैं। यह राज्य में अपील करने वाला सर्वोच्च न्यायालय है। यह भी मूल अधिकारों तथा विधिक अधिकारों की रक्षा करता है। इसके पास भी संविधान की व्याख्या करने का अधिकार होता है। संविधान के अनुसार उच्च न्यायालयों को निम्नलिखित क्षेत्राधिकार एवं शक्तियां प्राप्त हैं –

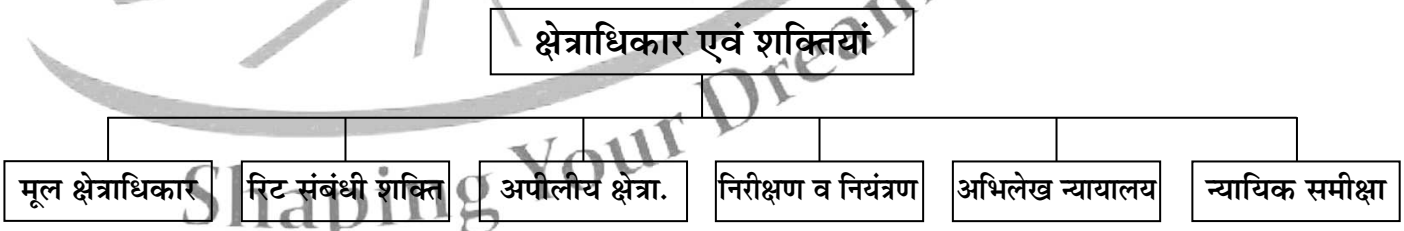

- **मूल क्षेत्राधिकार**

उच्च न्यायालय के मूल क्षेत्राधिकार का अर्थ है कि किसी भी विषय की प्रथम सुनवाई उच्च न्यायालय द्वारा की जाएगी। निम्नलिखित मुद्दों पर उच्च न्यायालय में प्रथम व सीधे सुनवाई का अधिकार है –

1) संसद सदस्यों तथा राज्य विधानमण्डल सदस्यों के निर्वाचन संबंधी विवाद।
2) मूल अधिकारों के प्रवर्तन के संबंध में।
3) संविधान की व्याख्या के संबंध में।
4) राजस्व मामले तथा राजस्व संग्रहण के लिए बनाए गए किसी अधिनियम के किसी संबंध में।

- **रिट संबंधी शक्ति**

उच्च न्यायालय को अनुच्छेद 226 के तहत् मूल अधिकारों तथा विधिक अधिकारों के प्रवर्तन हेतु रिट जारी करने की शक्ति प्राप्त है। उच्च न्यायालय को मूल अधिकारों की रक्षा के लिए 5 रिटें जारी करने की शक्ति प्रदान की गई है। इसके अन्तर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण,

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण तथा अधिकार प्रक्षा है। **(विस्तृत व्याख्या मूल अधिकार में की जा चुकी है)**

- **अपीलीय क्षेत्राधिकार**

उच्च न्यायालय को अपने सभी अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णयों विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार है। यह अपील अधिकारिता दीवानी तथा फौजदारी दोनों मामलों में है। इसके अलावा यदि कोई सत्र न्यायालय किसी को मृत्युदण्ड का आदेश देता है, तो उस पर उच्च न्यायालय की पुष्टी आवश्यक है।

- **निरीक्षण एवं नियंत्रण की शक्ति**

प्रत्येक उच्च न्यायालय को यह शक्ति दी गई है कि वह अपने अधिकारिता के अन्तर्गत आने वाले सभी न्यायालयों और अधिकरणों का पर्यवेक्षण/निरीक्षण करेगा (सैन्य न्यायालय को छोड़कर)। यहां उल्लेखनीय है कि उच्च न्यायालय को न्यायिक व प्रशासनिक दोनों तरह के पर्यवेक्षण का अधिकार है, जबकि सर्वोच्च न्यायालय को उच्च न्यायालय के लिए केवल न्यायिक पर्यवेक्षण का अधिकार है। उच्च न्यायालय को अधिनस्थ न्यायलयों पर न्यायिक एवं प्रशासनिक पर्यवेक्षण के अलावा प्रशासनिक नियंत्रण की शक्ति भी प्राप्त है, जो निम्नलिखित हैं –

1) वह जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति, तैनाती, पदोन्नति, स्थानन्तरण आदि के संबंध में राज्यपाल को परामर्श करता है।

2) राज्य न्यायिक सेवा में नियुक्ति उच्च न्यायालय द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार ही की जाएगी।

3) वह जिला न्यायाधीशों तथा उनके पदाधिकारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सकता है।

- **अभिलेख न्यायालय**

प्रत्येक उच्च न्यायालय अभिलेखी न्यायालय होगा। उसके द्वारा दिए गए निर्णय अधिनस्थ न्यायालयों में साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इसके अलावा उसे न्यायालय की अवमानना के लिए दण्ड देने की शक्ति प्राप्त है।

- **न्यायिक समीक्षा**

सर्वोच्च न्यायालय की तरह उच्च न्यायालय को भी अनुच्छेद 13 व 226 से न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्राप्त है। यह शक्ति संघ और राज्य दोनों के विधायी और कार्यकारी निर्णयों के संदर्भ में प्राप्त है। यदि कोई कानून या आदेश संविधान की मूल भावना का उल्लंघन करता है, तो उच्च न्यायालय उसे शून्य या रद्द कर सकता है।

❐ सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में न्यायपालिका की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका है। लोकतंत्र की सफलता व सार्थकता के लिए यह आवश्यक है कि न्यायपालिका को विधायिका व कार्यपालिका प्रभाव व नियंत्रण से मुक्त रखा जा सके। एक स्वतंत्र न्यायपालिका ही निष्पक्ष निर्णय ले सकती है। अत: संविधान न्यायपालिका को स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने का अवसर प्रदान करता है। न्यायपालिका की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए निम्नलिखित प्रावधान अपनाए गए हैं –

1) **नियुक्ति व हटाने की प्रक्रिया** – सर्वोच्च व उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है, लेकिन उनके हटाए जाने का अधिकार राष्ट्रपति को नहीं दिया गया है। संविधान के अनुसार किसी भी न्यायाधीश को हटाने प्रस्ताव संसद के दोनों सदनों द्वारा विशेष बहुमत से पारित होना चाहिए, तत्पश्चात् ही राष्ट्रपति उसे हटा सकता है। स्पष्ट है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति हटाने की यह पद्धति इसलिए अपनाई गई है, ताकि कोई भी न्यायाधीश राष्ट्रपति के प्रभाव में आकर कार्य न करें। इसके अलावा उसे विशेष बहुमत से हटाया जाता है, जिसका तात्पर्य है कि संसद में न्यायाधीश को हटाने के लिए सत्तारूढ़ दल को विपक्ष के समर्थन की भी आवश्यकता होगी। अकेल कोई सरकार किसी न्यायाधीश को नहीं हटा सकती है। अत: इससे बात की संभावना कम हो जाती है कि किसी न्यायाधीश को राजनीतिक कारणों या दलीय आधार पर हटाया जा सके।

2) **कार्यकाल की सुरक्षा** – उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को कार्यकाल की सुरक्षा प्रदान की जाती है, उन्हें साबित असमर्थता या दुराचार के अलावा किसी भी अन्य कारण से नहीं हटाया जा सकता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

3) **आर्थिक सुरक्षा** – न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने के लिए न्यायाधीशों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान की गई है। उनके वेतन–भत्ते, पेंशन आदि का निर्धारण संसद द्वारा किया जाता है। किन्तु उनके वेतन व सेवा शर्तों में कोई भी परिवर्तन उनके कार्यकाल में नहीं किया जा सकता है, जिससे उन्हें किसी प्रकार की हानि होती हो। इस प्रावधान के अभाव में इस बात की संभावना थी कि सरकार किसी भी समय न्यायाधीशों के वेतन या सेवा शर्तों में कटौती करने की धमकी देकर उन्हें अपनी इच्छानुसार निर्णय देने के लिए बाध्य कर सकती है।

इसके अलावा न्यायाधीशों का वेतन–भत्ते, पेंशन, कार्यालयीन व्यय, प्रशासनिक व्यय आदि संचित निधि पर भारित होते हैं। इन पर संसद पर चर्चा तो की जा सकती है, किन्तु मतदान नहीं किया जा सकता है।

4) **वकालत पर रोक** – सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश सेवानिवृत्ति के बाद भारत सरकार के अधीन कोई पद ग्रहण नहीं कर सकते हैं। साथ ही उनकी वकालत पर भी रोक है। इसी तरह उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सेवानिवृत्ति के बाद सर्वोच्च न्यायालय तथा अन्य उच्च न्यायालय के अलावा किसी भी न्यायालय में वकालत नहीं कर सकते हैं।

5) **आचरण पर बहस नहीं** – सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा किए किसी कार्य व आचरण पर संसद या राज्य विधानमण्डल में बहस नहीं हो सकती है।

6) **स्टाफ नियुक्त करने की स्वतंत्रता** – सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय बिना कार्यपालिका के हस्तक्षेप के आवश्यक अधिकारियों व कर्मचारियों की नियुक्ति कर सकते हैं। वह उनकी सेवा शर्तें भी तय कर सकते हैं।

7) **अवमानना पर दण्ड देने की स्वतंत्रता** – उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय किसी भी व्यक्ति को अपनी अवमानना के लिए दण्ड दे सकता है। इस प्रकार न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने के लिए न्यायाधीशों के किसी निर्णय अथवा अधिकारिता में किए कार्यों की आलोचना या विरोध नहीं किया जा सकता है।

8) **अधिकारिता में कटौती नहीं** – संसद व विधानमण्डल को उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्याय क्षेत्र व शक्तियों में कटौती का अधिकार नहीं है। हालांकि संसद इनमें वृद्धि कर सकता है।

9) **कार्यपालिका हस्तक्षेप से स्वतंत्रता** – संविधान के अनुच्छेद 50 में राज्य को निर्देश दिया गया है कि राज्य लोक सेवाओं में न्यायपालिका में लोकपालिका से पृथक करने के लिए कदम उठाएगा।

संविधान के उपर्युक्त प्रावधान सैद्धान्तिक से तो न्यायपालिका की स्वतंत्रता की सुरक्षा का आश्वासन देते हैं, किन्तु भारत में न्यायपालिका वास्तविक रूप से कहां स्वतंत्र रही है। कुछ आलोचकों का मानना है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता अर्थहीन हो जाती है, जब उसके किसी निर्णय को सत्तारूढ़ सरकार नए कानून बनाकर निरस्त कर देती है। ऐसे कई उदाहरण है, जहां पर संसद ने न्यायपालिका के निर्णय को निरस्त करने के लिए संविधान में संशोधन किया है। साथ ही सैद्धान्तिक रूप से यह कहा गया है कि न्यायाधीश सेवानिवृत्ति के बाद कोई पद धारण नहीं करेंगे, किन्तु सरकार द्वारा उन्हें कई बार संवैधानिक व राजनीतिक पदों पर नियुक्त किया गया है।

इसी प्रकार कार्यपालिका ने अनावश्यक हस्तक्षेप कर न्यायपालिका की स्वतंत्रता को क्षति पहुंचाई है। कई बार राज्यपाल की क्षमादान की न्यायिक शक्ति पर प्रश्न चिह्न लगा है। इनके द्वारा दिया गया क्षमादान कई बार राजनीतिक स्वार्थों से प्रेरित होता है। इन सब बातों के अलावा न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदोन्नति व स्थानान्तरण के संबंध में संविधान में कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है, जिस कारण कार्यपालिका व न्यायपालिका के मध्य टकराहट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अभी हाल ही में राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग के संदर्भ में भी कार्यपालिका व न्यायपालिका के मध्य मतभेद की स्थिति उत्पन्न हो गई है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

अधीनस्थ न्यायालय
Subordinate Courts

प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय के नीचे अनेक न्यायालय कार्य करते हैं, जिन्हें अधीनस्थ या जिला न्यायालय कहा जाता है। संविधान में इन न्यायालयों को कार्यपालिका के हस्तक्षेप से मुक्त रखने का पर्याप्त उपबंध है। इनका उल्लेख अनुच्छेद 233 से 237 में किया गया है, जो निम्नलिखित हैं –

1) **जिला न्यायाधीश की नियुक्ति** – अनुच्छेद 233 के अनुसार किसी राज्य में जिला न्यायाधीश की नियुक्ति, पदस्थापना एवं पदोन्नति राज्यपाल द्वारा राज्य के उच्च न्यायालय से परामर्श करने के बाद की जाती है। जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने के लिए निम्नलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है –
   - **a)** उसे कम से कम 7 वर्ष तक किसी न्यायालय में लगातार अधिवक्ता रहा हो।
   - **b)** उच्च न्यायालय ने उसकी सिफारिश की नियुक्ति की हो।

2) **अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति** – जिला न्यायाधीशों के अतिरिक्त राज्य की न्यायिक सेवाओं में अन्य व्यक्तियों की नियुक्ति राज्यपाल करेगा। किन्तु राज्यपाल ऐसी नियुक्ति राज्य लोकसेवा आयोग तथा राज्य के उच्च न्यायालय के परामर्श के पश्चात् उनके द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार ही करेगा।

3) **अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण** – अनुच्छेद 235 के द्वारा यह निर्धारित किया गया है कि जिला न्यायाधीशों तथा अन्य न्यायाधीशों की पदस्थापना, पदोन्नति, स्थानान्तरण व अन्य मामलों पर नियंत्रण का अधिकार उच्च न्यायालय को ही प्राप्त है।

न्यायपालिका में नवाचार एवं विशेष उद्देश्य न्यायालय
Innovations in Judiciary & Special Purpose Courts

❐ लोक अदालत (Lok Adalat)

लोक अदालत भारत में वैकल्पिक विवाद समाधान की एक प्रणाली है। अर्थात् – अनौपचारिक मध्यस्थों की सहायता से विवादों का समाधान करवाना है। लोक अदालत की वकालत मुख्यरूप से न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती द्वारा की गई थी। 1976 में 42वें संशोधन के द्वारा भारत के संविधान में अनुच्छेद 39(ए) जोड़ा गया, जिसमें नि:शुल्क विधिक सहायता का प्रावधान किया गया। राज्य से अपेक्षा की गई कि वह यह सुनिश्चित करे कि भारत का कोई भी नागरिक आर्थिक या किसी अन्य अक्षमताओं के कारण न्याय पाने से वंचित न रह जाए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भारत सरकार द्वारा विधिक सेवा प्राधिकार अधिनियम, 1987 (Legal Services Authorities Act, 1987) पारित किया गया, जो 9 नवम्बर, 1995 में लागू हुआ। इस अधिनियम के अन्तर्गत विधिक सहायता एवं लोक अदालत का संचालन का अधिकार राज्य स्तर पर राज्य विधिक सेवा प्राधिकार को दिया गया। आगे चलकर 2002 में इस अधिनियम में संशोधन करके स्थायी लोक अदालतों का प्रावधान जोड़ा गया।

लोक अदालतों की अध्यक्षता एक न्यायाधीश (सामान्यत: सेवानिवृत्त न्यायाधीश) द्वारा की जाती है। इसके अलावा इसमें 2 सदस्य और होते हैं, जिनमें से एक वकील और दूसरा कोई सामाजिक कार्यकर्ता। इन अदालतों में कोई न्याय शुल्क नहीं लिया जाता है। लोक अदालत को सिविल न्यायालय की मान्यता दी गई है, जिसमें सिविल प्रकृति के विवाद, जैसे – विवाह, तलाक, भूमि, सम्पत्ति, श्रम आदि की सुनवाई की जाती है। लोक अदालत का वास्तविक उद्देश्य आपसी बातचीत से विवादों का समाधान करवाना है। लोक अदालतों के निर्णयों के विरुद्ध किसी न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती है, क्योंकि इसमें निर्णय दोनों पक्षों की सहमति से ही होता है।

❐ ग्राम न्यायालय (Gram Nyayalaya)

ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 (The Gram Nyayalaya Act, 2008) द्वारा भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में त्वरित एवं आसान न्याय की पहुंच के लिए ग्राम न्यायालय या गांव अदालतों की स्थापना की गई है। यह अधिनियम 2 अक्टूबर, 2009 से लागू किया गया। ग्राम न्यायालय में प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट स्तर का न्यायाधीश होता है, जिसे उच्च न्यायालय के परामर्श के बाद राज्य सरकार नियुक्त करती है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

ग्राम न्यायालय एक तरह से मोबाइल कोर्ट की तरह कार्य करते हैं, जो अपने अधिकार क्षेत्र में शामिल गांवों में अदालत कर विवादों का समाधान करते हैं। ग्राम न्यायालय कम गंभीरता के सिविल तथा आपराधिक मामलों की सुनवाई करता है। सामान्यत: न्यायालय का प्रयास रहता है कि विवादों का समाधान आपसी समझौते से हो जाए। ग्राम न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध जिला न्यायाधीश के पास अपील की जा सकती है।

❒ उपभोक्ता अदालत (Consumer Court)

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के द्वारा उपभोक्ता अदालतों का गठन किया जाता है। इसका उद्देश्य ग्राहकों और उपभोक्ताओं के अधिकारों का संरक्षण कर शिकायतों तथा विवादों का निपटारा करना है। इनका गठन 3 स्तरों पर किया जाता है - जिला उपभोक्ता फोरम, राज्य उपभोक्ता आयोग तथा राष्ट्रीय उपभोक्ता विवादान समाधान आयोग।

❒ परिवार न्यायालय (Family Court)

परिवार न्यायालय का गठन परिवार न्यायालय अधिनियम, 1984 के द्वारा किया जाता है। इस अधिनियम के तहत् प्रत्येक राज्य सरकार 10 लाख से अधिक जनसंख्या वाले शहर में परिवार न्यायालय का गठन करेगी। परिवार न्यायालय विवाह, तलाक, गुजारा-भत्ता आदि से संबंधित मामलों पर सुनवाई करती है।

❒ बाल व किशोर न्यायालय (Child and Juvenile Court)

बच्चों और किशोरों की विशेष स्थितियों का ध्यान रखते हुए सरकार ने किशोर न्याय (बच्चों का ध्यान एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 पारित किया, जिसके अनुसार राज्य सरकार प्रत्येक जिले के लिए एक किशोर न्याय बोर्ड (Juvenile Justice Board) का गठन करेगी। यह बोर्ड में 3 सदस्यों मिलकर बनेगा, जिसकी अध्यक्षता प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट स्तर के न्यायाधीश द्वारा की जाएगी तथा शेष दो सदस्य सामाजिक कार्यकर्ता होंगे। इन दोनों में से एक सदस्य महिला होगी। किशोर न्यायालय बोर्ड द्वारा 18 वर्ष की आयु तक के बच्चों व किशोरों से संबंधित प्रकरणों की सुनावई की जाती है।

न्यायिक सक्रियता एवं जनहित याचिका
Judiciary Activism & Public Interest Litigation

भारतीय प्रस्तावना में न्याय को एक लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया है, जिसके अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय आते हैं। राज्य के नीति-निदेशक तत्वों में भी सामाजिक-आर्थिक न्याय उपलब्ध कराना, राज्य का कर्तव्य माना गया। किन्तु स्वतंत्रता के कई वर्ष बीतने के बाद भी राज्य द्वारा आम जनता को न्याय उपलब्ध नहीं करवाया जा सका। सर्वोच्च न्यायालय ने अनुभव किया कि अगर विधायिका और कार्यपालिका सामाजिक न्याय का वादा पूरा करने में असमर्थ है या अनिच्छुक है, तो न्याय का संरक्षक होने के नाते सर्वोच्च न्यायालय का यह कर्तव्य बनता है कि इन दोनों को उनके उत्तरदायित्व वहन करने हेतु उत्प्रेरित करें।

वस्तुत: न्यायपालिका द्वारा न्याय संबंधी कार्यों के अतिरिक्त ऐसे भी कार्य करने लगी, जो कार्य मूलरूप से कार्यकारिणी द्वारा संपादित किया जाना चाहिए। सरल शब्दों में न्यायपालिका द्वारा कार्यकारिणी की शक्तियों का प्रयोग करना ही न्यायिक सक्रियता कहलाता है। न्यायिक सक्रियता कार्यकारिणी की निष्क्रियता का स्वाभाविक परिणाम है। कार्यकारिणी की बढ़ती उदासीनता, स्वेच्छाचारिता, अनुशासनहीनता तथा निष्क्रियता ने ही न्यायिक सक्रियता को जन्म दिया। इस प्रकार न्यायिक सक्रियता के माध्यम से न्यायालय ने आम जनता को न्याय और मूल अधिकार दिलाने के लिए एक उपकरण के रूप में प्रयोग किया।

भारत में न्यायिक सक्रियता की अवधारणा न्यायालय द्वारा तीन तरह से प्रयोग में लाई गई है -

1) **जनहित याचिका** - सामान्यत: न्यायिक सक्रियता से जनहित विवादों का ही बोध होता है। भारत में जनहित याचिका को लोकप्रिय बनाने का श्रेय न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती एवं वी. आर. कृष्णा अय्यर को जाता है। संविधान न्यायपालिका को नागरिकों के अधिकारों का संरक्षक बनाया। अनुच्छेद 32 के तहत् कोई भी व्यक्ति अपने मूल अधिकारों के उल्लंघन होने पर सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है। किन्तु न्यायपालिका ने लगभग 30 वर्षों तक अपनी शक्तियों का सीमित रूप से प्रयोग किया और स्वयं अपने ऊपर ऐसी सीमाएं आरोपित की, जिसके कारण आम जनता के लिए न्यायालय तक पहुंचना मुश्किल था।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

अत: न्यायापालिका ने अपनी सीमाओं को तोड़ते हुए तथा परम्परागत नियमों को सरल करते हुए न्याय को आम जनता तक पहुंचाने का प्रयास किया। इन नियमों में हुए परिवर्तन को हम निम्नलिखित रूप से देख सकते हैं –

a) न्यायालय द्वारा 'अधिकारिता' के नियम को शिथिल करना (सुनवाई का नियम), अर्थात् – पहले न्यायालय में केवल वहीं व्यक्ति मुकदमा कर सकता था, जिसके अधिकारों का हनन हुआ हो। किन्तु न्यायपालिका ने इस परम्परागत नियम को बदला तथा यह माना कि कोई भी व्यक्ति या किसी भी सामाजिक हित से जुड़े मामलों को न्यायालय में उठा सकती है। कहने का तात्पर्य है कि न्याय का स्वरूप पहले व्यक्तिगत था, अब सामाजिक हो गया है।

b) पीड़ित पक्ष को स्वयं प्रमाण जुटाकर न्यायालय में यह सिद्ध करना होता था कि उसके किसी अधिकार का हनन हुआ है। किन्तु बाद में सर्वोच्च न्यायालय ने उदारता अपनाते हुए इस नियम को शिथिल किया तथा माना कि यदि पीड़ित व्यक्ति प्रमाण जुटाने में समर्थ नहीं है, तो न्यायालय स्वयं आगे आकर उसकी मदद करेगा।

c) न्यायालय में कोई याचिका देने के लिए उसका निर्धारित प्रारूप और निश्चित औपचारिकताएं थीं। न्यायालय ने इस नियम को बदल दिया तथा पीड़ित पक्ष के द्वारा किसी भी प्रकार के आवेदन को याचिका के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। यहां तक कि न्यायालय ने माना कि किसी पीड़ित व्यक्ति द्वारा भेजा गया पोस्ट कार्ड भी याचिका के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

d) पहले न्यायालय किसी भी मामले में तब तक संज्ञान नहीं लेगा, जब तक कि कोई मामला औपचारिक रूप से उसके सामने न लाया गया हो। किन्तु न्यायिक सक्रियता के माध्यम से न्यायालय ने इस नियम को तोड़कर कई मामलों में स्वयं संज्ञान लेने लगा।

कुल मिलाकर समाज के शोषित, उपेक्षित, निर्धन, निरक्षर तथा असहाय लोगों के साथ हो रहे अत्याचार और अन्याय के निराकरण के लिए न्यायपालिका ने जनहित वाद को मान्यता देकर सामाजिक न्याय स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

2) **संविधान की व्यापक व्याख्या** – विगत कई वर्षों में न्यायालय द्वारा संविधान की कई तरह से मौलिक व्याख्याएं की गईं। इस तरह की मौलिक व्याख्याओं से संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों ने इतना व्यापक अर्थ ग्रहण किया कि कार्यकारिणी को कार्य करने हेतु बाध्य होना पड़ा। उदाहरणार्थ – अनुच्छेद 21 जीवन के अधिकार के अन्तर्गत शिक्षा का अधिकार, काम का अधिकार, एकान्तता का अधिकार, विदेश जाने का अधिकार आदि को शामिल किया गया।

3) **कार्यपालिका में सीधे हस्तक्षेप द्वारा** – न्यायिक सक्रियता के रूप में न्यायपालिका द्वारा कई बार कार्यपालिका के कार्यों में सीधे-सीधे हस्तक्षेप किया गया। उदाहरणार्थ – बच्चों, महिलाओं, जेल में विचाराधीन कैदियों आदि के मामलों में कार्यपालिका को सीधे निर्देश दिए गए।

❐ न्यायिक सक्रियता की आलोचनाएं

भारत में न्यायपालिका ने कार्यकारिणी के क्षेत्राधिकार में जिस तरह हस्तक्षेप किया, कई विचारकों द्वारा उसकी आलोचना की गई, जो निम्नलिखित है –

1) न्यायपालिका का कार्यपालिका में हस्तक्षेप शासन के तीन अंगों के बीच संतुलन को समाप्त कर देता है, जिससे उनमें पारस्परिक सहयोग के स्थान पर निरन्तर टकराव व विरोध की स्थिति उत्पन्न होती है। तीनों अंगों के बीच संतुलन संविधान का मूल ढांचा है।

2) न्यायपालिका का जनहित वाद के नाम पर नीति-विषयक तथा साधारण प्रकार के प्रशासकीय मामलों में हस्तक्षेप करने का कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता है। यदि इसी तरह न्यायपालिका छोटे-छोटे मामलों में हस्तक्षेप करती रही, तो जल्द ही उसके निर्देशों का महत्व समाप्त हो जाएगा।

3) अधिकारिता के नियम को अत्यधिक शिथिल करने के कारण न्यायपालिका पर मुकदमों का भार बढ़ गया।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

4) कई बार न्यायपालिका न्यायिक सक्रियता के नाम पर निर्णय तो दे देती है, किन्तु वह इस बात का अंदाजा नहीं लगा सकती कि किसी निर्णय को कार्यान्वित करने में क्या व्यवहारिक कठनाई हो सकती है।

निसंदेह रूप से न्यायिक सक्रियता के विरुद्ध उठाई गई आपत्तियां कुछ हद तक सत्य हैं, किन्तु इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि जनहित वाद प्रणाली ने सामाजिक न्याय स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। समाज के वे लोग जो निर्धनता, अशिक्षा, अज्ञानता व पिछड़ेपन के कारण अन्याय का शिकार थे, उन्हें जनहित याचिका के माध्यम से न्याय प्राप्त हो सका। यहां उल्लेखनीय है कि नीति-निदेशक सिद्धान्त, जो कि न्याय योग्य नहीं है, उन्हें जनहित वाद के माध्यम से ही न्यायपालिका ने लागू करने का प्रयास किया। किन्तु न्यायपालिका की इस अतिसक्रियता के परिणाम खतरनाक हो सकते हैं। अतः इस संदर्भ में न्यायपालिका को एक संतुलित दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

आकार IAS
Shaping Your Dreams

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

राज्य की कार्यपालिका
The State Executive

भारत का संविधान संघात्मक है। इसमें संघ तथा राज्यों के शासन के संबंध में प्रावधान किया गया है। भारतीय संविधान में राज्य सरकार की उसी तरह कल्पना की गई है, जैसे केन्द्र के लिए। संविधान के भाग 6 में अनुच्छेद 152-237 तक राज्य की कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायापालिका हेतु प्रावधान किए गए हैं। ये प्रावधान जम्मू-कश्मीर को छोड़कर सभी राज्यों के लिए लागू होते हैं। जम्मू कश्मीर की विशेष स्थिति के कारण उसके लिए अलग संविधान है। संघ के समान राज्य की भी शासन पद्धति संसदीय है।

राज्यपाल (Governor)

संविधान के अनुच्छेद 153 के अनुसार प्रत्येक राज्य के लिए एक राज्यपाल होगा। साथ ही एक राज्यपाल एक साथ दो या दो से अधिक राज्यों का राज्यपाल नियुक्त किया जा सकता है। अनुच्छेद 154 के अनुसार राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में निहित होगी और वह इसका प्रयोग स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा करेगा। सरल शब्दों में राज्य की कार्यपालिका का प्रमुख राज्यपाल होता है, जो मंत्रिपरिषद् की सलाह के अनुसार कार्य करता है। कुछ मामलों में राज्यपाल को विवेकाधिकार दिया गया है, ऐसे मामलों में वह मंत्रिपरिषद् की सलाह के बिना भी कार्य करता है।

❐ नियुक्ति

भारतीय संविधान में संघात्मक शासन प्रणाली को अपनाया है। संघात्मक देशों, जैसे - अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया में राज्यपाल जनता द्वारा सीधे चुना जाता है, जबकि कनाडा जैसे संघात्मक देश में राज्यपाल की नियुक्ति संघ द्वारा की जाती है। भारतीय संविधान सभा के समक्ष यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि राज्यपाल की नियुक्ति के संदर्भ में कौन-सी प्रणाली को अपनाया जाए?

इस संदर्भ में संविधान सभा ने केन्द्र द्वारा राज्यपाल के मनोनयन की पद्धति को ही अपनाया, जिसके निम्नलिखित कारण हैं -

1) भारत के विभाजन और देश की आर्थिक व सामाजिक समस्याओं को देखते हुए संविधान सभा एक सशक्त केन्द्र बनाने के पक्ष में थी। संविधान निर्माता चाहते थे कि राज्यपाल कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य में संघीय शासन के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करें। एक निर्वाचित प्रधान की अपेक्षा मनोनीत राज्यपाल एक स्वतंत्र और निष्पक्ष मध्यस्थ निर्याणक की भूमिका निभा सकता है।
2) राज्यपाल केवल संवैधानिक या औपचारिक प्रमुख होता है, इसलिए उसके चुनाव के लिए अतिरिक्त धन, समय व ऊर्जा खर्च करने का कोई औचित्य नहीं था।
3) जनता द्वारा राज्यपाल का चुनाव दलीय हितों व स्वार्थों से प्रभावित होता, जिससे उसका पद निष्पक्ष नहीं बन पाता।
4) जनता द्वारा निर्वाचित राज्यपाल और मुख्यमंत्री में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो सकती है, क्योंकि राज्यपाल जनता का प्रतिनिधि होने के कारण मुख्यमंत्री की प्रमुखता को स्वीकार नहीं करेगा।

स्पष्ट है कि भारत ने कनाडा मॉडल को अपनाया। संविधान के अनुच्छेद 155 के अनुसार राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा प्रत्यक्ष रूप से की जाएगी, किन्तु वास्तव में राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री की सिफारिश पर की जाती है। राज्यपाल की नियुक्ति के संबंध में 2 अन्य परम्पराएं भी जुड़ी हैं -

1) किसी व्यक्ति को उस राज्य का राज्यपाल नहीं नियुक्ति किया जाएगा, जिसका वह निवासी है तथा
2) राज्यपाल की नियुक्ति से पहले संबंधित राज्य के मुख्यमंत्री से विचार-विमर्श किया जाएगा।

यद्यपि इन दोनों परम्पराओं का कुछ मामलों में उल्लंघन भी किया गया है।

❐ योग्यता

अनुच्छेद 157 के अनुसार राज्यपाल पद पर नियुक्त किए जाने वाले व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यता होना चाहिए -

1) वह भारत का नागरिक हो,
2) वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❐ शर्तें

अनुच्छेद 158 के अनुसार राज्यपाल पद के लिए किए निम्नलिखित शर्तें हैं –

1) राज्यपाल अन्य कोई लाभ का पद धारण नहीं करेगा,

2) राज्यपाल संसद व विधानमण्डल का सदस्य नहीं होगा। यदि किसी सदस्य को राज्यपाल नियुक्त किया जाता है, तो पद ग्रहण की तिथि से उसे सदस्यता त्यागनी पड़ेगी।

❐ पदावधि

अनुच्छेद 156 के अनुसार राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत पद धारण करता है। सामान्यत: उसका कार्यकाल 5 वर्ष की अवधि के लिए होता है, किन्तु इस 5 वर्ष की अवधि के समापन के बाद वह तब तक अपने पद पर बना रहता है, जब तक उसका उत्तराधिकारी पद नहीं ग्रहण कर लेता। इसके अलावा राज्यपाल कभी–भी राष्ट्रपति को संबोधित कर अपना त्यागपत्र दे सकता है।

❐ शपथ

अनुच्छेद 159 के अनुसार राज्यपाल को संबंधित राज्य के उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश शपथ दिलाता है।

❐ वेतन एवं भत्ते

राज्यपाल के वेतन एवं भत्ते संसद द्वारा नियत किए जाते हैं। यद्यपि यह उस राज्य की संचित निधि पर भारित होते हैं, जहां वह पदस्थापित होता है। यदि दो या दो से अधिक राज्यों का एक ही राज्यपाल हो, तब उसे दोनों राज्यपालों का वेतन उस अनुपात में दिया जाएगा, जैसा कि राष्ट्रपति निर्धारित करे। राज्यपाल की उपलब्धियां एवं भत्ते उसकी पदावधि के दौरान कम नहीं किए जा सकते हैं।

❐ स्थानांतरण

संविधान में राज्यपालों के स्थानांतरण के लिए कोई व्यवस्था नहीं है, लेकिन राज्यपालों का स्थानांतरण राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है और यह कुछ हद तक परम्परा बन गई है।

❐ उन्मुक्तियां तथा विशेषाधिकार

राज्यपाल को निम्नलिखित विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियां प्राप्त हैं –

1) वह अपने पद की शक्तियों के प्रयोग तथा कर्तव्यों के पालन के लिए किसी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं है।

2) राज्यपाल की पदावधि के दौरान उसके विरूद्ध किसी भी न्यायालय में किसी भी प्रकार की आपराधिक कार्यवाही नहीं प्रारंभ की जा सकती।

3) जब वह पद पर आरूढ़ हो, तब उसकी गिरफ्तारी या कारावास के लिए किसी भी न्यायालय से कोई आदेशिका जारी नहीं की जा सकती।

4) राज्यपाल का पद ग्रहण करने से पूर्व या के पश्चात् उसके द्वारा व्यक्तिगत क्षमता में किए गए कार्य के संबंध में कोई सिविल कार्यवाही करने के पहले उसे 2 माह पूर्व सूचना देनी पड़ती है।

❐ शक्तियां तथा कार्य

जिस प्रकार केन्द्र में कार्यपालिका की शक्ति राष्ट्रपति में निहित है, उसी प्रकार राज्य में कार्यपालिका की शक्ति राज्यपाल में निहित होती है। राज्यपाल की शक्तियां तथा कार्य निम्नलिखित हैं –

1) **कार्यपालिका संबंधी कार्य** – अनुच्छेद 154 के अनुसार राज्यपाल के पास कार्यपालिका संबंधी निम्नलिखित कार्य हैं –

a) राज्यपाल राज्य सरकार के प्रशासन का अध्यक्ष है तथा राज्य की कार्यपालिका संबंधी शक्ति का प्रयोग वह अपने अधीनस्थ प्राधिकारियों के माध्यम से करता है। वह सरकार की कार्यवाही संबंधी नियम बनाता है तथा मंत्रियों में कार्यों का विभाजन करता है।

b) राज्यपाल, मुख्यमंत्री तथा मुख्यमंत्री की सलाह से उसके मंत्रिपरिषद् के सदस्यों को नियुक्त करता है तथा उन्हें पद एवं गोपनीयता की शपथ दिलाता है। इसके अलावा वह मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ, झारखण्ड एवं उड़ीसा राज्यों में एक जनजातीय कल्याण मंत्री की नियुक्त करेगा।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

c) राज्यपाल, राज्य के उच्च अधिकारियों, जैसे – महाधिवक्ता, राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति करता है तथा राज्य के उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में राष्ट्रपति को परामर्श देता है।

d) राज्यपाल का यह अधिकार है कि वह राज्य के प्रशासन के संबंध में मुख्यमंत्री से सूचना प्राप्त करें। यदि किसी मंत्री ने कोई निर्णय लिया हो और मंत्री परिषद् ने उस पर संज्ञान न लिया हो, तो राज्यपाल मुख्यमंत्री से उस मामले पर विचार करने की मांग कर सकता है।

e) राज्य में संवैधानिक तंत्र विफल होने पर राज्यपाल राष्ट्रपति से राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश करता है। राष्ट्रपति शासन लागू होने पर राज्यपाल केन्द्र सरकार के अभिकर्त्ता के रूप में कार्य करता है।

f) राज्यपाल राज्य के विश्वविद्यालयों का कुलाधिपति होता है तथा उपकुलपतियों को भी नियुक्त करता है।

2) विधायी अधिकार – संविधान द्वारा राज्यपाल को व्यापक विधायी शक्तियां प्रदान की गई हैं, जिन्हें निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है –

➢ **विधानमण्डल से संबंधित शक्ति**

a) राज्यपाल राज्य विधानमण्डल के सत्र का आह्वान, सत्रावसान तथा विघटन कर सकता है।

b) राज्यपाल आंग्ल–भारतीय समुदाय के एक व्यक्ति का राज्य विधानसभा के सदस्य के रूप में मनोनीत कर सकता है।

c) राज्यपाल राज्य विधानपरिषद् की कुल सदस्य संख्या के 1/6 सदस्यों को जिनका विज्ञान, साहित्य, कला, समाजसेवा, सहकारी आंदोलन आदि के क्षेत्र में विशेष ज्ञान, अनुभव या योगदान हो, को मनोनीत कर सकता है।

d) यदि राज्य विधानमण्डल के किसी सदस्य की अयोग्यता का प्रश्न उत्पन्न होता है, तो अयोग्यता संबंधी विवाद का निर्धारण राज्यपाल निर्वाचन आयोग से परामर्श करके करता है।

e) वह सामान्य आम चुनाव के बाद प्रारंभ होने वाले तथा प्रत्येक वर्ष के प्रथम विधानमण्डल के प्रथम सत्र को संबोधित करता है तथा सदनों को अपना संदेश भी भेज सकता है।

f) वह राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित किसी विधेयक पर हस्ताक्षर करता है और राज्यपाल के हस्ताक्षर के बाद ही विधेयक अधिनियम के रूप में प्रवृत्त होता है।

g) वह विधानमण्डल के सदनों को विचाराधीन विधेयकों या अन्य किसी मुद्दे पर संदेश भेज सकता है।

h) विभिन्न आयोगों, उच्च तथा स्वायत्त संस्थाओं के वार्षिक प्रतिवेदन राज्यपाल को सौंपे जाते हैं और वह उन्हें विचारार्थ राज्य विधानसभा के समक्ष प्रस्तुत करता है।

i) यदि विधानसभा के अध्यक्ष व उपाध्यक्ष दोनों के पद रिक्त हो, तो वह विधानसभा के किसी भी सदस्य को सदन की अध्यक्षता सौंप सकता है। इसी प्रकार विधानपरिषद् के सभापति व उपसभापति दोनों का पद रिक्त हो, तो वह विधानपरिषद् के किसी भी सदस्य को सदन का सभापति बना सकता है।

➢ **वीटो शक्ति**

विधानमण्डल द्वारा पारित कोई विधेयक तब अधिनियम बनता है, जब राज्यपाल उसे अपनी सहमति दे दें। संविधान के अनुच्छेद 200 के अनुसार जब कोई विधेयक राज्यपाल की सहमति के लिए प्रस्तुत किया जाता है, तो उसके पास 3 विकल्प होते हैं –

a) वह विधेयक पर अपनी स्वीकृति दे सकता है,

b) वह विधेयक पर अपनी स्वीकृति को सुरक्षित रख सकता है,

c) वह विधेयक को (धन विधेयक को छोड़कर) कुछ सुझावों के साथ पुनर्विचार हेतु विधानमण्डल को लौटा सकता है। यदि विधानमण्डल उसके द्वारा सुझाए गए संशोधनों के साथ या उन संशोधनों के बिना उस विधेयक को पुन:पारित कर देती है, तो उस पर राज्यपाल अनुमति देना के लिए बाध्य है।

d) वह किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचार हेतु सुरक्षित रख सकता है। वह निम्नलिखित मामलों में इस शक्ति का प्रयोग करता है –

i) व्यक्तिगत सम्पत्ति के अनिवार्य अधिग्रहण से संबंधित विधेयक,

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

ii) उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में कमी से संबंधित विधेयक,

iii) संसद द्वारा निर्मित कानून के अधीन आवश्यक घोषित वस्तु पर करारोपण से संबंधित विधेयक,

iv) समवर्ती सूची में उल्लिखित विषयों से संबंधित विधेयक (जब संसद के कानून से संघर्ष की संभावना हो), तथा

v) अन्य कोई विधेयक, जिसके कारण केन्द्रीय सरकार या अन्य राज्यों की सरकार से विवाद होने की संभावना हो।

➢ **अध्यादेश जारी करने से संबंधित शक्ति**

संविधान के अनुच्छेद 213 के तहत् राज्यपाल को अध्यादेश जारी करने की शक्ति प्रदान की गई है। अध्यादेश से संबंधित तथ्यों को निम्नलिखित रूप से देख सकते हैं –

a) जब विधानमण्डल के दोनों अथवा दोनों में से कोई भी एक सदन सत्र में न हो और राज्यपाल को यह विश्वास हो जाए कि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है, जिसके अनुसार अविलम्ब कार्यवाही करना आवश्यक है, तो राज्यपाल द्वारा अध्यादेश जारी किया जा सकता है।

b) अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होता है, जो विधानमण्डल द्वारा पारित अधिनियम का होता है।

c) अध्यादेश को विधानमण्डल की पुनः बैठक होने पर 6 सप्ताह के अंदर अनुमोदन न किया गया, तो अध्यादेश समाप्त हो जाता है। यहां उल्लेखनीय है कि दो सत्रों के बीच अधिकतम 6 माह का अन्तर हो सकता है। अतः कोई अध्यादेश बिना विधानमण्डल के अनुमोदन के 6 माह 6 सप्ताह तक जीवित रह सकता है।

d) राज्यपाल जब चाहे अध्यादेश को वापस ले सकता है।

e) अध्यादेश के द्वारा संविधान में कोई संशोधन नहीं किया जा सकता है।

f) अध्यादेश केवल उन्हीं विषयों पर जारी किया जा सकता है, जिन पर विधानमण्डल कानून बना सकती है।

g) अध्यादेश की भी वही संवैधानिक सीमाएं होती हैं, जो विधानमण्डल द्वारा बनाए गए किसी कानून की होती हैं, जैसे – अध्यादेश किसी भी मौलिक अधिकार को छीन नहीं सकता है।

3) वित्तीय शक्तियां – संविधान द्वारा राज्यपाल को निम्नलिखित वित्तीय शक्तियां प्रदान की गई हैं –

a) धन विधेयक तथा वित्त विधेयक राज्यपाल की सिफारिश से ही राज्य विधानसभा में पेश किया जा सकता है।

b) राज्य की आकस्मिक निधि से व्यय राज्यपाल की अनुमति से ही किया जा सकता है।

c) राज्यपाल राज्य के वित्तमंत्री के माध्यम से राज्य विधानसभा में राज्य का वार्षिक बजट पेश कराता है।

d) किसी प्रकार के अनुदान की मांग को या करों के प्रस्ताव को राज्यपाल के अनुमोदन से विधानसभा में पेश किया जाता हैं।

5) न्यायिक शक्तियां – संविधान द्वारा राज्यपाल को निम्नलिखित न्यायिक शक्तियां प्रदान की गई हैं –

a) वह जिला न्यायाधीशों और अन्य न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति स्थानान्तरण तथा पदोन्नति से संबंधित मामलों का निर्णय करता है। राज्यपाल इस शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय के परामर्श से करता है [अनुच्छेद 233]।

b) वह न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किए गए अपराधियों को क्षमा करने, उनके दंड को कम करने या निलम्बन करने या विलम्बित करने की शक्ति रखता है, लेकिन इस शक्ति का प्रयोग उसके द्वारा उसी सीमा तक किया जा सकता है, जिस सीमा तक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है [अनुच्छेद 161]।

❐ संवैधानिक स्थिति

राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति को 2 संदर्भों में देखा जा सकता है – राज्य सरकार के संवैधानिक प्रमुख के रूप में और केन्द्र के प्रतिनिधि के रूप में।

◆ **राज्य सरकार के संवैधानिक प्रमुख के रूप में**

राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति को समझने के लिए अनुच्छेद 154, 163, 164 एवं 200 को समझना आवश्यक है। अनुच्छेद 154 के अनुसार राज्य की कार्यपालिका की शक्ति राज्यपाल में निहित होगी और वह इसका प्रयोग इस संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा करेगा। इस संबंध में एक मौलिक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या राज्यपाल के लिए प्रत्येक मामले में

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

मंत्रिपरिषद् का परामर्श लेना आवश्यक है या कुछ ऐसे कार्य भी हो सकते हैं, जिसमें राज्यपाल अपने विवेकानुसार कार्य करे। उल्लेखनीय है कि भारतीय संविधान राज्यपाल को **परिस्थितिजन्य विवेकीय शक्ति** (Situational Discretion Power) के साथ-साथ **संवैधानिक विवेकीय शक्ति** (Constituational Discretion Power) भी प्रदान करता है।

अनुच्छेद 163(1) में कहा गया है कि जिन बातों में संविधान द्वारा राज्यपाल से यह अपेक्षित है कि वह अपने कृत्यों को अपने विवेकानुसार करें, उन बातों को छोड़कर राज्यपाल को अपने कृत्यों का प्रयोग करने में सहायता व सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रधान मुख्यमंत्री होगा। अनुच्छेद 163(2) के अनुसार यदि कोई प्रश्न उठता है कि कोई विषय ऐसा है या नहीं, जिसके संबंध में राज्यपाल से अपेक्षित है कि वह अपने विवेकानुसार कार्य करे, तो राज्यपाल का अपने विवेकानुसार किया गया निर्णय अंतिम होगा।

➢ **परिस्थितिजन्य विवेकीय शक्ति**

a) अनुच्छेद 164 के अनुसार राज्यपाल मुख्यमंत्री की नियुक्ति करेगा। वह ऐसे व्यक्ति को मुख्यमंत्री को चुनता है, जो विधानसभा में बहुमत दल के नेता हो। किन्तु यदि किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो, तो राज्यपाल अपने स्व-विवेक का प्रयोग कर सकता है। वह ऐसे व्यक्ति को मख्यमंत्री नियुक्त कर सकता है, जो उसके अनुसार विधानसभा के बहुमत का विश्वास प्राप्त करने की स्थिति में हो और एक स्थायी सरकार बना सके।

b) यदि मुख्यमंत्री की कार्यकाल के दौरान आकस्मिक मृत्यु हो जाती है, तो ऐसी स्थिति में राज्यपाल किसी ऐसे व्यक्ति को नियुक्त कर सकता है, जो उसकी राय में विधानसभा का विश्वास प्राप्त करने में सक्षम हो।

c) वह मंत्रिपरिषद् को विघटित कर सकता है, यदि वह सदन में विश्वास मत सिद्ध न कर सके या उसके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाए।

d) वह विधानसभा को विघटित कर सकता है, यदि किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो और कोई भी दल सरकार बनाने की स्थिति में न हो।

e) नई विधानसभा तथा सरकार के गठन तक पुरानी मंत्रिपरिषद् ही राज्यपाल को सलाह देती है। अत: इस समय राज्यपाल को विशेष ध्यान रखना होता है कि वह किसी ऐसी सिफारिश को स्वीकार न करे, जो चुनाव में उस दल को लाभ पहुंचाती हो।

➢ **संवैधानिक विवेकीय शक्ति**

a) अनुच्छेद 200 के तहत् राज्यपाल विधानमण्डल द्वारा पारित विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकता है और यदि चाहे तो राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित कर सकता है।

b) अनुच्छेद 356 के अनुसार राज्य में संवैधानिक तंत्र विफल हो जाने पर राष्ट्रपति को राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर सकता है।

c) वह मुख्यमंत्री से प्रशासन से संबंधित व प्रस्तावित विधेयक से संबंधित विषयों पर जानकारी मांग सकता है।

d) अनुच्छेद 371 के विभिन्न खण्डों में कुछ राज्यों के राज्यपाल को विवेकाधीन शक्तियां दी गई हैं, जिसे राज्यपाल का विशेष उत्तरदायित्व कहा गया है।

e) 5वीं अनुसूची के तहत् अनुसूचित क्षेत्रों पर अधिकारिता रखने वाले राज्यपालों को अधिकार दिया गया है कि वे वहां क्षेत्र की शांति व सुशासन के लिए विनियमन बना सकेंगे।

f) 6वीं अनुसूची के तहत् असम, मेघालय, त्रिपुरा एवं मिजोरम के संबंध में राज्यपालों को कुछ विवेकाधीन शक्ति प्रदान की गई है।

• **केन्द्र के प्रतिनिधि के रूप में**

राज्यपाल की नियुक्ति के लिए जिस प्रणाली को अपनाया गया है, वह इस बात को स्पष्ट करती है कि राज्यपाल राज्य के केन्द्रीय शासन के प्रतिनिधि के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। चूंकि भारत एक संघात्मक व्यवस्था के साथ-साथ एक सशक्त केन्द्र की भी स्थापना करना चाहता था, ताकि राष्ट्री की एकता एवं अखण्डता को कोई खतरा न हो। आपातकालीन में संविधान का स्वरूप एकात्मक हो जाता है तथा राज्यपाल केन्द्र के निर्देशानुसार कार्य करता है। इसके अलावा राज्यपाल केन्द्र के प्रतिनिधि के रूप में

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

निम्नलिखित कार्य करता है -

1) अनुच्छेद 256 एवं 257 के अनुसार केन्द्रीय सरकार राज्य की कार्यपालिकाओं को आवश्यक निर्देश दे सकती है। केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों को राष्ट्रीय महत्व की सड़कों तथा संचार साधनों के रक्षा का भार सौंपा जा सकता है।

2) अनुच्छेद 258 के अनुसार केन्द्र सरकार अपने कुछ प्रशासनिक कार्य भी राज्य सरकार को हस्तान्तरित कर सकती है। राज्यपाल का यह कर्तव्य है कि वह राज्य सरकारों को इन निर्देशों का पालन करवाए।

3) केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि के रूप में राज्यपाल का एक महत्वपूर्ण कार्य राज्य प्रशासन के संबंध में समय-समय पर राष्ट्रपति को रिपोर्ट भेजना है। यदि राज्य में संविधान के अनुसार कार्य नहीं हो रहा है, तो राज्यपाल राष्ट्रपति से राष्ट्रपति शासन लगाने की सिफारिश करता है।

4) अनुच्छेद 200 के अनुसार राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित किए गए किसी विधेयक को राज्यपाल राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रख सकता है।

मुख्यमंत्री (Chief Minister)

भारतीय संविधान द्वारा सरकार की संसदीय प्रणाली को अपनाया गया है, जिसमें राज्यपाल राज्य का कार्यपालिका प्रमुख होता है, जबकि मुख्यमंत्री वास्तविक प्रमुख होता है। जिस प्रकार केन्द्र में प्रधानमंत्री की संवैधानिक स्थिति है, ठीक उसी तरह राज्य में मुख्यमंत्री की संवैधानिक स्थिति होती है।

❐ चयन तथा नियुक्ति

मुख्यमंत्री के चयन तथा नियुक्ति के संबंध में संविधान के अनुच्छेद 164 में केवल यह प्रावधान किया गया है कि मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा। संसदीय परम्परा के अनुसार राज्यपाल उस व्यक्ति को मुख्यमंत्री नियुक्त करता है, जो विधानसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता हो। जो व्यक्ति विधानसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता चुना जाता है, वह राज्यपाल से मिलकर सरकार बनाने का दावा करता है। इसके बाद राज्यपाल उस व्यक्ति को मुख्यमंत्री पद पर नियुक्त करता है।

यदि आम चुनाव में किसी भी दल को बहुमत प्राप्त नहीं होता, तो ऐसी स्थिति में राज्यपाल अपने विवेक का प्रयोग करता है। वह विधानसभा में सबसे बड़े दल के नेता या किसी ऐसे व्यक्ति, जिसे कई दलों का समर्थन प्राप्त हो, को मुख्यमंत्री पद पर नियुक्त करता है तथा उससे यह अपेक्षा करता है कि वह एक माह के अन्दर विधानसभा में अपना बहुमत साबित करे।

❐ मुख्यमंत्री पद के लिए योग्यताएं (Qualifications for the Prime Minister)

मुख्यमंत्री की योग्यता के सम्बन्ध में संविधान में कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं किया गया है, लेकिन इतना अवश्य कहा गया है कि मुख्यमंत्री विधानसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होगा। किन्तु यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि उसे अनिवार्य रूप से विधानसभा का सदस्य ही होना चाहिए। स्पष्ट है कि मुख्यमंत्री को केवल विधानसभा का विश्वास मत हासिल होना चाहिए, वह विधानपरिषद् का भी सदस्य हो सकता है।

इसके अलावा यदि कोई ऐसा व्यक्ति मुख्यमंत्री नियुक्त किया जाता है, (जिसे विधानसभा का विश्वास मत हासिल हो), जो किसी भी सदन का सदस्य न हों, तो उसे 6 माह की समयावधि में विधानमण्डल के किसी भी सदन का सदस्य बनना अनिवार्य है अन्यथा 6 माह बाद वह मुख्यमंत्री के पद के योग्य नहीं रहेगा।

❐ पदावधि व शपथ (Tenure & Oath))

समान्यतया मुख्यमंत्री अपने पद ग्रहण की तिथि से विधानसभा के अगले चुनाव के बाद नए मुख्यमंत्री की नियुक्ति तक पद पर बना रहता है, लेकिन इसके पहले भी वह

1) राज्यपाल को त्यागपत्र देकर पदमुक्त हो सकता है,

2) विधानसभा में अविश्वास प्रस्ताव पारित होने के कारण राज्यपाल को त्यागपत्र देकर, या

3) राज्यपाल द्वारा बर्खास्त किया जा सकता है।

मुख्यमंत्री को अपने पद ग्रहण करने से पूर्व राज्यपाल तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिए गए प्रारूप के अनुसार **पद और गोपनीयता** की शपथ दिलाता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❐ कार्य, शक्तियां व दायित्व (Function, Powers & Duty)

मुख्यमंत्री के कार्य व शक्तियां निम्नलिखित हैं –

◆ राज्यपाल के संबंध में

राज्यपाल के संबंध में मुख्यमंत्री निम्नलिखित कर्तव्यों का निर्वहन करता है –

1) मुख्यमंत्री का यह कर्तव्य है कि वह केन्द्र सरकार के प्रशासन से संबंधित सभी निर्णयों तथा प्रस्तावित विधेयकों की जानकारी राज्यपाल को प्रेषित करें।

2) यदि राज्यपाल द्वारा राज्य सरकार के प्रशासन या किसी प्रस्तावित विधेयक से संबंधित जानकारी मांगी जाती है, तो मुख्यमंत्री का कर्तव्य होगा कि उसे ऐसी जानकारी दें।

3) यदि किसी मंत्री ने किसी विषय पर कोई निर्णय कर लिया है, किन्तु मंत्रिपरिषद् ने उस पर विचार नहीं किया है, तो राज्यपाल की अपेक्षा करने पर मुख्यमंत्री का कर्तव्य होगा कि उक्त निर्णय को मंत्रिपरिषद् के समक्ष विचार के लिए रखे।

4) मुख्यमंत्री राज्यपाल को विभिन्न संवैधानिक पदों की नियुक्ति के संबंध में परामर्श देता है।

◆ मंत्रिपरिषद् के संबंध में

मंत्रिपरिषद् के अध्यक्ष के रूप में मुख्यमंत्री के निम्नलिखित कार्य हैं –

1) वह राज्यपाल को सिफारिश करता है कि किन व्यक्तियों को मंत्री नियुक्त किया जाना है।

2) वह मंत्रियों को विभिन्न मंत्रालयों का आवंटन करता है तथा उसमें फेरबदल करता है।

3) वह राज्यपाल को किसी मंत्री को बर्खास्त करने या त्यागपत्र देने की सलाह दे सकता है।

4) वह सभी मंत्रियों की गतिविधियों को नियंत्रित व निर्देशित करता है तथा विभिन्न मंत्रालयों में समन्वय स्थापित करता है।

5) वह मंत्रिपरिषद् की बैठक की अध्यक्षता करता है।

6) वह राज्यपाल व मंत्रिपरिषद् के मध्य एक कड़ी के रूप में कार्य करता है।

◆ विधानमण्डल के संबंध में

विधानमण्डल के संबंध में मुख्यमंत्री के निम्नलिखित कार्य हैं –

1) वह राज्यपाल को विधानमण्डल का सत्र आहूत करने एवं सत्रावासान करने की सलाह देता है।

2) मुख्यमंत्री सरकार के मुख्य प्रवक्ता के रूप में कार्य करता है, वह विधानमण्डल में समक्ष सरकार की नीति को स्पष्ट करता है और विपक्षियों के प्रश्नों का उत्तर भी देता है।

3) वह विधानसभा का विघटन करने की सिफारिश राज्यपाल से कर सकता है। सामान्य परिस्थितियों में राज्यपाल को उसकी सिफारिश माननी होती है।

❐ अन्य कार्य एवं शक्तियां

उपरोक्त शक्तियों एवं कार्यों के अलावा मुख्यमंत्री के निम्नलिखित कार्य होते हैं –

1) वह राज्य योजना बोर्ड का अध्यक्ष होता है।

2) वह अन्तर्राजीय परिषद्, नीति आयोग एवं राष्ट्रीय विकास परिषद् का सदस्य होता है।

3) वह राज्य सरकार का मुख्य प्रवक्ता होता है।

4) आपातकाल के दौरान राजनीतिक स्तर पर वह मुख्य प्रबंधक होता है।

राज्य मंत्रिपरिषद् (State Council of Ministers)

भारत का संविधान केन्द्र की तरह राज्य में भी संसदीय व्यवस्था का प्रावधान करता है, जिसमें राज्यपाल औपचारिक प्रमुख होता है तथा मुख्यमंत्री व उसकी परिषद् वास्तविक कार्यपालिका होती है। मंत्रिपरिषद् पद्धति को उत्तरदायी सरकार भी कहते हैं।

❐ मंत्रियों की नियुक्ति (Appointment of Ministers)

संविधान के अनुच्छेद 164 के अनुसार मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राज्यपाल, मुख्यमंत्री

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

की सलाह पर करेगा। इसका तात्पर्य है कि राज्यपाल केवल उन्हीं व्यक्तियों को ही मंत्री नियुक्त कर सकता है, जिनकी सिफारिश मुख्यमंत्री करता है। इस संबंध में राज्यपाल के पास कोई विवेकाधिकार नहीं है। उल्लेखनीय है कि राज्यपाल द्वारा छत्तीसगढ़, झारखण्ड, मध्य प्रदेश एवं उड़ीसा के लिए एक आदिवासी मंत्री की नियुक्ति भी की जाएगी।

❒ योग्यता (Eligibility)

राज्यपाल मुख्यमंत्री की सलाह पर विधानसभा अथवा विधानपरिषद् के किसी भी सदस्य को मंत्री बना सकता है। अत: मंत्री के लिए यह आवश्यक है कि वह विधानसभा के किसी सदन का सदस्य हो। उल्लेखनीय है कि यदि किसी ऐसे व्यक्ति को मंत्री नियुक्त किया जाता है, जो विधानसभा का सदस्य नहीं है, तो उसे 6 माह की समयावधि में विधानमण्डल के किसी भी सदन का सदस्य बनना अनिवार्य है।

❒ कार्यकाल, पदरिक्ति व शपथ (Tenure, Vacancy & Oath)

मंत्रिपरिषद् तब तक अपने पद पर बना रहता है, जब तक उसे विधानसभा में बहुमत प्राप्त रहता है तथा विधानसभा के नए चुनाव के बाद नए मंत्रिपरिषद् का गठन नहीं हो जाता। संविधान के अनुच्छेद 164(1) के अनुसार मंत्री राज्यपाल के प्रसादपर्यंत पद धारण करेंगे, अर्थात् - उनका कोई कार्यकाल नहीं होता है। मुख्यमंत्री का किसी मंत्री में जब तक विश्वास है, तब तक वह पद को धारण किए रहता है। इसके अलावा मृत्यु होने पर, त्यागपत्र देने पर, राज्यपाल द्वारा हटाए जाने पर या किसी भी कारणवश विधानसभा की सदस्यता समाप्त होने पर मंत्री का पदरिक्त हो सकता है। साथ ही राज्यपाल मंत्रियों को **पद एवं गोपनीयता की शपथ** दिलवाता है।

❒ मंत्रिपरिषद् का आकार (Size of Council of Ministers)

मूल संविधान में मंत्रिपरिषद् में सदस्यों (मंत्रियों) की संख्या निर्धारित नहीं थी। मुख्यमंत्री अपने विवेकाधिकार के आधार पर मंत्रिपरिषद् के आकार को सुनिश्चित करता था, परन्तु 91वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2004 के द्वारा यह निर्धारित किया गया है कि राज्य मंत्रिपरिषद् में मंत्रियों की कुल संख्या (मुख्यमंत्री सहित) विधानसभा के कुल सदस्य संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी, किन्तु साथ ही मंत्रियों की न्यूनतम संख्या (मुख्यमंत्री सहित) 12 से कम नहीं होगी।

❒ मंत्रिपरिषद् का सामूहिक तथा व्यक्तिगत उत्तरदायित्व (Collective & Individual Responsibility Council of Ministers)

संविधान के अनुच्छेद 164 मंत्रियों के सामूहिक तथा व्यक्तिगत उत्तरदायित्वों को सुनिश्चित करते हैं। मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से विधानसभा के प्रति तथा व्यक्तिगत रूप से राज्यपाल के प्रति उत्तरदायी होती है, क्योंकि वह राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त अपना पद धारण करती है। इस प्रकार हर मंत्री का दोहरा उत्तरदायित्व होता है। वह अपने विभाग के कार्यों एवं निर्णयों के लिए व्यक्तिगत रूप से राज्यपाल के प्रति तथा अन्य मंत्रियों के विभागों के कार्यों एवं निर्णयों के लिए अन्य मंत्रियों के साथ सामूहिक रूप से विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होता है। यदि विधानसभा किसी मंत्री के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित कर दे या उस विभाग से संबंधित विधेयक को रद्द कर दे, तो समस्त मंत्रिपरिषद् को त्यागपत्र देना पड़ता है। वस्तुत: सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त मंत्रिपरिषद् को संगठित होकर कार्य करने के लिए प्रेरित करता है।

व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का अर्थ है कि कोई मंत्री अपने विभाग की किसी गड़बड़ी या गलत निर्णय का दोष अपने अधीनस्थ अधिकारी या कर्मचारी पर लगाकर बच नहीं सकता है, वह अपने विभाग के समस्त कार्यों एवं निर्णयों के लिए समस्त रूप से उत्तरदायी होगा। यहां उल्लेखनीय है कि यदि कोई मंत्री मंत्रिपरिषद् के किसी निर्णय से असहमत है, तो उसे त्यागपत्र देना होगा।

❒ मंत्रिपरिषद् के कार्य एवं अधिकार (Function & Rights of Council of Ministers)

कैबिनेट मंत्री एवं स्वतंत्र प्रभार का राज्य मंत्री अपने विभाग का प्रधान होता है। वह अपने मंत्रालय की देखरेख के अलावा उसके संबंधित महत्वपूर्ण निर्णय भी लेता है। उसके निर्णय आम जनता के हित में लिए जाते हैं तथा वे राज्य के सर्वांगीण विकास में सहायक होते हैं। इसके अलावा यह राज्यपाल की सलाहकारी संस्था है तथा इसकी सलाह पर राज्यपाल बाध्यकारी है।

प्रत्येक मंत्री का यह अधिकार है कि वह विधानसभा के किसी सदन में, किसी संयुक्त बैठक में और विधानसभा की किसी समिति में, जिसमें उसका नाम सदस्य के रूप में दिया गया है, बोलने और उसकी कार्यवाहियों में भाग ले। किन्तु वह मतदान वहीं पर कर सकता है, जिसका सदन का वह सदस्य है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

राज्य का महाधिवक्ता (The Advocate General for the State)

संविधान के अनुच्छेद 165 में राज्य के महाधिवक्ता की व्यवस्था की गई है। वह राज्य का सर्वोच्च कानूनी अधिकारी होता है। इस तरह वह भारत के महान्यायवादी का अनुपूरक होता है।

❐ नियुक्ति व योग्यता

प्रत्येक राज्य में एक महाधिवक्ता होता है। अनुच्छेद 165 के अनुसार इसकी नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है। राज्यपाल उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने की योग्यता रखने वाले किसी व्यक्ति को ही राज्य का महाधिवक्ता नियुक्त करेगा।

❐ पदावधि व वेतन

संविधान में महाधिवक्ता का कार्यकाल निश्चित नहीं किया गया है, न ही उसे हटाने की व्यवस्था का वर्णन किया गया है। महाधिवक्ता राज्यपाल के प्रसादपर्यंत अपना पद धारण करता है। इसके अलावा वह राज्यपाल को त्यागपत्र देकर भी कार्यमुक्त हो सकता है। सामान्यत: वह अपना त्यागपत्र तब देता है, जब सरकार भी अपना त्यागपत्र देती या विघटित हो जाती है। महाधिवक्ता का वेतन-भत्तों का निर्धारण राज्यपाल द्वारा तय किया जाता है।

❐ कार्य एवं शक्तियां

महाधिवक्ता राज्य का सर्वप्रथम विधि अधिकारी होता है। उसके निम्नलिखित कर्तव्य होते हैं -

1) राज्य सरकार को विधि संबंधी ऐसे विषयों पर सलाह दे, जो राज्यपाल द्वारा उसे सौंपे गए हो।

2) विधिक स्वरूप के ऐसे अन्य कर्तव्यों का पालन करें, जो राज्यपाल द्वारा उसे समय-समय पर सौंपे गए हो।

3) संविधान या किसी अन्य विधि द्वारा प्रदान किए गए कृत्यों का निर्वहन करना।

अपने कार्य संबंधी कर्तव्यों के तहत् महाधिवक्ता को राज्य के किसी भी न्यायालय के समक्ष सुनवाई का अधिकार है। इसके अतिरिक्त महाधिवक्ता को राज्य के विधानमण्डल के किसी भी सदन में या उसकी किसी समिति, जिसमें उसका नाम सदस्य के रूप में अधिकृत है, में बोलने और उसकी कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार है, किन्तु उसे मत देने का अधिकार नहीं होता है।

राज्य विधानमण्डल
State Legislative Assembly

संविधान के अनुच्छेद 168 के अनुसार प्रत्येक राज्य के लिए एक विधानमण्डल होगी, जो राज्यपाल और दो सदनों से मिलकर बनेगी। उच्च सदन विधानपरिषद् तथा निम्न सदन विधानसभा कहलाती है। इस प्रकार राज्य विधानमण्डल राज्यपाल, विधानपरिषद् तथा विधानसभा से मिलकर गठित होती है। वर्तमान में कुल 6 राज्यों उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक तथा जम्मू-कश्मीर में द्वि-सदनीय विधानमण्डल है, जबकि शेष सभी राज्यों में एक-सदनीय विधानमण्डल है।

ध्यातव्य है कि विधानपरिषद् की स्थापना या समाप्ति की प्रक्रिया संविधान के अनुच्छेद 169 में दी गई है, जो निम्नलिखित है -

1) विधानपरिषद् की स्थापना या समाप्ति संबंधी प्रस्ताव सर्वप्रथम विधानसभा द्वारा लाया जाएगा,

2) यह प्रस्ताव विधानसभा की कुल सदस्य संख्या के बहुमत तथा उपस्थित व मतदान करने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से पारित होगा,

3) विधानसभा में यह प्रस्ताव पारित होने के पश्चात् इसे संसद द्वारा साधारण बहुमत से पारित किया जाएगा,

4) इस प्रकार संसद द्वारा पारित यह प्रस्ताव संविधान संशोधन नहीं माना जाएगा।

विधानमण्डल की संरचना (Structure of Legislative Assembly)

❐ विधानपरिषद्

विधानपरिषद् राज्य विधानमण्डल का उच्च सदन है। संविधान के अनुच्छेद 171 के अनुसार किसी राज्य में विधानपरिषद् के सदस्यों की अधिकतम संख्या विधानसभा के कुल सदस्यों की 1/3 से अधिक नहीं होगी, किन्तु किसी भी स्थिति में 40 से कम नहीं होगी। यद्यपि जम्मू-कश्मीर इसका अपवाद है, जहां विधानपरिषद् के सदस्यों की कुल संख्या 36 है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

विभिन्न राज्यों में विधानपरिषद्ों की सदस्य संख्या निम्नलिखित है –

1) उत्तर प्रदेश में 100। **2)** महाराष्ट्र में 78। **3)** बिहार में 75।

4) कर्नाटक में 63। **5)** आन्ध्र प्रदेश में 46। **6)** जम्मू-कश्मीर 36।

उल्लेखनीय है कि मध्य प्रदेश के संबंध में विधानपरिषद् का केवल प्रावधान है, लेकिन उसका आज तक गठन नहीं किया गया।

❐ विधानसभा

विधानसभा की संरचना का उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 170 एवं 333 के अन्तर्गत किया गया है। अनुच्छेद 170 के अनुसार किसी राज्य की विधानसभा में सदस्यों की संख्या 500 से अधिक और 60 से कम नहीं होगी। अनुच्छेद 333 के अनुसार यदि राज्यपाल की यह राय में विधानसभा में आंग्ल-भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है तो वह विधानसभा में एक सदस्य को मनोनीत कर सकता है।

निर्वाचन प्रणाली (Election Procedure)

❐ विधानपरिषद्

विधानपरिषद् के सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होता है। कुल 4 प्रकार के निर्वाचक मण्डल निश्चित अनुपात में विधानपरिषद् के सदस्यों का चुनाव करते हैं तथा शेष सदस्य राज्यपाल द्वारा मनोनीत किए जाते हैं, जो निम्नलिखित हैं –

1) **विधानसभा का निर्वाचक मण्डल** – विधानपरिषद् के 1/3 सदस्यों का निर्वाचन विधानसभा सदस्यों के निर्वाचक मण्डल द्वारा किया जाता है।

2) **स्थानीय निकायों का निर्वाचक मण्डल** – विधानपरिषद् के 1/3 सदस्यों का निर्वाचन नगरपालिकाओं, जिला पंचायतों एवं अन्य स्थानीय स्वायत्त शासन की संस्थाओं के सदस्यों से निर्मित निर्वाचक मण्डल द्वारा चुने जाते हैं।

3) **अध्यापकों का निर्वाचक मण्डल** – विधानपरिषद् के 1/12 सदस्यों का निर्वाचन उन शिक्षकों द्वारा किया जाता है, जो माध्यमिक विद्यालयों में कम से कम 3 वर्ष से शिक्षण कार्य कर रहे हो।

4) **स्नातकों का निर्वाचक मण्डल** – विधानपरिषद् के 1/12 सदस्यों का निर्वाचन उन स्नातकों द्वारा किया जाता है, जो कम से कम 3 वर्ष से स्नातक हो।

5) **राज्यपाल द्वारा मनोनीत** – विधानपरिषद् के 1/6 सदस्यों का मनोनयन राज्यपाल द्वारा ऐसे व्यक्तियों में से किया जाता है, जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला, समाजसेवा तथा सहकारी आन्दोलन के क्षेत्र में विशेष ज्ञान या अनुभव हो।

उल्लेखनीय है कि जनप्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 2003 के अनुसार राज्य की विधानपरिषद्ों के चुनाव के लिए खुली मतदान प्रणाली लागू करने का प्रावधान किया गया है। अत: राज्यसभा एवं विधानपरिषद् दो ऐसी संस्थाएं हैं, जिनके चुनाव खुले मतदान के आधार पर होते हैं।

❐ विधानसभा

विधानसभा के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा होता है। इसका चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर गुप्त मतदान द्वारा होता है। अनुच्छेद 170 के अनुसार विधानसभा की सीटों का आवंटन जनसंख्या के आधार पर किया जाएगा। संविधान के अनुच्छेद 170 के अनुसार प्रत्येक जनगणना के बाद विभिन्न राज्यों को विधानसभा के स्थानों का पुन: आवंटन तथा प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों का पुन: समायोजन संसद द्वारा निर्धारित विधि से किया जाएगा।

84वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2000 के द्वारा राज्यों को विधानसभा की सीटों का आवंटन 1971 ई. की जनगणना के आधार पर 2026 ई. तक किया जाएगा। उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद 332 के अनुसार विधानसभा में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए जनसंख्या के आधार पर स्थानों को आरक्षण किया गया है (विधानपरिषद् में कोई आरक्षण नहीं है)।

नोट – जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल को विधानसभा में 2 महिला सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

विधानमण्डल की सदस्यता (Membership of State Legislative)

❐ योग्यताएं (Qualifications)

संविधान के अनुच्छेद 173 व जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में विधानमण्डल सदस्य चुने जाने के लिए योग्यताएं निर्धारित की गई हैं।

➢ संविधान द्वारा निर्धारित योग्यताएं

1) वह भारत का नागरिक हो,
2) विधानपरिषद् के लिए कम से कम 30 वर्ष तथा विधानसभा के लिए कम से कम 25 वर्ष की आयु होना चाहिए,
3) उसे चुनाव आयोग द्वारा धारा अधिकृत किसी व्यक्ति के समक्ष तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिए गए प्रारूप के अनुरूप शपथ लेनी होती है,
4) उसके पास ऐसी अन्य योग्यताएं होनी चाहिए, जो संसद द्वारा बनाई गई हो।

➢ जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 द्वार निर्धारित योग्यताएं

1) विधानपरिषद् में निर्वाचित होने वाला व्यक्ति विधानसभा का निर्वाचक होने की योग्यता रखता हो और राज्यपाल द्वारा नामित होने के लिए संबंधित राज्य का निवासी होना चाहिए,
2) विधानसभा सदस्य बनने वाला व्यक्ति संबंधित राज्य के निर्वाचन क्षेत्र में मतदाता भी होना चाहिए,
3) यदि कोई नागरिक किसी आरक्षित सीट पर चुनाव लड़ना चाहता है, तो उसे उसी अनुसूचित जाति या जनजाति का सदस्य होना चाहिए।

❐ अयोग्यताएं (Disqualifications)

विधानमण्डल का कोई सदस्य 3 आधारों पर अयोग्य घोषित हो सकता है। यह अयोग्यताएं संसद के समान ही हैं।
(अयोग्यताओं का वर्णन संसद, पेज नं. 54 व 55 में किया गया है)

यदि विधानमण्डल के किसी सदस्य की अयोग्यता संबंधी कोई प्रश्न उत्पन्न होता है, तो उसका अंतिम निर्णय राज्यपाल द्वारा किया जाएगा। राज्यपाल ऐसा निर्णय करने से पूर्व निर्वाचन आयोग की सलाह लेगा। ध्यातत्व है कि कोई सदस्य दलबदल के आधार पर अयोग्य है या नहीं, इसका फैसला पीठासीन अधिकारी (विधानपरिषद् में सभापति व विधानसभा में अध्यक्ष) करता है। पीठासीन अधिकारी के निर्णय की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है।

शपथ (Oath)

विधानमण्डल का प्रत्येक सदस्य राज्यपाल या उसके द्वारा नियुक्त व्यक्ति के समक्ष शपथ लेता है। जब तक वह शपथ नहीं ले लेता, तब तक वह न तो विधानमण्डल की किसी बैठक में हिस्सा ले सकता है और न ही मत दे सकता है।

पदावधि (Tenure)

विधानपरिषद् एक स्थायी सदन है, जिसका कभी विघटन नहीं होता। इसके सदस्य 6 वर्ष के लिए चुने जाते हैं। इसके सदस्यों में से एक तिहाई (1/3) सदस्य प्रत्येक दूसरे वर्ष पदमुक्त हो जाते हैं तथा पदमुक्त होने वाले सदस्यों के स्थानों को भरने के लिए प्रत्येक दूसरे वर्ष चुनाव होता है। विधानसभा का गठन अपने प्रथम अधिवेशन की प्रथम तारीख से 5 वर्ष की अवधि के लिए होता है। राज्यपाल मुख्यमंत्री की सलाह पर 5 वर्ष की अवधि के पहले भी विघटन कर सकता है। यदि आपातकाल लगा हो, तो संसद विधि द्वारा विधानसभा की अवधि को एक बार में अधिक से अधिक 1 वर्ष के लिए बढ़ा सकती है।

पदरिक्ति (Vacancy)

निम्नलिखित आधारों पर संसद सदस्य की सीट रिक्त हो सकती है –

1) **दोहरी सदस्यता** – कोई सदस्य एक साथ विधानमण्डल के दोनों सदनों का सदस्य नहीं हो सकता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

2) **अयोग्यता के आधार पर** – कोई सदस्य संविधान, जनप्रतिनिधित्व अधिनियम व दलबदल के आधार पर अयोग्य होने पर उसका स्थान रिक्त हो जाता है।

3) **त्यागपत्र** – यदि कोई सदस्य अपनी सदस्यता से त्यागपत्र दे देता है, तो उसका स्थान रिक्त हो जाता है। उल्लेखनीय है कि विधानपरिषद् का सदस्य सभापति को और विधानसभा का सदस्य अध्यक्ष को अपना त्यागपत्र देता है।

4) **अनुपस्थिति** – यदि कोई सदस्य सदन की अनुमति के बिना 60 दिन से अधिक समय के लिए सदन की बैठक में अनुपस्थित रहता है, तो सदन उसका पद रिक्त घोषित कर सकता है।

5) **अन्य स्थिति** – किसी सदस्य की सदस्यता निम्नलिखित तरीकों से भी रिक्त हो सकती है –

a) यदि न्यायालय उसके चुनाव को अवैध या शून्य घोषित कर दें,

b) यदि वह राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के पद पर चुन लिया जाता है,

c) यदि वह किसी राज्य का राज्यपाल नियुक्त कर दिया जाता है।

विधानमण्डल के पीठासीन अधिकारी (Presiding Officers of State Legislative)

विधानमण्डल के प्रत्येक सदन के अपने पीठासीन अधिकारी होते हैं। विधानसभा में अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष तथा विधानपरिषद् में सभापति एवं उपसभापति 2 प्रमुख अधिकारी होते हैं।

❐ विधानसभा

➢ **अध्यक्ष** – आम चुनाव में चुनी गई विधानसभा की प्रथम बैठक के पश्चात् उपस्थित सदस्यों में से अध्यक्ष का चुनाव किया जाता है। अध्यक्ष के चुनाव की तारीख राज्यपाल तय करता है। विधानसभा अध्यक्ष अपने पद पर तब तक बना रहता है, जब तक नया विधानसभा अध्यक्ष अपना पद ग्रहण न कर ले, अर्थात् – विधानसभा का जीवनकाल ही अध्यक्ष का कार्यकाल है। इसके अलावा इसका पद निम्नलिखित तरीकों से रिक्त हो सकता है –

1) यदि वह विधानसभा का सदस्य नहीं रहता है,

2) किसी भी समय वह विधानसभा के उपाध्यक्ष को अपना त्यागपत्र दे दें,

3) यदि विधानसभा के तत्कालीन समस्त सदस्य बहुमत से पारित संकल्प द्वारा उसे हटा दे।

ऐसा संकल्प तब तक प्रस्तावित नहीं किया जाएगा, जब तक विधानसभा अध्यक्ष को इस आशय की सूचना 14 दिन पूर्व न दे दी गई हो। जब अध्यक्ष को उसके पद से हटाने का कोई संकल्प विधानसभा में विचाराधीन रहता है, तब वह सदन की अध्यक्षता नहीं कर सकता है। यद्यपि उसे विधानसभा में बोलने व उसकी कार्यवाहियों में भाग लेने तथा मतदान करने का अधिकार होता है।

➢ **विधानसभा अध्यक्ष की शक्तियां एवं कार्य (Powers & Functions of the Speaker) -** विधानसभा अध्यक्ष विधानसभा का सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकारी होता है, वह सदन का प्रवक्ता तथा अभिभावक होता है। वह सदस्यों के शक्तियों का संरक्षक होता है, सभी संसदीय मामलों में उसका निर्णय अंतिम होता है। उसका कार्य एवं शक्तियां विधानसभा के सम्बन्ध में काफी अधिक हैं, जिनका वर्णन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है –

1) वह विधानसभा की बैठक की अध्यक्षता करता है और सदन की कार्यवाही व संचालन के लिए वह नियम व विधि का निर्वहन करता है।

2) वह विधानसभा के अन्दर भारत के संविधान, विधानसभा की प्रक्रिया, कार्य संचालन नियम व संसदीय पूर्व उदाहरणों का अंतिम व्याख्याकार होता है।

3) उसका कर्तव्य है कि गणपूर्ति (कोरम) के अभाव में सदन को स्थगित कर दे। सदन की बैठक के लिए गणपूर्ति सदन की संख्या का 10वां भाग होता है।

4) सदन में किसी प्रश्न को लेकर यदि गतिरोध उत्पन्न हो जाए, तो वह मतदान कराता है। वह प्रारंभ में मत नहीं देता है, किन्तु मत बराबर होने पर निर्णायक मत दे सकता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

5) वह सदन के नेता के आग्रह पर गुप्त बैठक बुला सकता है।

6) कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं, इसका निर्णय विधानसभा अध्यक्ष ही करता है।

8) वह दलबदल कानून के आधार पर विधानसभा के किसी सदस्य की अयोग्यता संबंधी प्रश्न का समाधान करता है।

9) वह विधानसभा के सदस्यों का त्यागपत्र स्वीकार करता है।

10) वह विधानसभा की सभी समितियों के सभापति नियुक्त करता है और उनके कार्यों का पर्यवेक्षण करता है।

11) वह स्वयं कार्यमंत्रणा समिति, नियम समिति व सामान्य प्रयोजन समिति का पदेन अध्यक्ष होता है।

12) विधानसभा के सचिवालय पर उसका नियंत्रण होता है।

13) उसके पास सदन के कार्यसंचालन एवं व्यवस्था बनाए रखने की जो शक्ति है, उसके प्रयोग के लिए वह किसी न्यायालय की अधिकारिता के अधीन नहीं है।

16) वह विधानसभा की दैनिक बैठकों को स्थगित कर सकता है।

- **विधानसभा उपाध्यक्ष** – विधानसभा अध्यक्ष की तरह सदन के सदस्य उपाध्यक्ष का चुनाव करते हैं। उपाध्यक्ष के चुनाव में वही प्रक्रिया अपनाई जाती है, जो अध्यक्ष के चुनाव में अपनाई जाती है। उपाध्यक्ष तब तक अपने पद पर बना रहता है, जब तक वह सदन का सदस्य रहता है। वह विधानसभा अध्यक्ष को त्यागपत्र देकर या विधानसभा के सदस्यों द्वारा पारित संकल्प के आधार पर हटाया जा सकता है। उपाध्यक्ष को उसके पद से हटाने के लिए कोई संकल्प विधानसभा में पेश करने के लिए 14 दिन पूर्व उसकी सूचना उसे दी जानी चाहिए। अध्यक्ष का पद रिक्त या अनुपस्थित होने की दशा में वह उसके कार्यों का संपादन करता है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में वह दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता करता है।
- **विधानपरिषद्** – सभापति व उपसभापति विधानपरिषद् के प्रमुख अधिकारी होते हैं। विधानपरिषद् के सदस्य अपने बीच से ही सभापति और उपसभापति का चयन करते हैं। सदन के पीठासीन अधिकारी के रूप में वह उसकी शक्ति व कार्य विधानसभा अध्यक्ष के समान (केवल धन विधेयक को छोड़कर) ही होती है।

विधानमण्डल के सत्र, सत्रावसान तथा विधानसभा का विघटन
Sessions, Prorogation and Dissolution of State Legislative

❐ विधानमण्डल के सत्र (Sessions of State Legislative)

राज्यपाल समय-समय पर विधानमण्डल के प्रत्येक सदन को ऐसे समय और स्थान पर जैसा वह उचित समझे अधिवेशन के लिए आहूत करेगा। किन्तु शर्त यह है कि उसके एक सत्र की अंतिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के मध्य 6 माह से अधिक का अन्तर नहीं होना चाहिए। विधानसभा के प्रत्येक आम चुनाव के पश्चात् प्रथम सत्र के आरंभ पर तथा प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के आरंभ में एक साथ आहूत दोनों सदनों को राज्यपाल संबोधित करता है।

❐ विधानमण्डल का स्थगन (Adjournment of State Legislative)

विधानसभा व विधानपरिषद् की दैनिक बैठकों को स्थगित करने की शक्ति उनके पीठासीन अधिकारी के पास होती है। स्थगन भी 2 प्रकार से हो सकता है – **1)** निश्चित काल के लिए स्थगन। **2)** अनिश्चित काल के लिए स्थगन।

❐ विधानमण्डल का सत्रावसान (Prorogation of State Legislative)

किसी सत्र के समापन को सत्रावसान कहते हैं। जब पीठासीन अधिकारी सदन का सत्र पूर्ण होने पर अनिश्चित काल के लिए स्थगित करता है, तो उसके कुछ दिन पश्चात् ही राज्यपाल सत्र का अवसान कर देता है।

❐ विधानसभा का विघटन (Dissolution of Legislative Assembly)

विधानसभा का विघटन करने की शक्ति राज्यपाल में निहित होती है। विधानसभा का विघटन 2 कारणों से होता है –

1) 5 वर्ष की सामान्य अवधि के समाप्त होने पर। **2)** जब राज्यपाल सदन को विघटित करने का निर्णय ले।

सामान्यत: राज्यपाल मंत्रिपरिषद् के परामर्श से ही विधानसभा का विघटन करता है, किन्तु हर परिस्थिति में राज्यपाल मंत्रिपरिषद् के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं है। जब मंत्रिपरिषद् को विधानसभा में बहुमत प्राप्त नहीं है अथवा वह विधानसभा में विश्वास

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

मत में पराजित हो गई है, तो राज्यपाल मंत्रिपरिषद् की परामर्श मानने के लिए बाध्य नहीं है।

❐ सदन में गणपूर्ति (कोरम - Quorum)

कोरम प्रत्येक सदन में पीठासीन अधिकारी सहित कुल सदस्यों का 1/10 होना चाहिए। यदि किसी समय गणपूर्ति नहीं होती है, तो अध्यक्ष या सभापति का यह कर्तव्य है कि वह सदन की कार्यवाही को स्थगित कर दें।

❐ सदन में मतदान (Voting in House)

किसी भी सदन में किसी भी मामले पर उपस्थित सदस्यों के बहुमत से निर्णय लिया जाता है। अध्यक्ष या सभापति प्रथमतः मतदान नहीं करेगा, किन्तु बराबर की स्थिति में उसे निर्णायक मत (Casting Vote) देने का अधिकार होगा।

❐ विधानमण्डल में भाषा (Language in State Legislative)

संविधान के अनुसार विधानमण्डल में कार्य हिन्दी या अंग्रेजी भाषा में किया जाएगा, परन्तु सभापति या अध्यक्ष किसी सदस्य को अपनी मातृभाषा में बोलने का अधिकार दे सकता है।

विधानमण्डल में विधायी प्रक्रिया
Legislative Procedure in State Legislative

विधायी प्रक्रिया सदन में एक विधेयक के रूप में प्रारंभ की जाती है। जब विधेयक विधानमण्डल के दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया जाता है और राज्यपाल उस पर अपनी सहमति प्रदान कर देता है, तो वह अधिनियम बन जाता है। विधानमण्डल में पेश किए जाने वाले विधेयकों को हम 2 भागों में बांट सकते हैं -

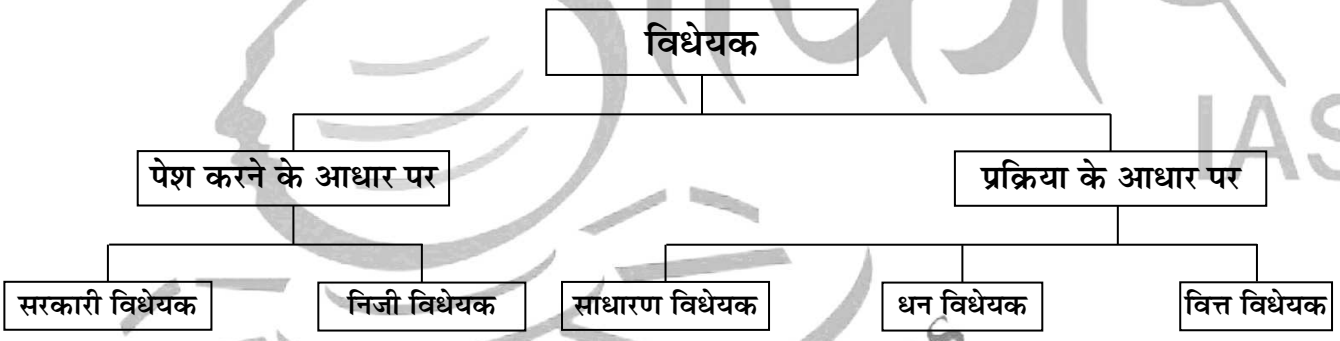

विधि निर्माण की प्रक्रिया की दृष्टि से विधानमण्डल में पेश किए जाने वाले विधेयकों को 3 श्रेणियों में बांटा जा सकता है -

❐ साधारण विधेयक (Ordinary Bill)

साधारण विधेयक विधानमण्डल के किसी भी सदन में प्रारंभ हो सकता है। साथ ही यह निजी या सरकारी विधेयक भी हो सकता है। यह विधेयक कानून बनने से पूर्व 5 चरणों से गुजरता है, जो निम्नलिखित है -

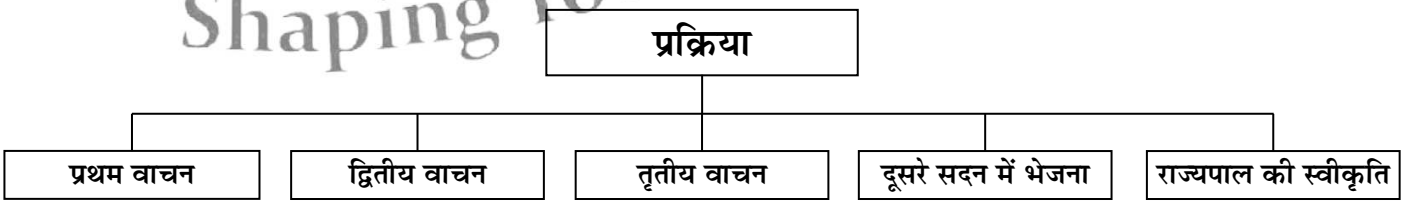

प्रथम सदन में विधेयक पारित होने के बाद इसे दूसरे सदन में विचारार्थ और पारित करने हेतु भेजा जाता है (उल्लेखनीय है कि एक सदनीय व्यवस्था वाले विधानमण्डल में इसे पारित कर सीधे राज्यपाल की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है)। यदि विधेयक विधानसभा में पारित होने के बाद विधानपरिषद् में भेजा जाता है, तो उसके पास निम्नलिखित विकल्प होते हैं -

1) वह विधेयक को बिना किसी संशोधन के पारित करके दे,
2) वह विधेयक को कुछ संशोधनों सहित पारित करके प्रथम सदन को वापस भेज सकता है,
3) वह विधेयक को अस्वीकार कर सकता है,
4) वह विधेयक पर किसी प्रकार की कार्यवाही न करके उसे लम्बित पड़े रहने दे सकता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

यदि दूसरे सदन ने बिना संशोधन के विधेयक पारित कर दिया है, तो विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है। यदि दूसरे सदन ने कुछ संशोधन प्रस्तावित किए हो और पहला सदन उन संशोधनों को स्वीकार कर लें, तो विधेयक विधानमण्डल द्वारा पारित मान लिया जाता है। इन दोनों स्थितियों में उस विधेयक को अनुमति हेतु राज्यपाल के पास भेज दिया जाता है।

इसके अलावा यदि विधानसभा विधानपरिषद् के सुझावों को अस्वीकृत कर दे या विधानपरिषद् ही विधेयक को अस्वीकृत कर दे या विधानपरिषद् 3 माह तक कोई कार्यवाही न करें, तब विधानसभा फिर से इसे पारित कर विधानपरिषद् को भेज सकती है। अब यदि विधानपरिषद् दोबारा विधेयक को अस्वीकृत कर दे या उसे संशोधनों के साथ पारित कर दे, जो विधानसभा को अस्वीकार हो या एक माह तक लम्बित रखे, तब इसे दोनों सदनों द्वारा पारित माना जाता है, क्योंकि विधानसभा ने इसे दूसरी बार पारित कर दिया है।

स्पष्ट है कि साधारण विधेयक के संदर्भ में विधानसभा को अधिक शक्ति है। विधानपरिषद् साधारण विधेयक को अधिकतम 4 माह के लिए रोक सकती है, पहली बार में 3 माह के लिए और दूसरी बार में 1 माह के लिए। उल्लेखनीय है कि साधारण विधेयक पर असहमति होने की स्थिति में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक का संविधान में कोई प्रावधान नहीं है।

- **राज्यपाल की स्वीकृति (Assent of the Governor)**

विधानमण्डल के दोनों सदनों द्वारा पारित किए जाने के बाद विधेयक को राज्यपाल की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। अनुच्छेद 200 के तहत् राज्यपाल के पास 3 विकल्प होते हैं –

1) वह विधेयक को स्वीकृति दे सकता है, उसकी स्वीकृति मिलने के बाद विधेयक अधिनिमय बन जाता है।
2) वह स्वीकृति देने हेतु विधेयक को अपने पास रोक सकता है।
3) वह पुनर्विचार हेतु सदन को विधेयक वापस लौटा सकता है। यदि दोनों सदन राज्यपाल के सुझावों को स्वीकार या अस्वीकार करते हुए विधेयक को पुन: पारित कर देते हैं, तो राज्यपाल अपनी सहमति देने हेतु बाध्य होता है।

इसके अलावा अनुच्छेद 201 के तहत् राज्यपाल के पास एक विकल्प और है – वह विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रख सकता है। अब राष्ट्रपति विधेयक पर अपनी स्वीकृति दे सकता है या स्वीकृति रोक सकता है या विधानमण्डल को पुनर्विचार हेतु वापस भेज सकता है। यदि राष्ट्रपति विधेयक को पुनर्विचार हेतु वापस लौटाता है, तो विधेयक पर 6 माह के अन्दर पुनर्विचार आवश्यक है। यदि विधेयक को विधानमण्डल पुन: पारित कर दोबारा राष्ट्रपति के पास भेजता है, तो संविधान में इस बात का उल्लेख नहीं है कि राष्ट्रपति इस विधेयक को मंजूरी दे या नहीं।

❐ वित्त व धन विधेयक (Money Bill)

वित्त व धन विधेयक को पारित करने के लिए विधानमण्डल द्वारा अलग प्रक्रिया अपनाई जाती है, जो निम्नलिखित है –

1) प्रत्येक वित्त व धन विधेयक सरकारी विधेयक होते हैं, अत: इसे कोई मंत्री ही पेश कर सकता है।
2) वित्त व धन विधेयक राज्यपाल की सिफारिश से केवल विधानसभा में ही प्रस्तुत किया जाता है।
3) विधानसभा में पारित होने के पश्चात् इसे विधानपरिषद् में विचार हेतु भेजा जाता है। उल्लेखनीय है कि कोई विधेयक वित्त व धन विधेयक है या नहीं, इसका अंतिम निर्णय विधानसभा अध्यक्ष करेगा।
4) धन विधेयक के संदर्भ में विधानपरिषद् की शक्ति सीमित है। वह धन विधेयक को अस्वीकृत या संशोधित नहीं कर सकता है। वह केवल सिफारिश कर सकता है। इसके लिए उसके पास अधिकतम 14 दिनों का समय होता है। यदि वह 14 दिनों के अन्दर विधेयक वापस नहीं लौटाता है, तो मान लिया जाता है कि विधेयक उसी रूप में पारित हो गया, जिस रूप में उसे विधानसभा ने पारित किया था।
5) इसके बाद धन विधेयक राज्यपाल के पास जाता है। राज्यपाल के पास धन विधेयक के संदर्भ में केवल 2 ही विकल्प होते हैं – पहला, वह उस पर स्वीकृति दे दे और दूसरा, वह विधेयक को रोक ले। राज्यपाल धन विधेयक को विधानमण्डल के पास पुनर्विचार के लिए नहीं लौटा सकता।
6) वित्त विधेयक के संदर्भ में विधानपरिषद् को साधारण विधेयक की तरह ही शक्ति प्राप्त होती है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❐ विधानसभा व विधानपरिषद् के कार्यों व शक्तियों की तुलना
(Comparison between Powers & Functions of Legislative Assembly & Council)

संविधान में संसदीय प्रणाली के तहत् द्वि-सदनीय व्यवस्था को अपनाया गया है। यद्यपि राज्य विधानमण्डल में विधानपरिषद् का गठन राज्य की इच्छा पर निर्भर करता है। अत: स्वाभाविक है कि दोनों सदनों की कार्यों, शक्तियों व अधिकारों में अन्तर है। अत: विधानपरिषद् की तुलना विधानसभा से निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत कर सकते हैं -

- **विधानसभा से समानता**

1) साधारण विधेयक को आरंभ करना तथा पारित करना।
2) राज्यपाल द्वारा जारी अध्यादेश को स्वीकृति देना।
3) मुख्यमंत्री व मंत्रियों की नियुक्ति।
4) संवैधानिक तथा गैर-संवैधानिक आयोगों की रिपोर्ट पर विचार करना।
5) राज्य लोक सेवा आयोग के क्षेत्र में वृद्धि करना।

- **विधानसभा से असमानता**

1) धन व वित्त विधेयक सिर्फ विधानसभा में ही पेश किए जा सकते हैं, विधानपरिषद् में नहीं।
2) कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं, इसका निर्णय करने की शक्ति विधानसभा अध्यक्ष के पास है।
3) बजट पारित करने की प्रक्रिया में भी विधानसभा को ज्यादा शक्ति है। वह विभिन्न मंत्रालयों द्वारा मांगे गए अनुदानों पर विचार-विमर्श भी करता है और उन्हें पारित भी करता है। विधानपरिषद् उस पर बहस तो कर सकता है, किन्तु पारित नहीं कर सकता है।
4) साधारण विधेयक को पारित करने के संदर्भ में भी अंतिम शक्ति विधानसभा के पास ही होती है। साधारण विधेयक को विधानपरिषद् अधिकतम 4 माह तक लम्बित कर सकती है।
5) मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। अत: मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव केवल विधानसभा में ही लाया जा सकता है।
6) राष्ट्रपति के निर्वाचन में केवल विधानसभा ही भाग लेती है, विधानपरिषद् नहीं।
7) राज्यसभा के निर्वाचन में केवल विधानसभा ही भाग लेती है, विधानपरिषद् नहीं।
8) विधानपरिषद् के 1/3 सदस्यों का निर्वाचन भी विधानसभा ही करती है।
9) विधानपरिषद् का सृजन या समाप्ति स्वयं विधानसभा की इच्छा पर निर्भर करता है।
10) संविधान संशोधन विधेयक पर भी केवल विधानसभा विचार व पारित करती है।

Shaping Your Dreams

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

संघ राज्य क्षेत्र और उनका प्रशासन
Union Territories and its Administration

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 1 के अनुसार भारत राज्य क्षेत्र को 3 श्रेणियों में बांटा गया है – राज्य क्षेत्र, केन्द्र शासित प्रदेश तथा ऐसे अन्य राज्य क्षेत्र, जो भारत सरकार द्वारा अर्जित किए गए हो। वर्तमान में 29 राज्य तथा 7 केन्द्र शासित प्रदेश हैं, कोई भी अर्जित राज्य क्षेत्र नहीं है। संविधान के भाग 8 के अन्तर्गत अनुच्छेद 239 से 241 में केन्द्र शासित प्रदेशों से संबंधित प्रावधानों का वर्णन किया गया है। केन्द्र शासित प्रदेश वह क्षेत्र हैं, जो केन्द्र सरकार के सीधे नियंत्रण में होते हैं, इसलिए इन्हें केन्द्र शासित प्रदेश कहते हैं। वस्तुतः राजनीतिक, प्रशासनिक, सांस्कृतिक व सामरिक महत्व के कारण इनका गठन केन्द्र शासित प्रदेशों के रूप में किया गया है।

❐ संघ राज्य क्षेत्र का प्रशासन

संविधान में संघ राज्य क्षेत्र (केन्द्र शासित प्रदेश) का प्रशासन संचालित करने का अधिकार राष्ट्रपति को दिया गया है। राष्ट्रपति इनका प्रशासन संसद द्वारा पारित विधि के अनुसार संचालित करता है। राष्ट्रपति संघ राज्य क्षेत्रों का प्रशासन संचालित करने के लिए प्रशासक नियुक्त कर सकता है। यह प्रशासक राष्ट्रपति का एजेंट या अभिकर्ता होता है, न कि राज्यपाल की तरह संवैधानिक प्रमुख। राष्ट्रपति किसी राज्य के राज्यपाल को राज्य से सटे केन्द्र शासित प्रदेशों का प्रशासक नियुक्त कर सकता है। ऐसी स्थिति में राज्यपाल केन्द्र शासित प्रदेश के संबंध में अपनी मंत्रीपरिषद् के बिना स्वतंत्र रूप से कार्य करता है। राष्ट्रपति प्रशासक को पदनाम दे सकता है। संघ राज्य क्षेत्रों का प्रशासन संचालित करने वाले अधिकारियों के विभिन्न नाम निम्नलिखित हैं –

1) **मुख्य आयुक्त (Chief Commissioner)** – चंडीगढ़।
2) **उपराज्यपाल (Lieutenant Governor)** – दिल्ली, पांडिचेरी और अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह।
3) **प्रशासक (Administrator)** – दादर-नागर हवेली, दमन एवं दीव और लक्षद्वीप।

❐ संघ राज्य क्षेत्र के लिए विधानसभा और मंत्रिपरिषद्

मूल संविधान में संघ राज्य क्षेत्र के लिए विधानसभा तथा मंत्रिपरिषद् के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी, लेकिन 1962 में 14वें संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद 239(A) जोड़कर संसद को यह अधिकार दिया गया कि वह विधि बनाकर केन्द्र शासित प्रदेश हेतु विधानसभा तथा मंत्रिपरिषद् का गठन कर सकती है। संसद ने इस शक्ति का प्रयोग करते हुए पांडिचेरी और दिल्ली के लिए विधानसभा का सृजन किया।

❐ संघ राज्य क्षेत्र की विधायी शक्ति

संसद को संघ राज्य क्षेत्र के संबंध में विधि बनाने की अनन्य शक्ति है। वह केन्द्र शासित प्रदेशों के लिए 3 सूचियों के विषय पर विधि बना सकती है। संसद की इस शक्ति का विस्तार पांडिचेरी एवं दिल्ली तक है। इसका तात्पर्य है कि किसी केन्द्र शासित राज्य की अपनी विधायिका होने के बावजूद राज्य सूची के विषयों पर संसद की विधायी शक्ति समाप्त नहीं होती है। यद्यपि पांडिचेरी एवं दिल्ली राज्य सूची एवं समवर्ती सूची (कुछ विषयों को छोड़कर) के विषयों पर विधि बना सकती है।

❐ राष्ट्रपति की विनियम बनाने की शक्ति

राष्ट्रपति अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह, लक्षद्वीप, दादर-नागर हवेली और दमन एवं दीव में शांति, विकास एवं अच्छी सरकार के लिए विनियम बना सकता है। यदि पांडिचेरी की विधानसभा विघटित हो गई हो, तो राष्ट्रपति उसके लिए भी विधि बना सकता है।

❐ संघ राज्य क्षेत्रों के लिए उच्च न्यायालय

संसद को यह अधिकार है कि वह किसी संघ राज्य क्षेत्र के लिए उच्च न्यायालय की स्थापना कर सकती है या किसी संघ राज्य क्षेत्र को किसी राज्य के उच्च न्यायालय की अधिकारिता के अधीन रख सकती है। इस अधिकार का प्रयोग करके संसद ने 1966 में दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र के लिए उच्च न्यायालय की स्थापना की है। अन्य संघ राज्य क्षेत्रों पर राज्यों के उच्च न्यायालय की अधिकारिता को विस्तारित किया है, जिसका विवरण निम्नलिखित है –

केरल उच्च न्यायालय – लक्षद्वीप
मद्रास उच्च न्यायालय – दमन एवं दीव
बम्बई उच्च न्यायालय – दादरा-नागर हवेली
पंजाब तथा हरियाणा उच्च न्यायालय – चंडीगढ़
कलकत्ता उच्च न्यायालय – अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

अनुसूचित और जनजातीय क्षेत्रों का प्रशासन
Administration of Scheduled and Tribal Areas

संविधान के भाग 10 में अनुच्छेद 244 के अन्तर्गत अनुसूचित क्षेत्रों और जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में प्रावधान किया गया है। संविधान की अनुसूची 6 में असम, मेघालय, त्रिपुरा तथा मिजोरम राज्य के जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में प्रावधान किया गया है, जबकि अनुसूची 5 में इन चार राज्यों को छोड़कर अन्य राज्यों के अधीन आने वाले अनुसूचित जाति और जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में प्रावधान है। इन क्षेत्रों के प्रशासन आदि के बारे मे किए गए प्रावधान निम्नलिखित हैं –

❐ अनुसूचित क्षेत्रों का प्रशासन (अनुसूची 5 के प्रावधान)

अनुसूचित और जनजातीय क्षेत्र उसे कहा जाता है, जहां आज भी आदिम निवासी रहते हैं। वे सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं तथा आज भी समाज की मुख्य धारा से कटे हुए हैं। अत: उनके विकास एवं उन्नति के लिए विशेष प्रावधानों की आवश्यकता है, जिसका वर्णन संविधान की 5वीं अनुसूची में किया गया है। यह प्रावधान निम्नलिखित हैं –

1) राष्ट्रपति को किसी भी क्षेत्र को अनुसूचित क्षेत्र घोषित करने का अधिकार है। राष्ट्रपति को संबंधित राज्य के राज्यपाल से परामर्श कर किसी अनुसूचित क्षेत्र के क्षेत्रफल को बढ़ाने या घटाने, सीमाओं एवं नाम को बदलने का अधिकार है।

2) संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार इन क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में निर्देश देने तक होगा।

3) जिस राज्य में अनुसूचित क्षेत्र है, उस राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की अपेक्षा पर अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देगा।

4) क्षेत्र के अनुसूचित जनजातियों के कल्याण और उन्नति से संबंधित ऐसे विषयों पर सलाह देने के लिए जनजातीय सलाहकार परिषद् का गठन किया जाएगा। इसमें कुल 20 सदस्य होते हैं, जिनमें 3/4 सदस्य राज्य विधानसभा के अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधि होने चाहिए।

5) राज्यपाल यह निर्देश दे सकेगा कि संसद या राज्य के विधानमण्डल का कोई विधान उस क्षेत्र पर लागू नहीं होगा या उपान्तरित होकर लागू होगा।

6) राज्यपाल अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों द्वारा या उनमें भूमि के अन्तरण का प्रतिषेध कर सकेगा।

❐ जनजातीय क्षेत्रों का प्रशासन (अनुसूची 6 के प्रावधान)

इस अनूसूची में असम, मेघालय, त्रिपुरा तथा मिजोरम राज्य के उन क्षेत्रों, जिन्हें राष्ट्रपति ने अनुसूचित क्षेत्र होना घोषित किया है, के प्रशासन के संबंध में प्रावधान किया गया है। ये प्रावधान निम्नलिखित हैं –

1) ये जनजातीय क्षेत्र स्वशासी जिले के रूप में गठित किए जाएंगे।

2) राज्यपाल को इन स्वशासी जिलों को स्थापित या पुनर्स्थापित करने का अधिकार है। राज्यपाल इनके क्षेत्रों को बढ़ा-घटा सकता है तथा नाम या सीमाएं निर्धारित कर सकता है।

3) प्रत्येक स्वशासी जिले में जिला परिषद् तथा प्रादेशिक परिषद् का गठन किया जाएगा। जिला परिषद् 30 सदस्यों से मिलकर बनेगी, जिसमें राज्यपाल द्वारा मनोनीत 4 सदस्य होंगे तथा शेष 26 सदस्य वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित किए जाएंगे। निर्वाचित सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष तथा मनोनीत सदस्य राज्यपाल के प्रसादपर्यंत पद धारण करेंगे।

4) जिला परिषद् तथा प्रादेशिक परिषद् पृथक निकाय, जिसे कुछ विनिर्दिष्ट क्षेत्रों में विधि बनाने की शक्ति होगी, जैसे – आरक्षित वन से भिन्न वनों के प्रबंध तथा संपत्ति का उत्तराधिकार, विवाह तथा सामाजिक रीति-रिवाज के संबंध में।

5) राज्यपाल जिला परिषद् तथा प्रादेशिक परिषद् को कुछ वाद या अपराध के विचारण की शक्ति भी दे सकता है।

6) जिला परिषद् तथा प्रादेशिक परिषद् को भू-राजस्व के निर्धारण तथा संग्रह करने की और कुछ विशेष करों को अधिरोपित करने की शक्ति होगी।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

स्थानीय स्व-शासन
Local Self Government

स्थानीय स्व-शासन शासन की वह प्रणाली है, जिसमें लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण द्वारा स्थानीय स्तर पर जनता को शासन में भागीदार बनाया जाता है, ताकि जनता को अपनी स्थानीय समस्याएं स्वयं हल करने में सक्षम बनाया जा सके। इसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में जनता द्वारा अपने सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास के दायित्व का निर्वहन किया जाता है। इस व्यवस्था की मूल मान्यता यह है कि समाज के सभी वर्गों के लोग शासन में सक्रिय रूप से भागीदारी करें, ताकि सभी को निर्णय-निर्माण प्रक्रिया से जोड़ा जा सके। इससे समाज का सर्वांगीण विकास होगा। स्थानीय स्व-शासन के 2 प्रारूप हैं - शहरी एवं ग्रामीण, जिन्हें क्रमशः नगरपालिका एवं पंचायत की संज्ञा दी गई है।

❐ स्थानीय स्व-शासन की आवश्यकता एवं महत्व

भारत की 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गांवों में रहती है, इसलिए ग्रामीण स्तर पर स्व-शासन का विशेष महत्व है, जिसे हम निम्नलिखित बिन्दुओं के तहत् देख सकते हैं -

1) स्थानीय स्व-शासन में ग्रामीण जनता स्थानीय समस्याओं को बेहतर ढंग से समझते हैं और उसके समाधान को भी आसानी से ढूंढ सकते हैं।
2) स्थानीय संस्थाएं लोगों की राजनीतिक समझ को परिपक्व बनाती हैं, अर्थात् - लोग स्वयं अपने प्रतिनिधि को चुनते हैं और अपने आस-पास हो रही घटनाओं पर ध्यान देते हैं।
3) सत्ता का विकेन्द्रीकरण तभी संभव है, जब स्थानीय संस्थाएं निचले स्तर तक विद्यमान हों। क्योंकि केन्द्र या राज्य सरकार के लिए सुदूर गांव की समस्या का तत्काल हल निकालना संभव नहीं होता है। अतः स्थानीय समस्या का निदान वहीं के लोगों द्वारा सुगमतापूर्वक किया जा सकता है।
4) स्थानीय समस्याओं के माध्यम से जनता शासन के अत्यन्त निकट पहुंच जाती है। इसके फलस्वरूप जनता एवं प्रशासन के मध्य परस्पर सहयोग में वृद्धि होती है, जो कि भारतीय उत्थान हेतु परमावश्यक है।
5) सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि स्थानीय संस्थाएं ग्रामीण जनता में राजनीतिक चेतना तथा समझ को विकास कर देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था के स्वरूप को मजबूत बनाती हैं।
6) स्थानीय स्व-शासन के माध्यम से हम समाज के सभी वर्गों को सत्ता व निर्णय प्रक्रिया में भागीदार बनाकर सामाजिक न्याय की स्थापना करते हैं।
7) पंचायती राज संस्थाएं विधायकों एवं मंत्रियों को राजनीति का प्राथमिक अनुभव एवं प्रशिक्षण प्रदान कर देश का भावी नेतृत्व तैयार करती हैं। इससे राजनीतिज्ञ ग्रामीण भारत की समस्याओं से अवगत होते हैं। इस प्रकार ग्रामों में उचित नेतृत्व का निर्माण करने एवं विकास कार्यों में जनता की अभिरुचि बढ़ाने में पंचायतों का प्रभावी योगदान रहता है।
8) पंचायतें लोकतंत्र की प्रयोगशाला हैं। ये नागरिकों को अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रयोग की शिक्षा देती हैं। साथ ही उनमें नागरिक गुणों का विकास करने में सहायता प्रदान करती हैं।

❐ पंचायती राज व्यवस्था का प्रारंभ

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गांधीजी के ग्राम स्वराज की संकल्पना को साकार करने के उद्देश्य से पंचायती राज व्यवस्था पर विशेष बल दिया गया। महात्मा गांधी के अनुसार, यदि गांव नष्ट होते हैं, तो भारत नष्ट हो जाएगा। गांवों की उन्नति और प्रगति पर ही भारत की उन्नति एवं प्रगति निर्भर करती है। भारत के संविधान निर्माता भी इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे, अतः उन्होंने अनुच्छेद-40 के अन्तर्गत पंचायती राज व्यवस्था को राज्य के नीति-निदेशक तत्वों के अन्तर्गत रखा।

अनुच्छेद-40 को कार्यान्वित करने हेतु केन्द्र में पंचायती राज एवं सामुदायिक विकास मंत्रालय की स्थापना की गई, जिसका मंत्री एस. के. डे को बनाया गया। 2 अक्टूबर, 1952 को सामुदायिक विकास कार्यक्रम प्रारंभ किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य सामान्य जनता को विकास प्रणाली से अधिक से अधिक सहयुक्त करना था।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

इस कार्यक्रम के अधीन खण्ड (Block) को इकाई मानकर उसके विकास हेतु सरकारी कर्मचारियों के साथ जनता को विकास की प्रक्रिया से जोड़ने का प्रयास किया गया, लेकिन जनता को कोई अधिकार नहीं दिया गया। परिणामस्वरूप यह कार्यक्रम सरकारी अधिकारियों तक सीमित रह गया और असफल हो गया। इसके बाद 2 अक्टूबर, 1953 को राष्ट्रीय प्रसार सेवा को प्रारंभ किया गया, यह भी असफल रहा।

- **बलवंत राय मेहता समिति**

सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा के असफल होने के बाद पंचायत राज व्यवस्था को मजबूत बनाने की सिफारिश करने हेतु 1957 में बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता मे ग्रामोद्धार समिति का गठन किया गया। इस समिति ने स्थानीय स्व-शासन हेतु ग्राम से लेकर जिला स्तर तक त्रि-स्तरीय पंचायती व्यवस्था का सुझाव दिया। इस त्रि-स्तरीय व्यवस्था में ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद् के गठन की सिफारिश की गई थी। समिति ने यह भी सिफारिश की थी कि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की शुरुआत पंचायती समिति के स्तर पर होनी चाहिए।

मेहता समिति की सिफारिश को राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा जनवरी, 1958 को स्वीकार किया गया। इस सिफारिश के आधार पर राजस्थान राज्य की विधानसभा ने 2 सितम्बर, 1959 को पंचायती राज अधिनियम पारित किया और इस अधिनियम के प्रावधानों के आधार पर 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में प्रधानमंत्री द्वारा पंचायती राज का उद्घाटन किया गया। इसके बाद 1959 में आन्ध्र प्रदेश, 1960 में असम, तमिलनाडु एवं कर्नाटक, 1962 में महाराष्ट्र, 1963 में गुजरात तथा 1964 में पश्चिम बंगाल में विधानसभाओं द्वारा पंचायती राज अधिनियम पारित करके पंचायती राज व्यवस्था को प्रारंभ किया गया।

- **अशोक मेहता समिति**

बलवन्त राय मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर स्थापित पंचायती राज व्यवस्था में कई कमियां उत्पन्न हो गई, जिन्हें दूर करने के लिए हेतु 1977 में अशोक मेहता समिति का गठन किया गया। इस समिति ने पंचायती राज व्यवस्था के त्रि-स्तरीय ढांचे के स्थान पर द्वि-स्तरीय ढांचे की संस्तुति की। इसके आलावा समिति की प्रमुख सिफारिशे निम्नलिखित हैं -

1) द्वि-स्तरीय पंचायती राज्य पद्धति में राज्य में विकेन्द्रीकरण का प्रथम स्तर जिला हो।
2) जिला स्तर के नीचे मण्डल पंचायत का गठन हो, जिसमें करीब 15000-20000 जनसंख्या एवं 10-15 गांव शामिल हो।
3) ग्राम पंचायत तथा पंचायत समिति को समाप्त कर देना चाहिए।
4) मण्डल अध्यक्ष का चुनाव प्रत्यक्ष तथा जिला परिषद् के अध्यक्ष का चुनाव अप्रत्यक्ष होना चाहिए।
5) मण्डल पंचायत तथा जिला परिषद् का कार्यकाल 4 वर्ष हो।
6) विकास योजनाओं को जिला परिषद् द्वारा तैयार किया जाए तथा उनका क्रियान्वयन मण्डल पंचायत द्वारा किया जाए।
7) पंचायतों के निर्वाचन में सभी स्तर पर राजनीतिक दलों को भाग लेने की अनुमति दी जाए।

इस समिति की सिफारिशों को अपर्याप्त मानकर नामंजूर कर दिया गया।

- **डॉ. जी. वी. के. राव समिति**

1985 में डॉ. जी. वी. के. राव की अध्यक्षता में समिति का गठन किया गया। समिति को यह कार्य सौंपा गया कि वह ग्रामीण विकास तथा गरीबी को दूर करने के लिए प्रशासनिक व्यवस्था पर सिफारिश करे। समिति ने राज्य स्तर पर राज्य विकास परिषद्, जिला स्तर पर जिला परिषद्, मण्डल स्तर पर मण्डल पंचायत तथा ग्राम स्तर पर ग्रामसभा के गठन की सिफारिश की। इस समिति ने विभिन्न स्तरों पर अनुसूचित जाति तथा जनजाति एवं महिलाओं के लिए आरक्षण की भी सिफारिश की, लेकिन समिति की सिफारिश को अमान्य कर दिया गया।

- **डॉ. एल. एम. सिंघवी समिति**

पंचायती राज संस्थाओं के कार्यों की समीक्षा तथा सुधार हेतु 1986 में सिंघवी समिति का गठन किया गया। समिति ने स्थानीय स्व-शासन को संवैधानिक मान्यता प्रदान कर पंचायती संस्थाओं के चुनाव गैर-दलीय आधार पर नियमित रूप से कराने की महत्वपूर्ण सिफारिश की। इसके अलावा न्याय पंचायत एवं ग्राम न्यायालयों की स्थापना तथा पंचायतों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराने की सिफारिश भी की।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **पी. के. थुंगन समिति**

1988 में पी. के. थुंगन समिति का गठन पंचायती संस्थाओं पर विचार करने के लिए किया गया। समिति ने अपने प्रतिवेदन में कहा कि पंचायती राज संस्थाओं को संविधान में स्थान दिया जाना चाहिए। समिति की सिफारिश के आधार पर पंचायती राज को संवैधानिक मान्यता प्रदान करने के लिए 1989 में 64वां संविधान संशोधन लोकसभा में पेश किया गया, जिसे लोकसभा द्वारा पारित कर दिया गया, लेकिन राज्यसभा द्वारा अस्वीकार किए जाने के कारण यह विधेयक समाप्त हो गया।

❐ 73वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1992

प्रधानमंत्री पी. वी. नरसिंहा राव द्वारा पंचायत संबंधी प्रावधानों को संवैधानिक दर्जा देने हेतु 73वां संविधान संशोधन विधेयक संसद में लाया गया, जिसे लोकसभा ने 22 दिसम्बर, 1992 तथा राज्यसभा ने 23 दिसम्बर, 1992 को पारित कर दिया। 17 राज्य विधानसभाओं द्वारा अनुमोदित किए जाने के पश्चात् 20 अप्रैल, 1993 को राष्ट्रपति ने इस विधेयक पर अपनी सम्मति दे दी और इसे 24 अप्रैल, 1993 से इसे 73वां संविधान संशोधन अधिनियम पूरे देश में लागू हो गया।

पंचायती राज

73वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ। इस संविधान संशोधन द्वारा संविधान में भाग 9 को पुनः स्थापित कर 16 नए अनुच्छेद [243-243(O)] तथा 11वीं अनुसूची भी जोड़ी गई। 11वीं अनुसूची में कुल 29 विषयों का उल्लेख है, जिन पर पंचायत को कानून बनाने की शक्ति प्रदान की गई है।

- **ग्राम सभा**

किसी ग्राम की निर्वाचक नामावली में जो नाम दर्ज होते है, उन व्यक्तियों को सामूहिक रूप से ग्राम सभा कहा जाता है। ग्राम सभा में 200 या उससे अधिक की जनसंख्या का होना आवश्यक है। ग्राम सभा में एक या एक से अधिक गांव भी शामिल किए जा सकते हैं। ग्राम सभा की बैठक वर्ष में 2 बार होना आवश्यक है। इस संबंध में सदस्यों को सूचना बैठक से 15 दिन पूर्व लिखित नोटिस से देनी होती है। ग्राम सभा की बैठक को बुलाने का अधिकार ग्राम प्रधान को है। ग्राम सभा की बैठक के लिए कुल सदस्यों की संख्या के 5वें भाग की उपस्थिति आवश्यक होती है। प्रत्येक ग्राम सभा में 1 अध्यक्ष होगा जो ग्राम प्रधान, सरपंच अथवा मुखिया कहलाता है तथा कुछ सदस्य होंगे।

- **पंचायतों का गठन**

अनुच्छेद 243(B) भारत में त्रि-स्तरीय पंचायती राज्य का प्रावधान करता है। प्रत्येक राज्य में ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, मध्यवर्ती स्तर पर जनपद पंचायत तथा जिला स्तर पर जिला पंचायत के गठन का प्रावधान करता है। यदि किसी राज्य की जनसंख्या 20 लाख से कम है, तो वहां मध्यवर्ती स्तर पर पंचायतों का गठन करना आवश्यक नहीं है। उल्लेखनीय है कि पश्चिम बंगाल में 4 स्तरीय पंचायती व्यवस्था अपनाई गई है।

- **पंचायतों की संरचना**

ग्राम, जनपद तथा जिला पंचायत के सभी सदस्य जनता द्वारा सीधे चुने जाएंगे। मध्य एवं जिला स्तर पर पंचायत के अध्यक्ष का चुनाव निर्वाचित सदस्यों द्वारा उन्हीं में से अप्रत्यक्ष रूप से होगा, जबकि ग्राम स्तर पर पंचायत के अध्यक्ष का चुनाव राज्य के विधानमण्डल द्वारा निर्धारित तरीके से किया जाएगा। लोकसभा, राज्यसभा, विधानसभा तथा विधानपरिषद् के सदस्यों का मध्यवर्ती तथा जिला पंचायतों में प्रतिनिधित्व (पदेन सदस्य के रूप में) राज्य विधानमण्डल द्वारा बनाई गई विधि द्वारा नियत किया जाएगा।

- **पंचायतों में आरक्षण**

यह अधिनियम प्रत्येक स्तर पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं के लिए स्थानों के आरक्षण का प्रावधान करता है। अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए स्थानों का आरक्षण उनकी जनसंख्या के अनुपात में होगा, जबकि महिलाओं के लिए उपलब्ध कुल सीटों की संख्या में आरक्षण 1/3 से कम नहीं होना होगा। यह अधिनियम राज्य विधानमण्डल को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह अन्य पिछड़ा वर्ग को किसी स्तर की पंचायतों में या अध्यक्षों के पदों पर आरक्षण दे सकता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **पंचायतों का कार्यकाल**

सभी स्तर की पंचायतों का कार्यकाल 5 वर्ष निर्धारित किया गया है, लेकिन इनका विघटन 5 वर्ष से पूर्व भी किया जा सकता है। विघटन की दशा में 6 माह के अन्दर चुनाव करवाना आवश्यक होगा। नई गठित पंचायत का कार्यकाल शेष अवधि के लिए ही होगा।

- **सदस्य के लिए योग्यताएं एवं अयोग्यताएं**

वह व्यक्ति, जिसने 21 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है तथा संबंधित राज्य के विधानमण्डल के निर्वाचन हेतु किसी विधि द्वारा अयोग्य न कर दिया गया हो, तो वह पंचायत का सदस्य चुने जाने के योग्य होगा। यदि यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि किसी पंचायत का कोई सदस्य उपयुक्त आधार पर अयोग्य है या नहीं, तो इसका निश्चय ऐसी रीति से किया जाएगा, जो राज्य विधानमण्डल विधि बनाकर उपबंधित करे।

- **पंचायतों के कार्य एवं शक्तियां**

राज्य विधानमण्डल को यह शक्ति दी गई है कि वह पंचायतों को ऐसी शक्तियां एवं प्राधिकार दे सकता है, जो उन्हें स्वायत्त शासन के रूप में कार्य करने के लिए समर्थ बना सके। ये शक्तियां निम्नलिखित से संबंधित हो सकती हैं –

1) आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय के कार्यक्रमों को तैयार करना।

2) आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय की ऐसी योजनाओं को कार्यान्वित करना, जो उन्हें सौंपी जाए।

3) 11वीं अनुसूची में सूचीबद्ध विषय।

इसके अलावा राज्य विधानमण्डल पंचायतों के वित्तीय स्रोत व कर लगाने के संबंध में शक्तियां प्रदान कर सकता है।

- **राज्य वित्त आयोग**

राज्य का राज्यपाल प्रत्येक 5 वर्ष के पश्चात् पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा के लिए वित्त आयोग का गठन करेगा, जो निम्नलिखित विषयों के संबंध में राज्यपाल को सिफारिश करेगा –

1) उन सिद्धान्तों के बारे में जो –

a) राज्य द्वारा वसूले गए करों, शुल्कों, पथकरों और फीसों के राज्य और पंचायतों के बीच वितरण को,

b) पंचायतों द्वारा विनियोजित किए जा सकने वाले कर, शुल्क, पथकर व फीसों के अवधारण को,

c) राज्य की संचित निधि से पंचायतों के लिए सहायता अनुदान को, शासित करते हैं।

2) पंचायतों की वित्तीय स्थिति में सुधार के लिए अपेक्षित उपायों के बारे में, तथा

3) किसी अन्य विषय में, जो राज्यपाल द्वारा पंचायतों के ठोस वित्तपोषण के हित में आयोग को निर्दिष्ट किए जाए।

राज्य विधानमण्डल विधि द्वारा वित्त आयोग की संरचना, सदस्यों की अयोग्यताएं और उनके चयन की रीति विहित करेगा। राज्यपाल आयोग द्वारा की गई प्रत्येक सिफारिश और उसके बारे में की गई कार्यवाही का स्पष्टीकरण ज्ञापन (Explanatory Memorandom) राज्य विधानमण्डल के समक्ष रखवाता है।

- **राज्य निर्वाचन आयोग**

अनुच्छेद 243(K) के तहत् पंचायतों के निर्वाचन के लिए एक राज्य निर्वाचन आयोग का गठन किया जाएगा। पंचायतों के लिए चुनावी प्रक्रियाओं की तैयारी की देखरेख, निर्देशन, मतदाता सूची तैयार करने पर नियंत्रण और पंचायतों के सभी चुनावों को सम्पन्न कराने की शक्ति राज निर्वाचन आयोग मे निहित होगी।

राज्य निर्वाचन आयोग में एक निर्वाचन आयुक्त होता है, जिसकी नियुक्ति राज्यपाल करता है। उसकी सेवा शर्तें व पदावधि में राज्यपाल द्वारा निर्धारित की जाएगी। उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसकी सेवा एवं शर्तों में कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। राज्य निर्वाचन आयुक्त को उसके पद से उसी रीति तथा आधार पर हटाया जा सकता है, जिस रीति तथा आधारों पर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है।

- **भाग 9 लागू न होना**

अनुच्छेद 243(M) के अनुसार भाग 9 पंचायत से संबंधित प्रावधान निम्नलिखित राज्यों एवं क्षेत्रों पर लागू नहीं होता है –

1) नागालैण्ड, मेघायल, मिजोरम, जम्मू-कश्मीर।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

2) मणिपुर राज्य के ऐसे पर्वतीय क्षेत्र, जहां जिला परिषद् विद्यमान है।

3) दार्जलिंग जिले के पर्वतीय क्षेत्र, जहां दार्जलिंग गोरखा पर्वतीय परिषद् अस्तित्व में है।

4) अनुच्छेद 244 में निर्दिष्ट अनुसूचित एवं जनजातीय क्षेत्र।

यद्यपि संसद चाहे, तो इस अधिनियम को ऐसे अपवादों और संशोधनों के साथ अनुसूचित क्षेत्रों में लागू कर सकती है, जो वह उचित समझे। इस प्रावधान के अन्तर्गत संसद ने पंचायत अधिनियम (अनुसूचित क्षेत्र का विस्तार), 1996 अधिनियमित [Panchayats (Extension to Scheduled Areas) Act 1996 - PESA] किया है।

- **न्यायालय के हस्तक्षेप पर रोक**

यह अधिनियम पंचायतों के चुनावों के मामलों में न्यायालय के हस्तक्षेप पर रोक लगाता है। इसके अन्तर्गत निर्वाचन क्षेत्र और सीटों के आवंटन संबंधित मुद्दों को न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया जा सकता है।

❐ पंचायती राज की समस्याएं, चुनौतियां व बाधाएं

पंचायती राज के समक्ष निम्नलिखित चुनौतियां एवं बाधाएं हैं –

1) पंचायती राज व्यवस्था लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया है। कई बार वह केन्द्र को कमजोर बनाती है। वोट की राजनीति के कारण कभी-कभी कोई स्थानीय या क्षेत्रीय मुद्दा राष्ट्रीय हितों से ऊपर हो जाता है।

2) राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय राजनीतिक दल अपने स्वार्थों एवं हितों से संचालित होकर स्थानीय संगठनों के कार्यों में हस्तक्षेप करते हैं। इस कारण पंचायती राज अपने वास्तविक उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर पा रहा है।

3) पंचायतों के प्रति नौकरशाही का नकारात्मक रवैया एक अवरोधक का काम करता है। अधिकारियों और निर्वाचित प्रतिनिधियों के बीच सौहार्दपूर्ण वातावरण बना पाना बहुत मुश्किल काम होता है। दोनों के बीच कटु संबंधों के कारण कई स्थानों पर विकेन्द्रित संस्थाओं के निष्पादन पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।

4) भारत में ग्रामों का सामाजिक वातावरण भी एक बहुत बड़ी समस्या है। ग्रामीण समाज अशिक्षित, रूढ़ीवादी एवं जातिवाद में जकड़ा हुआ है। परिणामतः लोगों में अवसरों एवं अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता का अभाव देखनों को मिलता है।

5) पंचायतों पर धनी एवं शक्तिशाली, प्रभावशाली लोगों का वर्चस्व भी एक गंभीर चुनौती है। परिणामतः समाज के सर्वांगीण विकास की अवधारणा नष्ट हो जाती है।

6) पंचायत चुनाव में व्यापाक भ्रष्टाचार एवं हिंसा पंचायती व्यवस्था व लोकतंत्र को खोखला कर रहा है।

7) वित्तीय संसाधनों की कमी पंचायती संस्थाओं की बहुत बड़ी कमजोरी है। पंचायती संस्थान सदैव धन के अभाव से ग्रसित रहती है, जिसके कारण वह लोक कल्यामकारी योजनाओं का कार्यान्वयन नहीं कर पाती है।

8) पंचायती राज अधिनियम कुछ महत्वपूर्ण बातों के विषय में मौन है। पंचायती संस्थाओं के कार्य एवं अधिकारों को निश्चित करना राज्यों की स्वेच्छा पर छोड़ दिया गया है। 11वीं सूची में दिए गए विषय के संबंध में विधानमण्डल कौन-से विषय पंचायतों को देगी, यह उसकी इच्छा पर निर्भर करता है।

9) पंचायती राज व्यवस्था में मध्य एवं जिला स्तर की पंचायतों में विधायकों और सांसदों को पदेन सदस्यों के रूप में सम्मिलित किया गया है, जो पंचायतों के निर्वाचित सदस्यों के कार्यों को बाधित करते हैं।

10) पंचायती राज अधिनियम के माध्यम से दिए गए आरक्षण भी अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। अधिकांश महिला प्रतिनिधि के स्थान उनके पति तथा कमजोर वर्ग के स्थान पर प्रभावशाली व्यक्ति शासन चला रहे हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारत में पंचायती राज व्यवस्था में कुछ समस्याएं व चुनौतियां हैं, जिसे दूर करना आवश्यक है। भारत की संस्कृति, भाषावाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, सम्प्रदायवाद आदि पंचायती व्यवस्था के समक्ष गंभीर चुनौती पेश करती है। वस्तुतः भारत दुनिया का विशालतम लोकतंत्र होने के कारण इस व्यवस्था को सार्थक ढंग से लागू करने में जमीनी दिक्कतें आ रही हैं, लेकिन इसके बावजूद पंचायती राज व्यवस्था आज ग्रामीण विकास की धुरी बन चुकी है। वर्तमान समय मे 26 लाख से अधिक व्यक्ति त्रि-स्तरीय पंचायतों के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप से चुने जाते हैं। यदि इन प्रतिनिधियों को आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाए, तो ये प्रतिनिधि बेहतर ढंग से कार्य कर सकते हैं।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

अंतत: हम यह उम्मीद कर सकते हैं कि स्थानीय स्तर पर जिस लोकतंत्र की व्यवस्था की गई है, वह ग्रामीण जनता में चेतना लाने में मुख्य भूमिका निभाएगी। निर्बाध गति से चल रहे इस लोकतंत्र में किसी प्रकार का कोई क्रांतिकारी परिवर्तन संभव नहीं है, किन्तु बेहतर भविष्य के लिए यह परिवर्तन का वाहक अवश्य सिद्ध हो सकता है।

नगरीय शासन

भारत में सर्वप्रथम नगरीय शासन को कानूनी रूप 1687 में दिया गया, जब ब्रिटिश सरकार द्वारा मद्रास शहर के लिए नगर निगम संस्था की स्थापना की गई। नगरीय शासन व्यवस्था के संबंध में मूल संविधान में कोई प्रावधान नहीं किया गया था, लेकिन इसे 7वीं अनुसूची की राज्य सूची में शामिल करके यह स्पष्ट कर दिया गया था कि इस संबंध में कानून केवल राज्य द्वारा ही बनाया जा सकता है। इसी का अनुसरण करके विभिन्न राज्यों में नगरीय शासन व्यवस्था के संबंध में कानून बनाया गया था। नगरीय शासन को संवैधानिक दर्जा देने हेतु 74वां संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया गया, 1 जून, 1993 में प्रभाव में आया। इस अधिनियम द्वारा भारतीय संविधान में भाग 9(A) के अन्तर्गत 18 अनुच्छेद [243(P)-243(ZG)] तथा 12वीं अनुसूची को शामिल किया गया। इस अधिनियम के प्रावधान निम्नलिखित हैं -

- **नगरपालिकाओं का गठन**

प्रत्येक राज्य में नगरपालिकाओं का गठन किया जाएगा। ये 3 प्रकार की होंगी -

1) **नगर पंचायत** - इसका गठन उस संक्रमणशील क्षेत्र (Transitional) के लिए होगा, जो ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय क्षेत्र में परिवर्तित हो रहा है।
2) **नगरपालिका** - इसका गठन छोटे नगरीय क्षेत्रों के लिए किया जाएगा।
3) **नगर निगम** - इलका गठन बड़े नगरीय क्षेत्रों में किया जाएगा।

किन्तु ऐसे नवीन क्षेत्र, जिसे राज्यपाल द्वारा औद्योगिक नगरी (Industrial Township) घोषित किया गया है, में नगर पालिका का गठन नहीं किया जाएगा।

- **नगरपालिकाओं की संरचना**

नगरपालिका के सभी सदस्य नगरपालिका के प्रादेशिक क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने जाएंगे। इस उद्देश्य के लिए प्रत्येक नगरपालिकाओं को निर्वाचन क्षेत्रों (वार्ड) में बांटा जाएगा। राज्य विधानमण्डल नगरपालिका के अध्यक्ष के निर्वाचन की विधि तय कर सकता है। इसके अलावा राज्य विधानमण्डल विधि द्वारा नगरपालिका में निम्नलिखित व्यक्तियों के प्रतिनिधित्व का प्रावधान भी कर सकता है -

1) ऐसे व्यक्तियों को, जिसे नगरपालिका प्रशासन का विशेष ज्ञान या अनुभव है, किन्तु इन्हें नगरपालिका की सभा में वोट डालने का अधिकार नहीं होगा।
2) लोकसभा और राज्य विधानसभा के ऐसे सदस्यों का, जो उन निर्वाचक क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसमें उस नगरपालिका क्षेत्र का भाग आता है।
3) राज्यसभा और राज्य विधानपरिषद् के ऐसे सदस्यों का, जो ऐसे नगरपालिका क्षेत्र के अन्तर्गत मतदाता के रूप में पंजीकृत है।
4) वार्ड समितियों के अध्यक्षों का।

उल्लेखनीय है कि ऐसी नगरपालिका, जिनकी जनसंख्या 3 लाख या उससे अधिक है, वहां एक या अधिक वार्डों को मिलाकर वार्ड समितियों का गठन किया जाता है।

- **नगरपालिकाओं मे आरक्षण**

नगरपालिकाओं में अनुसूचित जाति एवं जनजाति को उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण प्राप्त है। इसके अलावा यह महिलाओं को कुल स्थानों के 1/3 स्थानों पर आरक्षण प्रदान करता है। यह अधिनियम राज्य विधानमण्डल को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह अन्य पिछड़ा वर्ग को नगरपालिका में आरक्षण दे सकता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **नगरपालिकाओं का कार्यकाल**

नगरपालिकाओं का कार्यकाल 5 वर्ष निर्धारित किया गया है, लेकिन इनका विघटन 5 वर्ष से पूर्व भी किया जा सकता है। विघटन की दशा में 6 माह के अन्दर चुनाव करवाना आवश्यक होगा। नई गठित नगरपालिका का कार्यकाल शेष अवधि के लिए ही होगा।

- **सदस्य के लिए योग्यताएं एवं अयोग्यताएं**

वह व्यक्ति, जिसने 21 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है तथा संबंधित राज्य के विधानमण्डल के निर्वाचन हेतु किसी विधि द्वारा अयोग्य न कर दिया गया हो, तो वह नगरपालिका का सदस्य चुने जाने के योग्य होगा। यदि यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि नगरपालिका का कोई सदस्य उपयुक्त आधार पर अयोग्य है या नहीं, तो इसका निश्चय ऐसी रीति से किया जाएगा, जो राज्य विधानमण्डल विधि बनाकर उपबंधित करे।

- **नगरपालिकाओं के कार्य एवं शक्तियां**

राज्य विधानमण्डल को यह शक्ति दी गई है कि वह नगरपालिकाओं को ऐसी शक्तियां एवं प्राधिकार दे सकता है, जो उन्हें स्वायत्त शासन के रूप में कार्य करने के लिए समर्थ बना सके। ये शक्तियां निम्नलिखित से संबंधित हो सकती हैं –

1) आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय के कार्यक्रमों को तैयार करना।

2) आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय की ऐसी योजनाओं को कार्यान्वित करना, जो उन्हें सौंपी जाए।

3) 12वीं अनुसूची में सूचीबद्ध विषय (12वीं अनुसूची में कुल 18 विषय सूचीबद्ध है)।

इसके अलावा राज्य विधानमण्डल नगरपालिकाओं के वित्तीय स्रोत व कर लगाने के संबंध में शक्तियां प्रदान कर सकता है।

- **जिला योजना समिति**

अनुच्छेद 243(ZD) के अनुसार प्रत्येक राज्य में जिला स्तर पर एक जिला योजना समिति का गठन किया जाएगा, जो जिले की पंचायतों एवं नगरपालिकाओं द्वारा तैयार योजनाओं को संगठित करेगी और पूरे जिले के एक विकास योजना का प्रारूप तैयार करेगी। राज्य विधानमण्डल जिला योजना समिति की संरचना, सदस्यों का निर्वाचन, कार्यों आदि के संबंध में विधि बना सकता है, परन्तु इस अधिनियम के अनुसार समिति के कुल सदस्यों में से 4/5 सदस्य जिला पंचायत और नगरपालिका के निर्वाचित सदस्यों द्वारा अपने में से निर्वाचित किए जाएंगे। जिला योजना समिति का अध्यक्ष समिति द्वारा अनुमोदित विकास योजना को राज्य सरकार को भेजेगा।

- **महानगर योजना समिति**

अनुच्छेद 243(ZE) के अनुसार प्रत्येक महानगर क्षेत्र में एक महानगर योजना समिति का गठित की जाएगी। इसका कार्य सम्पूर्ण महानगर क्षेत्र के लिए विकास योजना का प्रारूप तैयार करना है। राज्य विधानमण्डल महानगर योजना समिति की संरचना, सदस्यों का निर्वाचन, कार्यों आदि के संबंध में विधि बना सकता है, परन्तु इस अधिनियम के अनुसार समिति के कुल सदस्यों में से 2/3 सदस्य महानगर क्षेत्र में नगरपालिकाओं के सदस्यों और पंचायतों के अध्यक्षों द्वारा अपने में से निर्वाचित किए जाएंगे। महानगर योजना समिति का अध्यक्ष समिति द्वारा अनुमोदित विकास योजना को राज्य सरकार को भेजेगा।

Shaping Your Dreams

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

केन्द्र-राज्य सम्बन्ध
Centre State Relations

भारतीय संविधान ने संघीय शासन प्रणाली को अपनाया है। संघ एवं राज्य के मध्य शक्तियों का विभाजन संघीय शासन प्रणाली का आधारभूत लक्षण है। भारतीय संविधान में केन्द्र-राज्य संबंध संघवाद की ओर उन्मुख है और संघवाद की इस प्रणाली को कनाडा के संविधान से ग्रहण किया गया है। भारतीय संविधान के भाग 11 (अनुच्छेद 245-263) एवं भाग 12 (अनुच्छेद 264-293) में केन्द्र-राज्य संबंधों की चर्चा की गई है। भारतीय संविधान में केन्द्र तथा राज्य के मध्य विधायी, प्रशासनिक तथा वित्तीय शक्तियों का विभाजन किया गया है, लेकिन न्यायपालिका को विभाजन की परिधि से बाहर रखा गया है। केन्द्र तथा राज्य के संबंध का विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है -

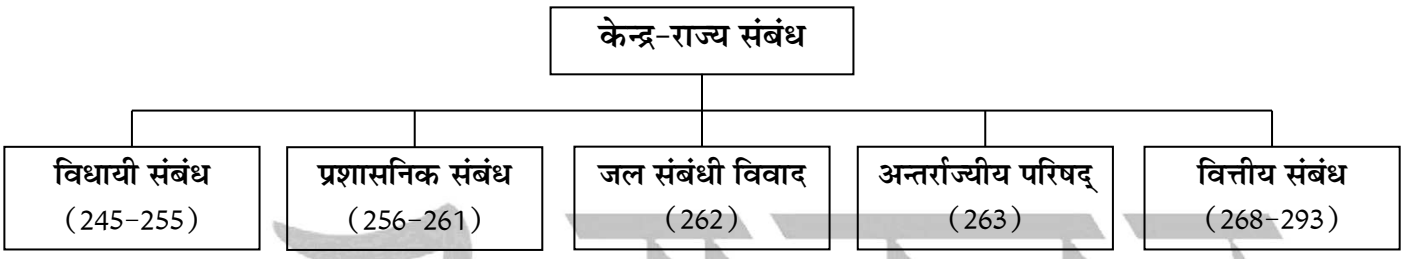

विधायी संबंध

संविधान के भाग 11 में अनुच्छेद 245-255 तक केन्द्र-राज्य के विधायी संबंधों की चर्चा की गई है। इन विधायी संबंधों को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत समझ सकते हैं -

❒ केन्द्र-राज्य विधान का क्षेत्रीय विस्तार

केन्द्र-राज्य के मध्य सीमाओं को लेकर विधायी संबंधों को निम्नलिखित तरीके से देख सकते हैं -

1) संसद सम्पूर्ण भारत या इसके किसी भी क्षेत्र के लिए कानून बना सकती है।
2) राज्य विधानमण्डल सम्पूर्ण राज्य या राज्य के किसी क्षेत्र के लिए कानून बना सकती है।
3) केवल संसद 'अतिरिक्त क्षेत्रीय विधान' बना सकती है। इस तरह संसद का कानून भारतीय नागरिक एवं उनकी विश्व में कहीं भी सम्पत्ति पर लागू होता है।

❒ विधायी विषयों का बंटवारा

संविधान की 7वीं अनुसूची में केन्द्र-राज्य के मध्य विधायी विषयों के संबंध में निम्नलिखित व्यवस्था है -

1) **संघ सूची** - संघ सूची में उन विषयों को शामिल किया गया है, जो राष्ट्रीय महत्व के हैं तथा जिन पर कानून बनाने का एकमात्र अधिकार केन्द्रीय विधायिका, अर्थात् - संसद को है। इस सूची में कुल 100 विषयों को शामिल किया गया है, जिनमें से प्रमुख हैं - रक्षा, विदेशी मामले, युद्ध, अन्तर्राष्ट्रीय संधि, अणु, शक्ति, सीमा शुल्क, निर्यात-आयात शुल्क, बीमा, बैंकिंग, नागरिकता, जनगणना, विदेशी ऋण, डाक एवं तार प्रसारण, टेलीफोन, विदेशी व्यापार, रेल तथा वायु एवं जल परिवहन आदि।
2) **राज्य सूची** - राज्य सूची में उन विषयों को शामिल किया गया है, जो स्थानीय महत्व के है तथा जिन पर कानून बनाने का एकमात्र अधिकार राज्य विधानमण्डल को है, लेकिन कुछ विशेष परिस्थितियों में संसद भी इस सूची में शामिल विषयों पर कानून बना सकती है। इस सूची में शामिल विषयों की संख्या 61 है, जिनमें प्रमुख हैं - लोक सेवा, कृषि, वन, कारागार, भू-राजस्व, लोक व्यवस्था, पुलिस, लोक स्वास्थ्य, स्थानीय शासन, जेल प्रशासन, न्याय प्रशासन, क्रय, विक्रय, सिंचाई आदि।
3) **समवर्ती सूची** - समवर्ती सूची में 52 विषयों को शामिल किया गया है, जिन पर कानून बनाने का अधिकार संसद तथा राज्य विधानमण्डल दोनों को दिया गया है। यदि इस सूची में वर्णित विषयों पर संसद तथा राज्य विधानमण्डल दोनों द्वारा कानून बनाया जाता है और यदि दोनों कानूनों में विरोध है, तो संसद द्वारा निर्मित कानून लागू होगा। इस सूची में जिन विषयों को शामिल किया गया है, उनमें से प्रमुख हैं- परिवार नियोजन, जनसंख्या नियंत्रण, समाचार पत्र, कारखाना, शिक्षा, आर्थिक तथा सामाजिक योजना, विवाह एवं तलाक आदि।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

उल्लेखनीय है कि 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 के तहत् 5 विषयों को राज्य सूची से समवर्ती सूची में शामिल किया गया है, ये विषय हैं – शिक्षा, वन, नाप एवं तौल, वन्य जीवों एवं पक्षियों का संरक्षण एवं न्याय का प्रशासन।

4) **अवशिष्ट विधायी शक्ति** – जिन विषयों को संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची में शामिल नहीं किया गया है, उन पर कानून बनाने का एकमात्र अधिकार संसद को प्रदान किया गया है। इस शक्ति के प्रयोग में संसद ऐसे विषयों पर कर लगाने के लिए कानून बना सकती है, जो विषय उक्त तीन सूचियों में से किसी में भी शामिल नहीं किए गए हैं।

❐ राज्य सूची के विषयों पर संसद को कानून बनाने का अधिकार

संविधान में राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार राज्य के विधानमण्डल को दिया गया है, किन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों में संसद भी राज्य सूची के विषयों पर कानून बना सकती है। ये विशेष परिस्थितियां निम्नलिखित हैं –

1) **राष्ट्रीय हित में** – संविधान के अनुच्छेद 249 के अनुसार यदि राज्यसभा अपने उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से यह प्रस्ताव पारित कर दे कि राष्ट्रीय हित में राज्य सूची के किसी विषय पर संसद द्वारा कानून बनाना आवश्यक है, तो संसद को एक वर्ष की अवधि के लिए राज्य सूची के किसी विषय पर कानून बानाने का अधिकार होता है। इसे आगे कई बार बढ़ाया जा सकता है, किन्तु इसे एक बार में एक वर्ष से अधिक के लिए नहीं बढ़ाया जा सकता है। राज्यसभा ने इस शक्ति का प्रयोग अभी तक केवल एक बार 1950 में किया है, जब संसद द्वारा व्यापार तथा वाणिज्य से संबंधित कानून बनाया गया था।

2) **राष्ट्रीय आपात में** – अनुच्छेद 250 के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रीय आपातकाल घोषित किए जाने की स्थिति में संसद को राज्य सूची में वर्णित विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। आपातकाल समाप्त होने के 6 माह बाद तक यह व्यवस्था प्रभावी रहेगी।

3) **राज्यों की सहमति से** – अनुच्छेद 252 के अनुसार जब दो या दो से अधिक राज्यों के विधानमण्डल प्रस्ताव पारित करके संसद से यह अनुरोध करे कि वह राज्य सूची में वर्णित किसी विषय पर कानून का निर्माण करे, तब संसद राज्य सूची में वर्णित उन विषयों, जिन पर कानून बनाने का अनुरोध किया गया है, उन पर कानून बना सकती है। संसद द्वारा इस प्रकार निर्मित कानून केवल उन राज्यों पर लागू होता हैं, जिनके विधानमण्डल ने कानून बनाने का अनुरोध किया है।

4) **अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों में** – अनुच्छेद 253 के अनुसार संसद राज्य सूची के किसी विषय पर अन्तर्राष्ट्रीय संधि या समझौतों को कार्यान्वियत करने के लिए कानून बना सकती है।

5) **राष्ट्रपति शासन में** – अनुच्छेद 356 के अनुसार जब राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता के कारण राष्ट्रपति शासन लागू किया जाता है, तब संसद को राज्य सूची के विषयों पर विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है। यदि संसद चाहे तो इस प्रकार राज्य विधानमण्डल की प्राप्त शक्ति के प्रयोग का अधिकार राष्ट्रपति को दे सकती है। इस दौरान निर्मित कानून तब तक लागू रहते हैं, जब तक राज्य विधानमण्डल उसे निरस्त न कर दें।

❐ राज्य के विधायी मामलों पर केन्द्रीय नियंत्रण

संविधान में राज्य के विधायी मामलों पर केन्द्र का कुछ नियंत्रण स्थापित किया गया है, जो निम्नलिखित है –

1) राज्यपाल कुछ विधेयकों को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित रख सकता है।

2) कुछ विधेयक राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से ही विधानमण्डल में पेश किए जा सकते हैं।

3) राष्ट्रपति वित्तीय आपातकाल की स्थिति में राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित धन या वित्त विधेयक को सुरक्षित रखने का निर्देश दे सकता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

प्रशासनिक संबंध

भारत का संविधान अनुच्छेद 256 से 263 तक केन्द्र-राज्य के प्रशासनिक संबंधों को स्पष्ट करता है, जो निम्नलिखित हैं -

❒ कार्यकारी शक्तियों का बंटवारा

संविधान में इस सिद्धान्त को मान्यता दी गई है कि कार्यपालिका विधायिका की सहविस्तरी है, अर्थात् - जिस विषय पर संसद कानून बना सकती है, उस विषय पर केन्द्रीय कार्यपालिका का नियंत्रण होगा और जिस पर राज्य का विधानमण्डल कानून बना सकता है, उस विषय पर राज्य की कार्यपालिका का नियंत्रण रहता है। इस प्रकार संघ सूची के विषयों पर केन्द्र सरकार को तथा राज्य सूची के विषयों पर राज्य सरकार को प्रशासन करने की अधिकारिता है। संविधान की 7वीं अनुसूची में शामिल समवर्ती सूची के विषयों पर कार्यपालिका शक्ति राज्यों के पास है, लेकिन इसके कुछ अपवाद भी हैं।

❒ राज्यों को निर्देश देने की शक्ति

संविधान में केन्द्र सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह प्रशासन के संबंध में राज्यों को निर्देश दे सकता है-

1) **सामान्य स्थिति में** - केन्द्र सरकार सामान्य स्थिति में राज्यों को निम्नलिखित निर्देश दे सकती है -

- **a)** राज्य में प्रवर्तित केन्द्रीय विधि तथा विद्यमान विधियों के सम्यक अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए,
- **b)** यह सुनिश्चित करने के लिए केन्द्र की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में राज्य की कार्यपालिका शक्ति हस्तक्षेप नहीं करती
- **c)** राज्य द्वारा राष्ट्रीय या सैनिक महत्व के संचार साधनों के निर्माण तथा उन्हें बनाए रखे जाने को सुनिश्चित करने के लिए,
- **d)** राज्य के सीमा क्षेत्र के अन्तर्गत रेलों के संरक्षण को सुनिश्चित करने के लिए,
- **e)** अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए योजना बनाने तथा उसके क्रियान्वयन के लिए,
- **f)** भाषायी अल्पसंख्यक वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाएं सुनिश्चित करने के लिए [अनुच्छेद 350(A)],
- **g)** हिन्दी भाषा का विकास सुनिश्चित करने के लिए (अनुच्छेद 351),
- **h)** यह सुनिश्चित करने के लिए कि राज्य की सरकार संविधान के अनुसार संचालित की जाए।

2) **आपातकालीन स्थिति में** - आपातकालीन स्थिति में केन्द्र सरकार राज्य को निम्नलिखित निर्देश दे सकती है -

- **a)** किसी विषय के संबंध में राज्य की कार्यपालिका शक्ति का किस प्रकार प्रयोग किया जाए,
- **b)** राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू होने की स्थिति में राज्य की समस्त कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग करने के लिए।

3) **वित्तीय आपातकालीन स्थिति में** - वित्तीय आपाताकालीन स्थिति में केन्द्र सरकार राज्य सरकार को निम्नलिखित निर्देश दे सकती है -

- **a)** ऐसे वित्तीय सिद्धान्तों को पालन करने के लिए, जो निर्देशों के अनुसार विनिर्दिष्ट किए जाए,
- **b)** राज्य में सेवारत सभी या किसी वर्ग के व्यक्तियों, जिनके अन्तर्गत उच्च न्यायालय के न्यायधीश भी हैं, के वेतन तथा भत्ते में कमी करने के लिए
- **c)** धन विधेयकों या ऐसे अन्य विधेयकों को राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित किए जाने के बाद राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित करने के लिए।

◆ केन्द्र के निर्देश को न मानने का प्रभाव

अनुच्छेद 365 के अनुसार यदि राज्य सरकारें केन्द्र सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने में असमर्थ रहती है या पालन करने में उपेक्षा बरतती है, तो उन्हें केन्द्र सरकार की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा बर्खास्त किया जा सकता है और राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सकता है।

❒ जल संबंधी विवाद

संविधान के अनुच्छेद 262 के तहत् संसद विधि द्वारा विभिन्न राज्यों के मध्य नदियों और नदी घाटियों के जल के प्रयोग, वितरण तथा नियंत्रण से संबंधित विवादों के न्याय निर्णयन के लिए प्रावधान कर सकती है। संसद ऐसे किसी विवाद के संबंध में न्यायालय की अधिकारिता पर रोक भी कर सकती है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❐ अन्तर्राज्यीय परिषद्

संविधान के अनुच्छेद 263 में केन्द्र व राज्य के मध्य सामूहिक महत्व के विषयों की जांच व बहस के लिए अन्तर्राज्यीय परिषद् का गठन का प्रावधान किया गया है। अन्तर्राज्यीय परिषद् के गठन का अधिकार राष्ट्रपति को है। सर्वप्रथम अन्तर्राज्यीय परिषद् का गठन मई, 1990 में किया गया। प्रधानमंत्री इस परिषद् का अध्यक्ष होता है। परिषद् में प्रधानमंत्री द्वारा मनोनीत 6 कैबिनेट मंत्रियों के अलावा राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों के मुख्यमंत्री व प्रशासक पदेन सदस्य होते हैं। इसकी प्रकृति केवल सलाहकारी होती है।

❐ अखिल भारतीय सेवाएं

संविधान संघात्मक होने के कारण संघ एवं राज्य सरकारों के लिए अलग-अलग सेवाओं की व्यवस्था करता है, लेकिन कुछ ऐसी सेवाओं की भी व्यवस्था करता है, जो संघ एवं राज्य सरकारें दोनों के लिए समान है। इन्हें अखिल भारतीय सेवाएं कहते हैं। इन सेवाओं को केन्द्र एवं राज्य द्वारा संयुक्त रूप से नियंत्रित किया जाता है। इनके सदस्यों की नियुक्ति एवं प्रशिक्षण केन्द्र द्वारा की जाती है। इन पर पूर्ण नियंत्रण केन्द्र सरकार का एवं तात्कालिक नियंत्रण राज्य सरकार का होता है। इस प्रकार अखिल भारतीय सेवाओं के माध्यम से केन्द्र राज्यों पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित करता है।

उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद 312 राज्यसभा को यह अधिकार देता है कि वह एक प्रस्ताव (उपस्थित तथा मतदान करने वाले 2/3 सदस्यों से) के आधार पर नई अखिल भारतीय सेवाओं का गठन कर सकती है।

वित्तीय संबंध

संविधान के भाग 12 (अनुच्छेद 264-293) में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय संबंधों के बारे में प्रावधान किया गया है। इन वित्तीय संबंधों में 2 बातें महत्वपूर्ण हैं

1) संघ और राज्य के मध्य कराधान की शक्तियों का विभाजन।
2) संघ और राज्य के मध्य राजस्व का विभाजन।

❐ संघ और राज्य के मध्य कराधान की शक्तियों का विभाजन

अनुच्छेद 265 के अनुसार कोई कर विधि बनाकर ही आरोपित एवं संग्रहित किया जाएगा। इससे स्पष्ट है कि कोई कर विधायिका द्वारा ही लगाया जा सकता है, कार्यपालिका द्वारा नहीं। दूसरा, अनुच्छेद 265 कर का उल्लेख करता है, शुल्क नहीं। संविधान में केन्द्र राज्य के मध्य कर शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया गया है, जो निम्नलिखित है -

1) संसद को संघ सूची में वर्णित विषयों (जिनकी संख्या 15 है) पर कर लागने का अधिकार दिया गया है। इसे संघीय कर कहा जाता है।
2) राज्य विधानमण्डल को राज्य सूची मे वर्णित विषयों (जिनकी संख्या 20 है) पर कर लगाने का अधिकार दिया गया है। इसे राज्य कर कहते हैं।
3) संसद व राज्य विधानमण्डल दोनों को समवर्ती सूची पर कर लगाने का अधिकार दिया गया है।
4) अवशिष्ट विषय पर कर लगाने का अधिकार संसद को दिया गया है।

❐ संघ और राज्य के मध्य राजस्व का विभाजन

संघ और राज्य के मध्य राजस्व के बंटवारे का विभाजन निम्नलिखित तरीके से होगा -

1) अनुच्छेद 268 के अनुसार ऐसे कर जो केन्द्र सरकार द्वारा लगाए जाते हैं, किन्तु राज्यों द्वारा एकत्र व प्रयुक्त किए जाते हैं, जैसे - स्टाम्प शुल्क, औषधीय एवं प्रसाधन सामग्री पर कर, दवा तथा मादक द्रव्यों पर कर आदि।
2) अनुच्छेद 268(A) के अनुसार ऐसे कर जो केन्द्र सरकार द्वरा लगाए जाते हैं और केन्द्र तथा राज्य दोनों द्वारा संग्रहित व प्रयुक्त किए जाते हैं। इसके अन्तर्गत सेवा कर को रखा गया है। उल्लेखनीय है कि 88वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा अनुच्छेद 268(A) को जोड़कर सेवाओं पर कर लगाने का अधिकार केन्द्र सरकार को प्रदान किया गया है।
3) अनुच्छेद 269 के अनुसार ऐसे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए एवं एकत्र किए जाते हैं, किन्तु राज्यों को सौंप दिए जाते हैं। उल्लेखनीय है कि इन करों की प्राप्तियां भारत की संचित निधि का भाग नहीं बनती है। इसके अन्तर्गत केवल 2 कर हैं - वस्तुओं के क्रय-विक्रय कर एवं वस्तुओं के पारेषण (Consignment) पर कर।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

4) अनुच्छेद 270 के अनुसार ऐसे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए तथा एकत्र किए जाते हैं और प्राप्त राजस्व को केन्द्र तथा राज्य के मध्य बांट दिया जाता है। वर्तमान में इसके अन्तर्गत सभी कर, शुल्क, अधिभार (Surcharge), उपकर (Cess) आते हैं। उल्लेखनीय है कि किसी वित्तीय वर्ष में ऐसे करों एवं शुल्कों को वित्त आयोग की सिफारिश के बाद राज्यों को दिया जाता है। 13वें वित्त आयोग ने 2010-15 के लिए राज्यों का अंश 32 प्रतिशत करने की सिफारिश की थी।

❐ संघ के प्रयोजन के लिए अधिभार

अनुच्छेद 271 के तहत् संसद को अधिभार (Surcharge) लगाने की शक्ति दी गई है। ऐसे अधिभार की सम्पूर्ण आय सीधे केन्द्र को प्राप्त होती है। इनमें राज्यों का कोई हिस्सा नहीं होता है।

❐ राज्यों को सहायता अनुदान

केन्द्र-राज्यों वित्तीय संबंधों के अन्तर्गत संविधान में व्यवस्था की गई है कि केन्द्र राज्यों को सहायतार्थ अनुदान प्रदान कर सकते हैं। यह अनुदान 2 प्रकार हैं -

1) **विधिक अनुदान** - अनुच्छेद 275 के तहत् संसद को यह अधिकार दिया गया है कि वह भारत की संचित निधि से राज्यों को सहायतार्थ अनुदान प्रदान कर सकती है। यह अनुदान किसी राज्य को अनुसूचित जनजातियों के कल्याण की अभिवृद्धि करने या राज्य में अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन स्तर को उन्नत करने के लिए दिया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि यह अनुदान वित्त आयोग की अनुशंसा पर दिया जाता है।

2) **विवेकाधीन अनुदान** - अनुच्छेद 282 के तहत् यह प्रावधान है कि राज्य या केन्द्र सरकार किसी लोक प्रयोजन या सामाजिक कार्य हेतु अनुदान प्रदान कर सकती है। इस प्रावधान के तहत् केन्द्र योजना आयोग की अनुशंसा पर राज्यों को अनुदान प्रदान करते हैं। उल्लेखनीय है कि इन आनुदानों को देने के लिए केन्द्र बाध्य नहीं है। यह पूर्णत: उसके विवेक पर निर्भर करता है।

❐ संघ तथा राज्य की उधार लेने वाली शक्ति

संघ को भारत सरकार के राजस्व की प्रतिभूति पर भारत के बाहर उधार लेने की असीमित शक्ति है, लेकिन संघ इस शक्ति का प्रयोग संसद द्वारा विहित सीमाओं के अधीन कर सकता है। राज्य सरकार भारत से बाहर उधार नहीं ले सकती है।

❐ वित्त आयोग (Finance Commission)

संविधान के अनुच्छेद 280 में वित्त आयोग के गठन का प्रावधान किया गया है। वित्त आयोग प्रत्येक 5 वर्ष पर राष्ट्रपति द्वारा गठित किया जाता है।

◆ संरचना

वित्त आयोग में राष्ट्रपति द्वारा 1 अध्यक्ष तथा 4 सदस्य नियुक्त किए जाएंगे। उनका कार्यकाल राष्ट्रपति के आदेश द्वारा तय होता है, उनकी पुनर्नियुक्ति भी हो सकती है।

वित्त आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की योग्यता व चयन विधि के निर्धारण का अधिकार संसद को दिया गया है। इसके लिए संसद ने वित्त आयोग अधिनियम, 1951 पारित किया। इसके अनुसार वित्त आयोग का अध्यक्ष वह व्यक्ति होगा, जिसे सार्वजनिक जीवन में पर्याप्त अनुभव हो तथा अन्य सदस्यों के लिए निम्नलिखित योग्यताएं निर्धारित की गई हैं -

1) किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश या इस पद के लिए योग्य व्यक्ति,

2) ऐसा व्यक्ति, जिसे भारत के लेखा एवं वित्त मामलों का विशेष ज्ञान हो,

3) ऐसा व्यक्ति, जिसे प्रशासन और वित्तीय मामलों का व्यापक अनुभव हो,

4) ऐसा व्यक्ति, जो अर्थशास्त्र का विशेषज्ञ हो।

◆ वित्त आयोग के कार्य

संविधान के अनुसार वित्त आयोग के निम्नलिखित मामलों पर भारत के राष्ट्रपति को सिफारिश करता है -

1) केन्द्र और राज्य के मध्य करों के शुद्ध आगमों के वितरण के बारे में और राज्यों के बीच ऐसे आगमों के आवंटन के बारे में,

2) भारत की संचित निधि में से राज्यों के राजस्व में सहायता अनुदान निर्धारित करने सिद्धान्तों के बारे में,

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

3) राज्यों के वित्त आयोग की सिफारिश के आधार पर पंचायतों और नगरपालिकाओं के संसाधनों की पूर्ति के लिए राज्य की संचित निधि में संवंर्धन के लिए आवश्यक उपायों के बारे में,

4) वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए किसी अन्य विषय के बारे में।

उल्लेखनीय है कि वित्त आयोग द्वारा की गई प्रत्येक सिफारिश को राष्ट्रपति उस पर की गई कार्यवाई के स्पष्टीकरण ज्ञापन सहित संसद के सदनों के समक्ष रखता है।

❐ केन्द्र-राज्य संबंधों में टकराव व तनाव के क्षेत्र

1950 से लेकर 1967 तक भारत में केन्द्र व राज्य के मध्य संबंध सहयोग और सद्भावना पर आधारित रहे। इसका मुख्य कारण केन्द्र तथा लगभग सभी राज्यों में कांग्रेस दल के प्रभुत्व का होना था। 1967 के आम चुनाव के पश्चात् भारत के 8 राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकार की स्थापना हुई। इस राजनीतिक परिवर्तन के फलस्वरूप राज्यों की गैर-कांग्रेसी सरकारों तथा केन्द्रीय सरकार के मध्य टकराव व तनाव प्रारंभ हुआ, जो वर्तमान में जारी है। केन्द्र तथा राज्यों के मध्य 1967 के बाद से जो टकराव उत्पन्न हुए हैं, उसके निम्नलिखित कारण हैं -

1) केन्द्र-राज्य संबंधों में तनाव का सबसे गंभीर कारण राज्यपाल की शक्तियों एवं स्थिति के संबंध में है। वस्तुत: राज्यपाल केन्द्र का प्रतिनिधि है, जो राज्यों में केन्द्र का वर्चस्व बनाए रखने में सहयोग देता है। राज्यपाल पर पक्षपात एवं दलीय हितों को बढ़ावा देने का आरोप उन सभी राज्यों में लगाया गया, जहां गैर-कांग्रेसी सरकारों की स्थापना हुई थी।

2) राज्यों का यह आरोप है कि राष्ट्रपति शासन लागू होने के पीछे दलीय भावना छुपी होती है, जो पक्षपात करती है। यदि केन्द्र एवं राज्य में अलग-अलग दल की सरकार है, तो ऐसी स्थिति में केन्द्र पक्षपात पूर्ण व्यवहार कर राष्ट्रपति शासन लगवाने का प्रयास करता है।

3) केन्द्र-राज्य के मध्य विवाद का अन्य विषय शांति तथा व्यवस्था को लेकर रहा है। कई बार केन्द्र शांति तथा व्यवस्था बनाए रखने हेतु केन्द्रीय बलों की तैनाती करता है, जिसे राज्य अनावश्यक हस्तक्षेप के रूप में देखते हैं।

4) भारतीय संविधान में शक्तियों का वितरण केन्द्र के पक्ष में अधिक है। अत: राज्य इस बात की मांग करते हैं कि उन्हें अधिक स्वायत्ता मिले। इस संदर्भ में राजमन्नार समिति ने भी सिफारिश की थी कि संघ सूची एवं सम्वर्ती सूची में से कुछ विषयों को निकालकर राज्य सूची में डाल देने चाहिए।

5) केन्द्र-राज्य संबंधों में आर्थिक विवाद तनाव का सबसे महत्वपूर्ण कारण है। राज्य सरकारों के आर्थिक साधन सीमित हैं, वह अपने उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए केन्द्र सरकार से आर्थिक अनुदान व ऋण मांगती रहती है। यह अनुदान केन्द्र के विवेक निर्भर करता है। राज्यों द्वारा यह आरोप लगाया जाता है कि केन्द्र अनुदान देने में उदार एवं निष्पक्ष रवैया नहीं अपनाती है।

6) कई बार केन्द्र सरकार राज्यों पर यह आरोप लगाती है कि वह अपने दायित्वों को पूरा करने हेतु उदासीन रहते हैं और केन्द्रीय योजनाओं का क्रियान्वयन ठीक ढंग से नहीं करते हैं।

7) राज्य कई बार यह अनुभव करते हैं कि उनकी विधायी-प्रशासनिक शक्तियां सीमित हैं। कुछ विधेयकों को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए आरक्षित रखना पड़ता है।

8) इसके अलावा अखिल भारतीय सेवाओं, राज्य सूची में केन्द्र का अतिक्रमण आदि भी विवाद के बिन्दु हैं।

❐ केन्द्र-राज्य संबंधों पर गठित आयोग/समितियां

भारतीय संविधान में केन्द्र-राज्य संबंधों के विषय में स्पष्ट प्रावधान होने के बावजूद कई मुद्दों को लेकर दोनों में टकराहट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जैसे - जब केन्द्र में सत्तारूढ़ राजनीतिक दल के विरोधी दलों की सरकार राज्यों में गठित हुई है, तब केन्द्रों तथा राज्यों के बीच तनाव में वृद्धि हुई है। अत: केन्द्र-राज्य संबंधों में मजबूती एवं विश्वास बढ़ाने के लिए समय-समय पर निम्नलिखित आयोग का गठन किया गया है -

1) **प्रशासनिक सुधार आयोग** - इस आयोग का गठन 1966 में केन्द्र सरकार द्वारा मोरारजी देसाई की अध्यक्षता में किया गया था।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

2) **राजमन्नार समिति** – इस समिति का गठन 1969 में तमिलनाडु सरकार द्वारा डॉ. पी. वी. राजमन्नार की अध्यक्षता में केन्द्र-राज्य संबंधों की समीक्षा करने हेतु किया गया था।

3) **भगवान सहाय समिति** – इस समिति का गठन 1971 में हुआ था। इस समिति ने केवल मुख्यमंत्री एवं राज्यपालों के संबंधों को लेकर अपनी रिपोर्ट सौंपी थी।

4) **सरकारिया आयोग** – इस आयोग का गठन 1983 में केन्द्र सरकार द्वारा उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश आर. एस. सरकारिया की अध्यक्षता में किया गया था।

5) **पुंछी आयोग** – इस आयोग का गठन 2007 में केन्द्र सरकार द्वारा भारत के भूतपूर्व न्यायाधीश मदन मोहन पुंछी की अध्यक्षता में किया गया था।

❐ केन्द्र-राज्य संबंधों से जुड़ी अन्य संस्थाएं

केन्द्र-राज्य संबंधों को मजबूती प्रदान करने के लिए कुछ संवैधानेत्तर (Non-constitutional) संस्थाएं भी हैं, जो निम्नलिखित हैं –

1) नीति आयोग।
2) राष्ट्रीय विकास परिषद्।
3) राष्ट्रीय एकता परिषद् (1986)।
4) क्षेत्रीय परिषद् (राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 के द्वारा)।

❐ निष्कर्ष

भारतीय संविधान की मूल भावना संघात्मक है, जिसकी सर्वप्रमुख विशेषता केन्द्र-राज्य में शक्तियों का वितरण है। किन्तु संविधान ने देश की एकता एवं अखण्डता बनाए रखने के उद्देश्य से ही केन्द्र को शक्तिशाली बनाया है। यह बात स्पष्ट है कि भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा वर्तमान विघटनकारी तत्व देश की सम्प्रभुता के समक्ष एक चुनौती है। संविधान निर्माताओं ने भारतीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही राज्यों की स्वयत्ता की मांग को न मानकर एक शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना की है। वर्तमान में केन्द्र एवं राज्य के मध्य विवाद के बिन्दु जो हैं, वस्तुतः वह राजनीतिक हितों, स्वार्थों एवं दलीय भावना से ग्रसित हैं। यदि सभी दल राजनीतिक इच्छा शक्ति का परिचय दे, तो केन्द्र-राज्य संबंध को बेहतर बनाया जा सकता है।

❐ भारतीय संविधान की प्रकृति (Nature of the Indian Constitution)

भारतीय संविधान की प्रकृति संघात्मक है या एकात्मक इसके संबंध में विद्वानों में मतभेद है। **जी. ऑस्टिन** भारतीय संविधान को **सहकारी परिसंघ** कहते हैं, जबकि **के. सी. ह्वीयर** के अनुसार यह **अर्द्धसंघीय संविधान** है। किन्तु डॉ. भीमराव आम्बेडकर का यह मानना है कि भारतीय संविधान समय व परिस्थितियों की मांग के अनुसार एकात्मक एवं संघात्मक हो सकता है। वास्तविक स्थिति यह है कि भारत का संविधान न तो पूर्णतः एकात्मक है और न ही संघात्मक, बल्कि इसमें एकात्मक एवं संघात्मक दोनों संविधान के तत्व निहित हैं। सरल शब्दों में इसे एकात्मकता की ओर झुकाव के साथ संघात्मक संविधान कह सकते हैं।

- **भारतीय संविधान में संघात्मक संविधान के लक्षण (Federal Features of the Indian Constitution)**

1) कठोर संविधान व संशोधन की जटिल प्रक्रिया।
2) लिखित संविधान।
3) संघ तथा राज्यों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन।
4) स्वतंत्र न्यायपालिका।
5) न्यायापालिका का कार्यपालिका तथा विधायिका के कार्यों पर पर्यवेक्षण।
6) संविधान की सर्वोच्चता।
7) केन्द्र तथा राज्यों में पृथक सरकारें।

- **भारतीय संविधान में एकात्मक संविधान के लक्षण (Unitary Features of the Indian Constitution)**

1) सशक्त केन्द्र।
2) एकल संविधान।
3) एकल नागरिकता।
4) एकीकृत न्यायपालिका।
5) आपातकालीन उपबंध।
6) संविधान का लचीलापन।
7) राज्यपाल की नियुक्ति।
8) राज्य सूची पर संसद का अधिकार।
9) अखिल भारतीय सेवाएं।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

आपात उपबंध
Emergency Provisions

भारतीय संविधान में राष्ट्र की एकता व अखण्डता को बनाए रखने के उद्देश्य से आपातकालीन उपबंधों को शामिल किया गया है। आपातकालीन स्थिति में भारतीय संविधान का स्वरूप संघात्मक से एकात्मक हो जाता है। इनका उल्लेख संविभान के भाग 18 (अनुच्छेद 352-360) में किया गया है। संविधान में 3 प्रकार के आपातकाल की व्यवस्था की गई है, जो निम्नलिखित है -

1) राष्ट्रीय आपातकाल। **2)** राष्ट्रपति शासन। **3)** वित्तीय आपातकाल।

राष्ट्रीय आपातकाल

❐ घोषणा का आधार

अनुच्छेद-352 के अन्तर्गत राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा निम्नलिखित में से किसी भी आधार पर राष्ट्रपति द्वारा की जाती है -

1) युद्ध। **2)** बाह्य आक्रमण। **3)** सशस्त्र विद्रोह।

उल्लेखनीय है कि युद्ध, बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह हो या होने की आशंका हो, तो भी राष्ट्रपति राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा कर सकता है। मूल संविधान में राष्ट्रीय आपातकाल के तीसरे आधार के रूप में आन्तरिक अशांति शब्द का प्रयोग किया गया था, जिसे 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा सशस्त्र विद्रोह से प्रतिस्थापित किया गया है।

राष्ट्रपति राष्ट्रीय आपातकाल की उद्घोषणा केवल केन्द्रीय मंत्रिमण्डल (कैबिनेट) की लिखित सिफारिश प्राप्त होने पर ही कर सकता है। इसका तात्पर्य है कि आपातकाल की घोषणा केवल केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की सहमति से ही हो सकती है, न कि केवल प्रधानमंत्री की सलाह से।

❐ अनुमोदन

आपातकाल की उद्घोषणा 1 माह के अन्दर संसद द्वारा अनुमोदित होना आवश्यक है। यह अनुमोदन विशेष बहुमत से पारित होना चाहिए। एक बार अनुमोदित होने पर आपातकाल उद्घोषणा 6 माह तक जारी रहेगी तथा प्रत्येक 6 माह में संसद के अनुमोदन से इसे कितनी ही समयावधि के लिए बढ़ाया जा सकता है।

आपातकाल की उद्घोषणा तब की जाती है, जब लोकसभा का विघटन हो गया है या लोकसभा का विघटन 1 माह के अन्तर्गत आपात उद्घोषणा का अनुमोदन किए बिना हो जाता है, तो आपातकाल की उद्घोषणा को लोकसभा की प्रथम बैठक से 30 दिन के अन्दर अनुमोदित होना आवश्यक है, अन्यथा अपातकाल की उद्घोषणा प्रवर्तन में नहीं रहेगी।

❐ समयावधि

राष्ट्रीय आपातकाल उद्घोषणा को राष्ट्रपति द्वारा किसी भी समय वापस लिया जा सकता है। ऐसी उद्घोषणा को संसद से अनुमोदन कराने की आवश्यकता नहीं होती। इसके अलावा लोकसभा की कुल सदस्य संख्या के 1/10 सदस्य अध्यक्ष को (अथवा राष्ट्रपति को यदि सदन नहीं चल रहा हो) लिखित रूप से नोटिस दे, तो 14 दिनों के अन्दर आपातकाल उद्घोषणा को वापस लेने हेतु लोकसभा की विशेष बैठक आयोजित की जाएगी। इस विशेष बैठक में आपातकाल उद्घोषणा को वापस लेने का प्रस्ताव साधारण बहुमत से पारित हो जाता है, तो राष्ट्रपति उद्घोषणा को वापस लेने के लिए बाध्य होता है।

❐ क्षेत्रीय विस्तार

आपात उद्घोषणा के लिए आवश्यक नहीं है कि इसकी घोषणा सम्पूर्ण देश के लिए की जाए। इस घोषणा को देश के किसी भाग तक सीमित किया जा सकता है।

❐ प्रभाव

राष्ट्रीय आपातकाल उद्घोषण का निम्नलिखित प्रभाव होता है -

1) संघ कार्यपालिका को राज्यों को निर्देश देने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। राज्य कार्यपालिका केन्द्र के निर्देशानुसार कार्य करती है। ध्यातव्य है कि राज्य सरकार केन्द्र सरकार के पूर्ण नियंत्रण में हो जाती है, किन्तु निलम्बित नहीं होती है।

2) संसद को राज्य सूची में किसी भी विषय पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

3) राष्ट्रपति आदेश द्वारा केन्द्र और राज्यों के वित्तीय संबंध में परिवर्तन कर सकता है।

4) संसद को लोकसभा व विधानसभा की अवधि में वृद्धि करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। संसद लोकसभा व विधानसभा की अवधि में एक बार में 1 वर्ष की वृद्धि कर सकती है। यह वृद्धि आपातकाल उद्घोषणा के जारी न रहने की स्थिति में 6 माह बाद स्वत: समाप्त हो जाती है।

5) अनुच्छेद 358 के अनुसार अनुच्छेद 19 का स्वत: निलम्बन हो जाता है।

6) अनुच्छेद 359 के अनुसार राष्ट्रपति आदेश द्वारा भाग 3 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों (अनुच्छेद 20 एवं 21 को छोड़कर) को निलम्बित कर सकता है।

देश में अब तक 3 बार राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा की गई है –

1) 24 अक्टूबर, 1962 को नेफा में चीनी आक्रमण के समय राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा की गई थी।

2) 3 दिसम्बर, 1971 को उस समय आपात काल लागू किया गया, तब पाकिस्तान ने भारत के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दिया था। आपातकाल संबंधी ये दोनों ही घोषणाएं बाह्य आक्रमण के आधार पर की गई थी।

3) 25 जून, 1975 को गई थी, जो आन्तरिक अशांति के आधार पर थी।

राष्ट्रपति शासन

अनुच्छेद-355 के अनुसार संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह बाह्य आक्रमण एवं आन्तरिक अशांति से प्रत्येक राज्य की सुरक्षा करे। साथ ही संघ का यह कर्तव्य भी है कि प्रत्येक राज्य सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार ही कार्य करे। इस प्रकार यदि राज्य सरकार संविधान के उपबंधों के अनुरूप शासन चलाने में असमर्थ है, तो केन्द्र राज्य सरकार को अपने नियंत्रण में ले सकता है। इसे ही सामान्य रूप से राष्ट्रपति शासन के नाम से जाना जाता है।

❐ घोषणा का आधार

राष्ट्रपति शासन की राष्ट्रपति द्वारा 2 आधारों पर उद्घोषणा की जा सकती है –

1) अनुच्छेद 356 के अनुसार यदि राष्ट्रपति को किसी राज्यपाल से प्रतिवेदन मिलने पर या स्वयं यह समाधान हो जाता है कि राज्य का शासन संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है, तो राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा की जा सकती है। यहां पर राष्ट्रपति के समाधान का तात्पर्य केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् के समाधान से है।

2) अनुच्छेद 365 के अनुसार राष्ट्रपति राज्य में राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा तब भी कर सकता है, जब राज्य, संघ द्वारा दिए गए किसी निर्देश का अनुपालन करने में असफल रहता है।

❐ अनुमोदन एवं समयावधि

राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा 2 माह के अन्दर संसद द्वारा साधारण बहुमत से अनुमोदित होना आवश्यक है। एक बार अनुमोदित होने पर राष्ट्रपति शासन 6 माह तक जारी रहेगा। संसद की प्रत्येक 6 माह की स्वीकृति से इसे आगे बढ़ाया जा सकता है, किन्तु इसे अधिकतम 3 वर्ष तक प्रवर्तन में रखा जा सकता है। ध्यातव्य है कि 1 वर्ष के पश्चात् राष्ट्रपति शासन को तभी बढ़ाया जा सकता है, जब निम्नलिखित शर्तें पूरी हो –

1) यदि पूरे भारत में अथवा राज्य में या उसके किसी भाग में राष्ट्रीय आपातकाल प्रवर्तन में हो, और

2) निर्वाचन आयोग यह प्रमाणित कर दे कि संबंधित राज्य में विधानसभा चुनाव कराना संभव नहीं है।

राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा तब की जाती है, जब लोकसभा का विघटन हो गया है या लोकसभा का विघटन 2 माह में अनुमोदन किए बिना हो जाता है, तो राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा को लोकसभा की प्रथम बैठक से 30 दिन के अन्दर अनुमोदित होना आवश्यक है, अन्यथा राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा प्रवर्तन में नहीं रहेगी। राष्ट्रपति किसी भी समय राष्ट्रपति शासन की उद्घषणा को वापस ले सकता है। ऐसी घोषणा के लिए संसद की अनुमति की आवश्यकता नहीं होती है।

❐ प्रभाव

राष्ट्रपति शासन के दौरान राष्ट्रपति राज्य सरकार के कार्य अपने हाथ में ले लेता है और राज्यपाल उसके प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। साथ ही राज्य की विधायी शक्ति का प्रयोग संसद कर सकती है। इस दौरान राष्ट्रपति अथवा संसद द्वारा बनाया गया कानून

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

राष्ट्रपति शासन की समाप्ति के पश्चात् भी प्रभाव में रहेगा, जब तक कि विधानमण्डल इसे समाप्त न कर दे। राष्ट्रपति शासन सर्वप्रथम पंजाब (1951) में लगाया था।

❐ अनुच्छेद 352 एवं 356 में अन्तर

1) अनुच्छेद 352 की उद्घोषणा पर राज्य की कार्यपालिका एवं विधायिका यथावत् कार्य करती है। इस उद्घोषणा का प्रभाव केवल इतना होता है कि केन्द्र को राज्यों के विधायी विषयों और प्रशासन की समवर्ती शक्ति प्राप्त हो जाती है। जबकि अनुच्छेद 356 के अधीन राज्य विधानमण्डल निलम्बित या विघटित हो जाता है तथा राज्य की विधायिका एवं कार्यपालिकीय शक्ति केन्द्र सरकार में निहित हो जाती है।

2) अनुच्छेद 352 सभी राज्यों पर लागू होता है। जबकि अनुच्छेद 356 केवल उसी राज्य पर लागू होता है, जहां संवैधानिक तंत्र विफल हो गया हो।

3) अनुच्छेद 352 के तहत् मूल अधिकारों में भी परिवर्तन हो जाता है, जबकि अनुच्छेद 356 के तहत् मूल अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

वित्तीय आपातकाल

❐ घोषणा का आधार

संविधान के अनुच्छेद 360 के तहत् राष्ट्रपति द्वारा वित्तीय आपातकाल की उद्घोषणा की जाती है। राष्ट्रपति यह घोषणा तब करता है, जब उसे विश्वास हो जाए कि ऐसी स्थिति विद्यमान है, जिसके कारण भारत के वित्तीय स्थायित्व या साख को खतरा है।

❐ अनुमोदन एवं समयावधि

वित्तीय आपातकाल की उद्घोषणा 2 माह के अन्दर संसद द्वारा साधारण बहुमत से अनुमोदित होना आवश्यक है। एक बार अनुमोदित होने पर वित्तीय आपातकाल अनिश्चित काल के लिए तब तक प्रभावी रहेगा, जब इसे वापस न लिया जाए।

वित्तीय आपातकाल की उद्घोषणा तब की जाती है, जब लोकसभा का विघटन हो गया है या लोकसभा का विघटन 2 माह में अनुमोदन किए बिना हो जाता है, तो वित्तीय आपातकाल की उद्घोषणा को लोकसभा की प्रथम बैठक से 30 दिन के अन्दर अनुमोदित होना आवश्यक है, अन्यथा वित्तीय आपातकाल की उद्घोषणा प्रवर्तन में नहीं रहेगी। राष्ट्रपति किसी भी समय वित्तीय आपातकाल की उद्घषणा को वापस ले सकता है। ऐसी घोषणा के लिए संसद की अनुमति की आवश्यकता नहीं होती है।

❐ प्रभाव

वित्तीय आपातकाल का निम्नलिखित प्रभाव होता है –

1) राष्ट्रपति आर्थिक दृष्टि से किसी भी राज्य सरकार को निर्देश दे सकता है,

2) उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों और संघ एवं राज्य सरकारों के अधिकारियों के वेतन में कमी की जा सकती है,

3) राष्ट्रपति को यह शक्ति प्राप्त हो जाती है कि वह राज्य सरकारों को यह निर्देश दे कि राज्य के समस्त वित्त व धन विधेयक उसकी स्वीकृति से विधानसभा में प्रस्तुत किए जाए, तथा

4) राष्ट्रपति केन्द्र तथा राज्यों में राजस्व संबंधी विभाजन के प्रावधानों में आवश्यक संशोधन कर सकता है।

उल्लेखनीय है कि देश में वित्तीय आपातकाल नहीं लगा है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

संघ तथा राज्यों के अधीन सेवाएं
Services Under the Union & the States

भारतीय संविधान के अन्तर्गत लोक सेवाओं को 3 भागों में विभाजित किया गया है, जो निम्नलिखित हैं –

1) **अखिल भारतीय सेवाएं** – भारत की लोक सेवाओं में अखिल भारतीय सेवाओं का सर्वोच्च स्थान है। ये सेवाएं केन्द्र एवं राज्य दोनों से समान रूप से संबद्ध हैं। इनका गठन संविधान के अनुच्छेद-312 के तहत् किया जाता है। अखिल भारतीय सेवाएं उन्हें कहा जाता है, जिनके अधिकारी केन्द्र (संघ लोक सेवा आयोग) द्वारा भर्ती किए जाते हैं तथा केन्द्र के नियंत्रण में रहते हैं, जबकि सेवाएं राज्यों में देते हैं। इन अधिकारियों के विरुद्ध कोई भी अनुशासनात्मक कार्यवाही केवल केन्द्र सरकार द्वारा की जा सकती है। वर्तमान में अखिल भारतीय सेवा के अन्तर्गत 3 सेवाएं शामिल हैं –

a) भारतीय प्रशासनिक सेवा – IAS, (कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय)।

b) भारतीय पुलिस सेवा – IPS, (गृह मंत्रालय)।

c) भारतीय वन सेवा – IFS, (पर्यावरण तथा गृह मंत्रालय)।

भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा दोनों ही सेवाएं स्वतंत्रता के समय विद्यमान थी। 1 जुलाई, 1966 को भारतीय वन सेवा को अखिल भारतीय सेवा के रूप में गठित किया गया। इन सेवाओं का नियमन अखिल भारतीय सेवा अधिनियम, 1951 के अन्तर्गत होता है। इस अधिनियम के तहत् केन्द्र सरकार अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों की भर्ती और सेवा-शर्तों के संदर्भ में राज्य सरकार की सलाह से नियम बना सकती है। इन सेवाओं के सदस्यों को विभिन्न राज्यों का संवर्ग (केडर) आवंटित किया जाता है। वर्तमान में 24 राज्य संवर्ग (केडर) हैं।

2) **केन्द्रीय सेवाएं** – केन्द्रीय सेवाएं राष्ट्रीय स्तर की होती हैं, जो केवल भारत संघ के लिए है। केन्द्र सरकार के विभिन्न मंत्रालयों में कार्य करने वाले अधिकारी तथा कर्मचारी केन्द्रीय सेवाओं के कार्मिक होते हैं। ये कार्मिक विभिन्न विभागों में कार्यपरक और तकनीकी पदों पर नियुक्त होते हैं। संसद इन सेवाओं में नियुक्ति तथा सेवा के शर्तों के संबंध में कानून बनाती है। इन सेवाओं के कर्मचारी राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त अपने पद पर बने रहते हैं।

केन्द्रीय सेवाओं के कार्मिक संबद्ध मंत्रालयों के प्रबंधन एवं नियंत्रण में तथा कुछ 'कार्मिक मंत्रालय' के प्रबंधन एवं नियंत्रण में होते हैं। कार्मिक मंत्रालय सभी केन्द्रीय सेवाओं संबद्ध सामान्य नीतियों का निर्धारण भी करता है। केन्द्रीय सेवाओं को 4 श्रेणियों में बांटकर उनके कार्य तथा योग्यता को निश्चित किया गया है, जो निम्नलिखित हैं –

a) **केन्द्रीय सेवाएं : वर्ग ए** – इस समूह में 34 सेवाएं हैं। इस श्रेणी की मुख्य सेवाएं निम्नलिखित हैं – भारतीय विदेश सेवा, भारतीय डाक सेवा, भारतीय राजस्व सेवा, रेल कार्मिक सेवा, केन्द्रीय सूचना सेवा आदि।

b) **केन्द्रीय सेवाएं – वर्ग बी** – इस श्रेणी में 25 सेवाएं हैं।

c) **केन्द्रीय सेवाएं – वर्ग सी** – इस श्रेणी की सेवाओं में लिपिकीय कर्मचारी होते हैं।

d) **केन्द्रीय सेवाएं – वर्ग डी** – इस श्रेणी की सेवाओं में श्रमिक कर्मचारी होते हैं।

श्रेणी ए तथा बी में राजपत्रित अधिकारी व श्रेणी सी एवं डी में गैर-राजपत्रित अधिकारी होते हैं।

3) **राज्य सेवाएं** – ये सेवाएं केवल राज्य के लिए होती हैं। इन सेवाओं में नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है तथा इन सेवाओं के सदस्य राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त अपने पद पर बने रहते हैं। राज्य सेवा में नियुक्ति तथा सेवा-शर्तों के संबंध में विधि का निर्माण राज्य विधानमण्डल द्वारा किया जाता है।

❐ संवैधानिक प्रावधान

किसी भी राष्ट्र का कुशल प्रशासन वहां के लोक सेवकों पर निर्भर करता है। लोक सेवक अपने कर्तव्यों को बिना किसी राजनीतिक दबाव निष्पक्षता एवं स्वतंत्रता से कार्यान्वित कर सके। इसीलिए संविधान में इनके कार्यकाल, सेवा-शर्तें और संवैधानिक संरक्षण से संबंधित उपबंध किए गए हैं। संविधान के भाग-14 (अनुच्छतचेद 308-323) में संघ एवं राज्य के अधीन सेवाओं से संबंधित प्रावधान किए गए हैं।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **भर्ती तथा सेवा शर्तों का विनियमन**

अनुच्छेद-309 के तहत् संसद एवं राज्य विधायिका क्रमशः केन्द्रीय एवं राज्य लोक सेवाओं में भर्ती तथा सेवा शर्तों के संबंध बनाने शक्ति प्रदान की गई है। भर्ती में नियुक्ति, चयन, प्रतिनियुक्ति, पदोन्नति एवं स्थानान्तरण शामिल हैं, जबकि सेवा शर्तों में वेतन-भत्ते, अवकाश, कार्यकाल आदि शामिल हैं। इस अनुच्छेद के तहत् संसद एवं राज्य विधानमण्डल किसी लोक सेवक के मौलिक अधिकारों पर सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, दक्षता, अनुशासन, निष्पक्षता, गोपनीयता आदि के हितों में युक्तियुक्त प्रतिबंध लगा सकती है।

- **कार्यकाल**

अनुच्छेद-310 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति, जो संघ की प्रतिरक्षा, सेवा या अखिल भारतीय सेवा का सदस्य है, वह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत पद धारण करता है। इसी प्रकार राज्य लोक सेवकों के सदस्यगण राज्यपाल के प्रसादपर्यंत पद धारण करते हैं।

- **लोक सेवकों को संवैधानिक संरक्षण**

प्रतिरक्षा सेवा के सदस्यों को छोड़कर भारतीय संविधान के अनुच्छेद-311 में लोक सेवकों के संरक्षण के संबंधों में निम्नलिखित प्रावधान किए गए हैं -

1) कोई भी लोक सेवक नियुक्ति करने वाले प्राधिकारी के अधीनस्थ किसी प्राधिकारी द्वारा पद से नहीं हटाया जाएगा।
2) किसी भी लोक सेवक के विरूद्ध कोई पदच्युति का, हटाए जाने का या पदावनत किए जाने का आदेश तभी दिया जा सकेगा, जब उसके विरूद्ध आरोपों के संबंध में उसे सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर दिया गया हो।

❐ अखिल भारतीय सेवाएं

अनुच्छेद-312 संसद को संघ एवं राज्यों के लिए अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन करने की शक्ति प्रदान करता है। किन्तु यह शक्ति संसद को तभी प्राप्त होती है, जब राज्यसभा 2/3 बहुमत से ऐसा प्रस्ताव पारित करे कि राष्ट्रीय हित में इन सेवाओं का सृजन करना आवश्यक है।

लोक सेवा आयोग

संविधान के अनुच्छेद 315 में लोक सेवा आयोग के संबंध में प्रावधान किया गया है कि संघ सरकार के लिए संघ लोक सेवा आयोग और प्रत्येक राज्य के लिए राज्य लोक सेवा आयोग होगा। साथ ही यदि दो या दो से अधिक राज्य चाहे, तो उनके लिए राष्ट्रपति एक संयुक्त लोक सेवा आयोग की स्थापना कर सकता है। इसके अतिरिक्त किसी राज्य के अनुरोध पर तथा राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से संघ लोक सेवा आयोग उस राज्य के लिए भी कार्य कर सकता है।

❐ संघ लोक सेवा आयोग

- **नियुक्ति व योग्यता**

संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राष्ट्रपति को संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों की संख्या को निर्धारित करने की शक्ति भी प्राप्त है। वर्तमान समय में संघ लोक सेवा आयोग में 1 अध्यक्ष सहित 10 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं।

संविधान में आयोग के सदस्यों के लिए किसी योग्यता का उल्लेख नहीं है। यद्यपि यह आवश्यक है कि आयोग के आधे सदस्यों को भारत सरकार या राज्य सरकार के अधीन कम से कम 10 वर्ष कार्य करने का अनुभव हो।

- **पदावधि व पदरिक्ति**

संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्य 6 वर्ष की अवधि तक या 65 वर्ष की आयु तक, इनमें जो भी पहले हो, अपना पद धारण करते हैं। वे कभी-भी राष्ट्रपति को त्यागपत्र देकर पद त्याग कर सकते हैं। राष्ट्रपति उन्हें कार्यकाल से पहले भी निम्नलिखित परिस्थितियों में हटा सकता है -

1) राष्ट्रपति उन्हें साबित कदाचार के आधार पर हटा सकता है, किन्तु ऐसे मामलों में राष्ट्रपति को उच्चतम न्यायालय से इसकी जांच करवानी होती है। अगर उच्चतम न्यायालय जांच के बाद बर्खास्त करने का परामर्श देता है, तो राष्ट्रपति अध्यक्ष या सदस्य को पद से हटा देता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

2) कदाचार के अलावा निम्नलिखित परिस्थितियों में भी आयोग के सदस्यों को राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है –

a) दिवालिया होने की स्थिति में,

b) अपनी पदावधि के दौरान अपने पद के कर्तव्यों के बाहर किसी वेतन नियोजन में लगा हो,

c) अगर राष्ट्रपति ऐसा समझता है कि वह मानसिक या शारीरिक असक्षमता के कारण पद पर बने रहने योग्य नहीं है।

- **सेवा शर्तें व वेतन**

संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों की संख्या और उनकी सेवा शर्तों का निर्धारण राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है। आयोग की सेवा शर्तों में उसकी नियुक्ति के बाद कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। उनका वेतन-भत्ता व पेंशन भारत की संचित निधि पर भारित होता है।

- **कार्य**

संघ लोक सेवा आयोग के निम्नलिखित कर्तव्य हैं –

1) यह अखिल भारतीय सेवाओं, केन्द्रीय सेवाओं और केन्द्र शासित राज्यों की लोक सेवाओं की नियुक्ति के लिए परीक्षाएं आयोजित करता है।

2) यह उन राज्यों के अनुरोध पर किसी ऐसी सेवा के लिए संयुक्त भर्ती संबंधी योजना की तैयारी और उसे संचालित करने का कार्य करता है, जिस सेवा के लिए विशेष योग्यताधारी अभ्यर्थियों की आवश्यकता होती है।

3) यह निम्नलिखित राष्ट्रपति को निम्नलिखित विषयों पर सलाह भी देता है –

a) सार्वजनिक लोक सेवाओं में भर्ती के तरीकों के बारे में सभी मामलों पर,

b) सार्वजनिक लोक सेवाओं में नियुक्ति और पदों के लिए अपनाए जाने वाले सिद्धान्तों पर और एक सेवा से दूसरी में स्थानान्तरण तथा पदोन्नति के मामलों पर,

c) अनुशासनात्मक मामलों पर,

d) कानूनी खर्च के प्रतिकर पर,

e) शासकीय सेवा में रहते हुए घायल हो जाने के कारण पेंशन देने के मामले में।

4) संघ की सेवाओं से जुड़े अन्य कार्य भी संसद द्वारा संघ लोक सेवा आयोग को सौंपे जा सकते हैं।

5) संघ की कार्यपालिका द्वारा भी संघ लोक सेवा आयोग को कुछ कार्य दिए जा सकते हैं।

6) संघ लोक सेवा आयोग अपने कार्य निष्पादन से संबंधित रिपोर्ट प्रतिवर्ष राष्ट्रपति को प्रस्तुत करता है।

- **स्वतंत्रता**

संघ लोक सेवा आयोग की कार्यप्रणाली में निष्पक्षता एवं स्वतंत्रता सुनिश्चित करने हेतु निम्न संवैधानिक प्रावधान किए गए हैं –

1) आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों का कार्यकाल की सुरक्षा प्राप्त है, अर्थात् – उन्हें राष्ट्रपति द्वारा ही संविधान में दिए गए आधार तथा प्रक्रिया के अनुसार ही हटाया जा सकता है।

2) आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों की सेवा शर्तों में नियुक्ति के बाद कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

3) आयोग के समस्त व्यय तथा अध्यक्ष व सदस्यों के वेतन भत्ते भारत की संचित निधि पर भारित होते हैं।

4) आयोग के अध्यक्ष अपने कार्यकाल की समाप्ति पर भारत या किसी राज्य सरकार के अधीन कोई पद ग्रहण नहीं करेगा।

5) आयोग के सदस्य अपने कार्यकाल की समाप्ति पर, अध्यक्ष पद को छोड़कर, भारत या किसी राज्य सरकार के अधीन कोई पद ग्रहण नहीं करेगा।

6) आयोग के अध्यक्ष व सदस्य एक बार कार्यकाल पूरा करने के बाद पुनर्नियुक्ति के पात्र भी नहीं होंगे।

- **प्रशिक्षण संस्थान**

1) **लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी** – यह हमारे देश का सर्वप्रमुख प्रशिक्षण संस्थान है। इसकी स्थापना 1959 में मसूरी (उत्तराखण्ड) में हुई थी। वर्तमान में यह कार्मिक मंत्रालय के अधीन है। यह अकादमी अखिल भारतीय सेवाओं तथा केन्द्रीय सेवाओं (ग्रुप ए) के प्रोबेशनरों को 4 माह का आधारभूत प्रशिक्षण पाठ्यक्रम कराता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

2) **सरदार वल्लभभाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी** – 1948 को माउंट आबू (राजस्थान) में केन्द्रीय पुलिस प्रशिक्षण कॉलेज की स्थापना हुई थी। आन्तरिक आपातकाल के दौरान इसे हैदराबाद स्थानान्तरित कर दिया गया था। आगे चलकर कोहली समिति की सिफारिश पर इसका नाम परिवर्तित कर सरदार वल्लभभाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी कर दिया गया। यह गृह मंत्रालय के अधीन है। यह अकादमी आई. पी. एस. प्रोबेशनरों को आधारभूत प्रशिक्षण उपलब्ध कराती है। इसके अलावा राज्य पुलिस एवं अर्द्ध सैनिक बलों के प्रशिक्षण हेतु विशेष पाठ्यक्रम उपलब्ध करती है।

3) **इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वन अकादमी** – 1938 में इंडियन फॉरेस्ट कॉलेज की स्थापना देहरादून में की गई। 1987 में इसका नाम बदलकर इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वन अकादमी कर दिया गया। यह पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के अधीन कार्य करती है। यह अकादमी भारतीय वन सेवा के प्रोबेशनली अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण पाठ्यक्रम उपलब्ध कराती है। इसके अलावा राज्य वन सेवा के अधिकारियों के लिए भी प्रशिक्षण उपलब्ध कराती है।

4) **विदेश सेवा संस्थान** – 1986 में भारतीय अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन स्कूल, नई दिल्ली के स्थान पर विदेश सेवा संस्थान की स्थापना हुई। यह संस्थान आई. एफ. एस. प्रोबेशनरी अधिकारियों के लिए व्यवसायिक प्रशिक्षण उपलब्ध करता है। इसके अलावा विदेशी कूटनीतिज्ञों एवं विदेश मंत्रालय के कर्मचारियों के लिए व्यवसायिक पाठ्यक्रम भी उपलब्ध करता है।

5) **भारतीय ग्रामीण विकास संस्थान** – 1958 में हैदराबाद में केन्द्रीय सामुदायिक विकास अध्ययन एवं अनुसंधान संस्थान की स्थापना की गई थी। आगे चलकर इसका नाम भारतीय ग्रामीण विकास संस्थान कर दिया गया। यह संस्थान ग्रामीण विकास प्रशासन से जुड़े अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण पाठ्यक्रम उलब्ध करता है।

6) **सचिवालय प्रशिक्षण एवं प्रबंधन संस्थान** – केन्द्रीय सचिवालय प्रशिक्षण स्कूल की स्थापना 1948 को दिल्ली में हुई थी। 1971 में इसका नाम बदलकर सचिवालय प्रशिक्षण एवं प्रबंधन संस्थान कर दिया गया। यह संस्थान केन्द्रीय सचिवालय के नए प्रवेशकों के लिए आधारभूत पाठ्यक्रम और व्यवसायिक प्रशिक्षण उपलब्ध करता है।

7) **भारतीय लोक प्रशासन संस्थान** – इसकी स्थापना 1954 में की गई थी। यह केन्द्र सरकार, राज्य सरकार और सार्वजनिक उपक्रम के अधिकारियों के लिए रि-फ्रेशर कोर्स आयोजित करता है। इसके अलावा यह 1975 से वरिष्ठ लोक सेवकों के लिए लोक प्रशासन में 9 माह का व्यवसायिक कार्यक्रम आयोजित भी करता है। यह संस्थान इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन का प्रकाशन करता है।

8) **अन्य प्रशिक्षण संस्थान** – उपरोक्त के अलावा प्रशासनिक अधिकारियों को प्रशिक्षण देने के लिए कुछ प्रमुख प्रशिक्षण संस्थान इस प्रकार हैं –

- रेलवे स्टॉफ कॉलेज (बड़ोदरा)।
- भारतीय राजस्व सेवा (प्रत्यक्ष कर) प्रशिक्षण संस्थान (नागपुर)।
- वि. वि. गिरि राष्ट्रीय श्रम संस्थान (नोएड़ा)।
- राष्ट्रीय लेखा एवं लेखा परीक्षण सेवा स्टाफ कॉलेज (शिमला)।
- डाक एवं तार प्रशिक्षण संस्थान (सहारनपुर)।
- पोस्टल स्टॉफ कॉलेज (गाजियाबाद)।

❐ राज्य लोक सेवा आयोग

◆ नियुक्ति

राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है। राज्यपाल को राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की संख्या को निर्धारित करने की शक्ति भी प्राप्त है। संविधान में आयोग के सदस्यों के लिए किसी योग्यता का उल्लेख नहीं है। यद्यपि यह आवश्यक है कि आयोग के आधे सदस्यों को भारत सरकार या राज्य सरकार के अधीन कम से कम 10 वर्ष कार्य करने का अनुभव हो।

◆ पदावधि व पदरिक्ति

राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्य 6 वर्ष की अवधि तक या 62 वर्ष की आयु तक, इनमें जो भी पहले हो, अपना पद धारण करते हैं। वे कभी-भी राज्यपाल को त्यागपत्र देकर पद त्याग कर सकते हैं। उल्लेखनीय है कि राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल करते हैं, लेकिन उन्हें केवल राष्ट्रपति ही हटा सकता है। राष्ट्रपति उन्हें उसी आधार पर हटा सकता है, जिन आधार पर संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों को हटाया जाता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **सेवा शर्तें व वेतन**

राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की संख्या और उनकी सेवा शर्तों का निर्धारण राज्यपाल द्वारा किया जाता है। आयोग की सेवा शर्तों में उसकी नियुक्ति के बाद कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। उनका वेतन-भत्ता व पेंशन राज्य की संचित निधि पर भारित होता है।

❐ संयुक्त लोक सेवा आयोग

दो या दो से अधिक राज्यों के लिए संविधान में संयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग की व्यवस्था की गई है। संयुक्त लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। संयुक्त लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्य 6 वर्ष की अवधि तक या 62 वर्ष की आयु तक, इनमें जो भी पहले हो, अपना पद धारण करते हैं। वे कभी-भी राष्ट्रपति को त्यागपत्र देकर पद त्याग कर सकते हैं। इसके अलावा राष्ट्रपति उन्हें उसी आधार पर हटा सकता है, जिन आधार पर संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों को हटाया जाता है। संयुक्त लोक सेवा आयोग के सदस्यों की संख्या और उनकी सेवा शर्तों का निर्धारण राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है।

❐ मध्य प्रदेश के प्रशिक्षण संस्थान (Training Institutes of Madya Pradesh)

1) **आर. सी. व्ही. पी. नरोन्हा प्रशासनिक अकादमी, भोपाल** - यह मध्य प्रदेश का सर्वोच्च एवं केन्द्रीय प्रशिक्षण संस्थान है। यह मध्य प्रदेश सरकार, भारत सरकार व सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के वरिष्ठ अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करता है। यह राज्य के विभिन्न प्रशिक्षण संस्थानों के लिए समन्वय की भूमिका भी निभाता है।

2) **जवाहरलाल नेहरू पुलिस अकादमी, सागर** - यह मध्य प्रदेश का सबसे प्राचीन प्रशिक्षण संस्थान है। इसे 1906 में पुलिस स्कूल के रूप में स्थापित किया गया था, जिसे 1936 में पुलिस ट्रेनिंग कॉलेज के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। 1986 में इसका नाम जवाहरलाल नेहरू पुलिस अकादमी कर दिया गया। यह संस्थान उप-पुलिस अधीक्षकों, सब इंस्पेक्टर, होमगार्ड, जेल अधिकारियों, आपकारी एवं परिवहन अधिकारियों के लिए बुनियादी एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान करती है।

3) **मध्य प्रदेश भू-राजस्व एवं बंदोबस्त संस्थान, ग्वालियर** - इस संस्थान में ए. एस. एल. आर. एवं उप-जिलाधीशों को राज्सव से संबंधित प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। साथ ही Areal Photo Graphy के द्वारा कम्प्यूटराइज्ड भू-रिकॉर्डिंग का प्रशिक्षण भी दिया जाता है।

4) **राज्य वन अनुसंधान प्रशिक्षण शाला, जबलपुर** - इस संस्थान में बी. डी. ओ. आदि अधिकारियों को प्रशिक्षम दिया जाता है। साथ ही गांवों के विकास प्रशासन में जनसहयोग प्राप्त करने, सार्थक और शीघ्र ग्रामीण विकास करने के लिए भी प्रशिक्षण दिया जाता है।

5) **अस्त्र-शस्त्र प्रशिक्षण शाला, इंदौर** - इस संस्थान में राज्य पुलिस सेवा के सभी अधिकारियों को आग्नेय हथियारों का प्रशिक्षण दिया जाता है।

6) **वायरलैस संस्थान, इंदौर** - इस संस्थान में रेडियो वायरलैस से संबंधित प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।

7) पुलिस यातायात प्रशिक्षण संस्थान, भोपाल।

अधिकरण

मूल संविधान में अधिकरण के संबंध में कोई प्रावधान नहीं था, लेकिन 42वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान में भाग 14(A) जोड़ा गया। इस भाग को अधिकरण नाम दिया गया। इसमें 2 अनुच्छेद हैं - 323(A) प्रशासनिक अधिकरण से संबंधित है, जबकि 323(B) अन्य विषयों के अधिकरणों से संबंधित है।

❐ प्रशासनिक अधिकरण

संविधान में अनुच्छेद 323(A) संसद को अधिकार देता है कि वह संघ तथा राज्य सरकार के लोक सेवकों की सेवा शर्तों से संबंधित विवादों के निपटारे के लिए प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना के संबंध में प्रावधान करे। इस अधिकरों का प्रयोग करके संसद ने प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 पारित किया है, जिसमें अधिकरणों के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति एवं अधिकरण की अधिकारिता के संबंध में प्रावधान किया गया है। यह अधिनिमय केन्द्र सरकार को केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकर और राज्य प्रशासनिक अधिकरण के गठन का अधिकार देता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❐ अन्य विषयों के लिए अधिकरण

संविधान के अनुच्छेद 323(B) संसद व राज्य विधायिका को निम्नलिखित विषयों से संबंधित मामलों में न्याय करने के लिए अधिकरण बनाने का अधिकार देता है –

1) कर संबंधी विवाद,
2) विदेशी मुद्रा तथा आयात-निर्यात विवाद,
3) औद्योगिक विवाद,
4) श्रम विवाद,
5) भूमि सुधार विधियों से संबंधित विवाद,
6) नगर सम्पत्ति अधिकतम सीमा से संबंधित विवाद,
7) संसद तथा राज्य विधानमण्डलों के सदस्यों के निर्वाचन से संबंधित विवाद,
8) आवश्यक खाद्य वस्तुओं के उत्पादन, उत्पत्ति, प्रदाय और वितरण से संबंधित विवाद।

आकार IAS
Shaping Your Dreams

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

लोकतंत्र की कार्यप्रणाली
Democracy at Work

भारत दुनिया की सबसे बड़ी लोकतांत्रिक व्यवस्था है। भारत में लोकतंत्र 65 वर्षों से सफल रहा है और आने वाले कई वर्षों के लिए इसकी निरंतरता का आश्वासन दिया जा सकता है। एक प्रक्रियागत लोकतंत्र के तौर पर भारत विकास कर रहा है। भारतीय नागरिक अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति धीरे-धीरे जागरूक हो रहे हैं। मतदान का प्रतिशत बढ़ रहा है और समाज के प्रत्येक वर्ग के लोग मतदान कर रहे हैं। मतदाताओं को अपने मताधिकार का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करने में निर्वाचन आयोग, भारत सरकार, नागरिक समाज के संगठन और निजी क्षेत्र भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

वर्ष 2014 में विश्व ने भारत में सबसे बड़ा लोकतांत्रिक चुनाव देखा। इस चुनाव में पूरी तरह से इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन का प्रयोग किया गया। सुरक्षा के दृष्टिकोण से यह उपलब्धि और भी महत्वपूर्ण है कि बिना किसी समस्या के भारतीय अधिकारियों और सुरक्षा बलों ने इतना बड़ा चुनाव सम्पन्न करवाया। चुनावी भागीदारी के हिसाब से राजनीति के इतिहास में यह सबसे बड़ा चुनाव था। स्पष्ट है कि भारत में निर्वाचन आमतौर पर निष्पक्ष एवं स्वतंत्र होते हैं। यदि इस आधार पर हम दूसरे देशों से तुलना करें, तो हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था सराहनीय है।

किन्तु विगत कुछ वर्षों से यह महसूस भी किया गया है कि हमारी लोकतांत्रिक निर्वाचन प्रणाली में कई विसंगतियां और कमियां भी हैं। बढ़ती सामाजिक-आर्थिक असमानता, बाहुबल एवं पैसे की बढ़ती भूमिका, राजनीति का अपराधीकरण, सरकारी मशीनरी का दुरुपयोग, बढ़ती साम्प्रदायिकता, धर्म का राजनीतिकरण आदि चिंता का विषय है।

स्पष्ट है कि हमारी वर्तमान लोकतांत्रिक निर्वाचन प्रणाली की मौजूदा संरचना और इसे नियंत्रित करने वाले कानून वांच्छित परिणाम देने में असमर्थ हैं। अत: समतापरक एवं न्यायपूर्ण राजनीतिक लोकतांत्रिक व्यवस्था तैयार करने हेतु निर्वाचन प्रक्रिया में सुधार करना हमारे लिए अपरिहार्य है। वस्तुत: हमारे देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था को कई स्तरों पर चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इन चुनौतियों को हम 3 स्तरों पर बांटा जा सकता है -

1) राजनीतिक दलों एवं उनके उम्मीदवारों के स्तर पर।
2) मतदाताओं के स्तर पर।
3) निर्वाचन आयोग के कामकाज एवं इसकी संरचना के स्तर पर।

(इन चुनौतियों को हम पाठ्यक्रम के संदर्भ में देखेंगे।)

राजनीतिक दल

राजनीतिक दल एक राजनीतिक संस्था (Political Organisation) है, जो शासन में राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने एवं उसे बनाए रखने का प्रयत्न करता है। इसके लिए प्राय: वह चुनाव की प्रक्रिया में भाग लेता है। अन्य शब्दों में राजनीतिक दल नागरिकों के उस संगठित समुदाय को कहते हैं, जिसके सदस्य समान राजनीतिक विचार रखते हैं और एक राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करते हुए शासन को अपने हाथ में रखने की कोशिश करते हैं।

लोकतान्त्रिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों का स्थान केन्द्रीय अवधारणा के रूप में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजनीतिक दल किसी भी व्यवस्था में शक्ति के वितरण और सत्ता के आकांक्षी व्यक्तियों एवं समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे परस्पर विरोधी हितों के सारणीकरण, अनुशासन और सामंजस्य का प्रमुख साधन रहे हैं। इस तरह से राजनीतिक दल समाज व्यवस्था के लक्ष्यों, सामाजिक गतिशीलता, सामाजिक परिवर्तनों, परिवर्तनों के अवरोधों और सामाजिक आन्दोलनों से भी सम्बन्धित होते हैं।

❐ राजनीतिक दलों के प्रकार

आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में विचारधारा के आधार पर सामान्यत: 4 प्रकार के राजनीतिक दल होते हैं -

1) **प्रतिक्रियावादी दल (Reactionary Parties)** - यह दल प्राचीन, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संस्थाओं में विश्वास करते हैं और उन्हें बनाए रखना चाहता है।
2) **रूढ़िवादी दल (Conservative Parties)** - यह दल यथास्थिति में विश्वास रखता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

3) **उदारवादी दल (Liberal Parties)** - यह दल विद्यमान संस्थाओं में लगातार सुधार में विश्वास रखता है।

4) **सुधारवादी दल (Radical Parties)** - इस दल का उद्देश्य विद्यमान व्यवस्था को हटाकर नई व्यवस्था स्थापित करना होता है।

राजनीतिक चिंतकों ने विचारधारा के आधार पर सुधारवादी दलों को बायीं ओर, उदारवादी दलों को मध्य में तथा प्रतिक्रिया एवं रूढ़िवादी दलों को दायीं ओर रखा है। दूसरे शब्दों में इन्हें ही वाम दल (Leftist Parties), केन्द्रीय दल (Centrist Parties) एवं दक्षिणपंथी दल (Rightist Parties) कहा जाता है। भारत में CPI एवं CPM वाम दलों के, कांग्रेस केन्द्रीय दल का तथा भाजपा दक्षिणपंथी दल के उदाहरण है। इसके अलावा संख्या के आधार पर विश्व के लोकतांत्रिक देशों में 3 तरह की दलीय व्यवस्था है -

1) **एक-दलीय व्यवस्था (One Party System)** - एक-दलीय व्यवस्था में केवल सत्तारूढ़ दल होता है। विरोधी दल की व्यवस्था नहीं होती है, जैसे - चीन।

2) **द्वि-दलीय व्यवस्था (Two Party System)** - द्वि-दलीय व्यवस्था में दो बड़े विद्यमान होते हैं, जैसे - अमेरिका (डेमोक्रेटिक व रिपब्लिकन) एवं ब्रिटेन (कन्जरवेटिव व लेबर)।

3) **बहुदलीय व्यवस्था (Multi Party System)** - बहुदलीय व्यवस्था में कई प्रकार के दल विद्यमान होते हैं, जो कई बार साझा सरकार का निर्माण भी करते हैं, जैसे - भारत, फ्रांस आदि।

❐ राजनीतिक दलों के कार्य

राजनीतिक दलों द्वारा निम्नलिखित कार्य किए जाते हैं -

1) जनमत का निर्माण करना।

2) सार्वजनिक नीतियों का निर्माण करना।

3) विपक्ष के रूप में शासन की आलोचना करना।

4) सत्तारूढ़ दल के रूप में शासन का संचालन करना।

5) चुनावों का संचालन करना।

6) शासन एवं जनता के बीच मध्यस्थ के रूप में कार्य करना।

7) जनता को राजनीतिक रूप से प्रशिक्षित करना।

8) अन्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्य करना, जैसे - हरिजन कल्याण, स्त्री उद्धार आदि।

❐ भारत में दलीय व्यवस्था

राजनीतिक दल आज लोकतंत्रीय व्यवस्था का संचालन करने वाले महत्वपूर्ण तंत्र बन गए हैं। भारत में राजनीतिक दलों का विकास स्वतंत्रा के पूर्व से ही प्रारंभ हो गया था। उल्लेखनीय है कि महात्मा गांधी और लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने भारत के लिए 'दलविहीन लोकतंत्र' की परिकल्पना की थी। गांधीजी की इच्छा थी कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कांग्रेस अपने दलीय स्वरूप को विघटित कर लोक सेवक संघ के रूप में कार्य करें।

भारत में दलीय व्यवस्था के विकास को प्रभावित करने वाले तत्वों में जहां एक ओर स्वतंत्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि और संसदीय लोकतंत्र की मांग थी, तो वहीं दूसरी ओर विशाल सांस्कृतिक-धार्मिक विविधता, सामाजिक-आर्थिक पिछड़ापन आदि भी प्रमुख थे। भारत में दलीय व्यवस्था का स्वरूप समय के साथ बदलता रहा है। 1950 के पश्चात् भारतीय दलीय व्यवस्था की कुछ विशेषताएं उभरकर सामने आई हैं, जो निम्नलिखित हैं -

1) **खुली राजनीतिक व्यवस्था** - भारत का संविधान नागरिकों को समुदाय बनाने की स्वतंत्रता देता है, जिसके फलस्वरूप नागरिकों को किसी भी राजनीतिक दल के निर्माण करने का अधिकार प्राप्त है।

2) **बहु-दलीय व्यवस्था** - भारत विविधताओं और जटिलताओं वाला देश है, जहां विभिन्न भाषा, धर्म, जाति, सिद्धान्तों एवं हितों के लोग रहते हैं। स्पष्ट है कि जहां कहीं भी इस प्रकार की विविधताएं होंगी, वहां बहुदलीय व्यवस्था के पनपने की संभावना भी अधिक होंगी। इसी कारण भारत में बहुदलीय व्यवस्था है।

3) **एक-दल प्रभुत्व व्यवस्था** - दलों की संख्या की दृष्टि से भारत में प्रारंभ से ही बहुदलीय व्यवस्था रही, किन्तु लगभग 30

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

वर्ष तक केन्द्र एवं राज्यों की राजनीति में कांग्रेस दल का आधिपत्य बना रहा। भारत में 1977-1979 के काल को यदि छोड़ दे, तो 1989 तक राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस का प्रभुत्व रहा। 2014 में भाजपा को मिला स्पष्ट बहुमत 30 साल बाद किसी भी दल को मिलने वाला स्पष्ट बहुमत है, यह दलीय व्यवस्था के नए दौर या किसी वापसी का इशारा हो सकता है।

4) **गुटबाजी, दल-बदल तथा दलीय विभाजन** - भारतीय दलीय व्यवस्था की एक विशेषता या कमी जो भी माना जाएं, रही है कि भारत में राजनीति चुनावों से पहले व बाद दल-बदल जमकर होती है। इसे रोकने के लिए समय-समय पर कानून भी बनाए गए, परन्तु यह आज भी कायम है। दलों में मौजूद गुटों की राजनीति भी एक समस्या है, जो दलों को कमजोर ही करती है। दलों का विभाजन होना भारतीय दलीय व्यवस्था की खासियत है। सामान्यत: दालों का विभाजन व्यक्तिगत् स्वार्थों के लिए होता रहा है।

5) **प्रभावी विपक्ष का अभाव** - सशक्त विपक्ष भारतीय दलीय व्यवस्था की विशेषता नहीं है। इसके विपरीत कमजोर विपक्ष इसकी विशेषता है। बहु-दलीय व्यवस्था के कारण विपक्ष हमेशा बंटा रहता है। उसमें एकता का अभाव पाया जाता है और कई बार तो यह लगता है कि विपक्ष जैसी चीज भारत में है ही नहीं। उदाहरणार्थ - 1952, 1957, 1962 में कम्युनिस्ट पार्टी लोकसभा में विपक्ष में थी, जिसे मात्र 20-30 सीटें ही प्राप्त होती थीं। वर्तमान में 2014 के चुनाव में भी विपक्ष कई दलों में विभक्त है, जिससे वह अपनी प्रभावी भूमिका नहीं निभा पाता है।

6) **जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा पर आधारित दल** - भारतीय दलीय व्यवस्था की एक अन्य विशेषता इनमें पाए जाने वाले राजनीतिक दल हैं, जो जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा की राजनीति करते हैं। इन मुद्दों के आधार पर वोट बैंक की राजनीति करते हैं, जैसे - शिवसेना, मनसे, बहुजन समाज पार्टी आदि।

7) **व्यक्ति पूजा** - भारतीय राजनीतिक दलों की एक महत्वपूर्ण विशेषता व्यक्ति केन्द्रित होना है। एक ही व्यक्ति या परिवार संपूर्ण राजनीतिक दल का सर्वेसर्वा होता है और सामान्यत: वह व्यक्ति या उसका परिवार ही दल का सुप्रीमो माना जाता है। पूरा दल उस व्यक्ति की पूजा करता है, उसके आदेशों का पालन करता है और दल का हर कार्यकर्ता बस उसे खुश करने का प्रयास करता है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में गांधी परिवार, समाजवादी दल में मुलायम सिंह यादव, बहुजन समाज पार्टी में मायावती, डीएमके में करुणानिधि, एडीएमके में जयललिता, बीजू जनता दल में नवीन पटनायक, तृणमूल कांग्रेस में ममता बनर्जी, तेलुगुदेशम पार्टी में चन्द्रबाबू नायडू इसके नामचीन उदाहरण हैं।

8) **क्षेत्रीय दलों का महत्व** - भारतीय दलीय व्यवस्था व राजनीति में क्षेत्रीय दलों का महत्वपूर्ण स्थान है। 1967 के बाद क्षेत्रीय दलों का वर्चस्व बढ़ना प्रारंभ हुआ, क्योंकि इन दलों ने अलग-अलग राज्यों में अपनी जड़े जमाकर कांग्रेस को 9 राज्यों से बाहर कर दिया। इन दलों ने अपने लिए अधिक स्वतंत्रता (सच्चे संघवाद) की मांग करना शुरू कर दी। 1980 के दशक में जमकर क्षेत्रीयता की राजनीति हुई। क्षेत्रीय दलों ने क्षेत्रीय मुद्दों पर चुनाव लड़कर अकेले बहुमत जीता और राष्ट्रीय स्तर पर कोई भी राजनीतिक दल सरकार बनाने की स्थिति में नहीं रहा। परिणामस्वरूप केन्द्र सरकार की क्षेत्रीय दलों पर निर्भरता बढ़ती गई। क्षेत्रीय दल छोटी-छोटी बातों पर सरकार को भंग करने की धमकी देने लगे। इस प्रकार भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों का प्रभुत्व स्थापित हुआ।

❐ भारतीय दलीय व्यवस्था की समस्याएं

भारतीय दलीय व्यवस्था के उदय के साथ ही समस्याएं भी उपजी और बढ़ती गई हैं, जो निम्नलिखित हैं -

1) भारत के लगभग सभी दलों में आंतरिक लोकतंत्र नहीं है। एक स्वस्थ लोकतांत्रिक देश के लिए स्वस्थ लोकतांत्रिक दलों का होना आवश्यक है। जबकि भारत में शायद ही कोई दल हो, जिसे सही मायनों में लोकतांत्रिक कहा जा सके।

2) कई दल सामाजिक कुरीतियों जैसे परिवारवाद, वंशवाद, जाति-धर्म, साम्प्रदायिकता, पितृसत्ता को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से बढ़ावा देते हैं।

3) अपराधीकरण भारतीय दलीय व्यवस्था की एक गंभीर समस्या है, जो लगातार व्यापक होती जा रही है। हर दल में अपराधी सांसद व राजनेता मिल जाते है। संसद में लगभग 50 फीसदी सांसदों पर मुकदमें दर्ज होते है और कई मामलों में तो गंभीर अपराधों की धाराएं - हत्या, बलात्कार, यौन-शोषण भी उन पर लगी होती हैं। बावजूद इसके स्वच्छ राजनीति में विश्वास

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

करने की बात कहने वाले राजनीतिक दल उन्हें टिकट देते हैं और वे प्राय: चुनाव में जीत भी प्राप्त कर लेते हैं।

4) भारत में सशक्त विपक्ष नहीं पाया जाता। विपक्ष में एकता का अभाव रहता है, कई बार जिसका फायदा सत्ताधारी दल उठाता है।

5) फंडिंग दलीय व्यवस्था में एक अन्य समस्या है। यह आरोप आम है कि उम्मीदवार चुनाव प्रचार में तय सीमा से ज्यादा पैसा खर्च करते हैं। चुनावों में काले धन का इस्तेमाल करते हैं। मीडिया को खरीद लेते हैं। राजनीतिक दल अपने फण्ड का सही से ब्यौरा नहीं देते। वह सूचना के अधिकार के अन्तर्गत नहीं आना चाहते, जबकि विडम्बना है कि ये दल स्वयं पारदर्शिता व भ्रष्टाचार के अंत के दावे करते हैं।

6) दल-बदल भारतीय दलीय व्यवस्था की बढ़ी समस्या है।

7) भारत में सुस्पष्ट विचारधारात्मक दलों का अभाव है।

मतदाताओं की सहभागिता

किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था के सफल संचालन में मतदाताओं की सबसे प्रमुख भूमिका होती है, उनकी अधिक-अधिक सहभागिता लोकतंत्र की सेहत का सबसे महत्वपूर्ण सूचक होता है। भारत में भी निर्णय प्रक्रिया में मतदाताओं की सहभागिता बढ़ाने के लिए निर्वाचन आयोग ने पहल की है, जो निम्नलिखित हैं -

1) **पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करना** - निर्वाचन आयोग चुनाव के दौरान मतदाताओं के लिए प्रभावी सुरक्षा प्रदान करता है, ताकि मतदाता बिना किसी भय के स्वतंत्रत रूप से मतदान करे।

2) **मतदाता सूची का पुर्निरीक्षण** - निर्वाचन आयोग नियमित अन्तराल पर मतदाता सूची संशोधित करता है। नए मतदाताओं के पंजीकरण और पुराने के नवीनीकरण की प्रक्रिया को आयोग ने आसान बना दिया है। इससे मतदाताओं की सहभागिता बढ़ती है।

3) **मतदाता पहचान पत्र जारी करना** - चुनाव आयोग मतदाताओं को मतदाता पहचान पत्र जारी करता है, ताकि मतदान के दौरान अन्य पहचान पत्र दिखाने की समस्या समाप्त हो सके। साथ ही गैर-कानूनी गतिविधियों पर रोक लगाई जा सके।

4) **सर्वेक्षण** - चुनाव आयोग मतदाताओं की सहभागिता बढ़ाने के लिए सर्वेक्षण करता है और सहभागिता रोकने वाले कारकों का पता कर उन पर उचित कार्रवाई करता है।

5) **सूचना एवं संचार माध्यमों का प्रयोग** - मतदाताओं की सहभागिता बढ़ाने हेतु निर्वाचन आयोग प्रचार और गैर-प्रचार माध्यमों, लोककला समूहों, केबल नेटवर्क, सोशल साइट्स, मीडिया, मैराथन, मानव श्रृंखला, प्रदर्शनी, पोस्टर, पर्चे, सिनेमा स्लाइट, नुक्कड नाटक आदि का भी बेहतर तरीके से प्रयोग करता है।

6) उपरोक्त के अलावा निर्वाचन आयोग एवं सरकार मतदाताओं की सहभागिता बढ़ाने हेतु शैक्षणिक संस्थानों के पाठ्यक्रम में भी लोकतंत्र एवं चुनावों को शामिल करा रहा है।

उपर्युक्त कार्यों के अलावा मतदाताओं के संबंध में कुछ चुनौतियां भी हैं, जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। हमारे देश की राजनीतिक व्यवस्था से जनता का तेजी से मोह भंग हो रहा है और चुनावी फैसले का उनके लिए कोई महत्व नहीं रह गया है। बढ़ता भ्रष्टाचार, धन एवं बाहुबल का प्रयोग, बढ़ती साम्प्रदायिकता आदि इसके प्रमुख कारण हैं।

अगर मतदान की बात करे, तो जनता ने खुद को छोटे-छोटे लाभ एवं संकीर्ण प्रवृत्ति के आधार पर वोटिंग करने के लिए नकारात्मक रूप से तंत्र के अनुकूल बना लिया है। इसका परिणाम यह होता है कि वोट पाने के लिए राजनीतिक दलों की पेशकश को जनता बड़ी आसानी से स्वीकार कर लेती है। राजनीतिक दलों ने चुनाव को एक बड़े आयोजन में बदल दिया है और राजनीति पूरी तरह से व्यापार और कारोबार में बदल गई है। इसके अलावा मतदाताओं को प्रत्याक्षियों के बारे में सभी जानकारियां (सम्पत्ति एवं आपराधिक रिकार्ड) भी उपलब्ध नहीं हो पाती है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❐ फस्ट पास्ट द पोस्ट प्रणाली

इस चुनाव प्रणाली में उस प्रत्याक्षी को विजयी घोषित किया जाता है, जिसे चुनाव में सबसे ज्यादा मत प्राप्त होते हैं। जितने के लिए प्रत्याक्षी को बहुमत (50 प्रतिशत + 1) की आवश्यकता नहीं होती है। यदि उसे अन्य प्रत्याक्षियों की तुलना में अधिक मत प्राप्त होते हैं, तो उसे विजेता घोषित कर दिया जाता है। इस प्रणाली का प्रयोग आमतौर पर एकल सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों में किया जाता है।

इस प्रणाली को इसलिए सही ठहराया जाता है, क्योंकि यह सरल है। इसमें विजेता एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है। यह प्रणाली निर्वाचन क्षेत्र के लोगों और उनके प्रतिनिधियों के मध्य सम्पर्क को बढ़ावा देती है। निर्वाचन अधिकारियों के दृष्टिकोण से भी यह प्रणाली सरल है। किन्तु कई चिंतक इस प्रणाली की आलोचना करते हैं, जो निम्नलिखित हैं –

1) इस प्रणाली में छोटे दलों को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाता है।
2) अल्पसंख्यकों को भी इस प्रणाली में उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाता है।
3) इस प्रणाली में महिलाओं को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाता है।
4) इस प्रणाली का सबसे चिंताजनक पहलू यह है कि राजनीतिक दल अधिक से अधिक मत प्राप्त करने के लिए समाज में विभाजन (समूह, धर्म, जाति, क्षेत्र, भाषा के आधार पर) को बढ़ावा देने लगते हैं।
5) इस प्रणाली का एक अन्य गंभीर पहलू यह है कि इसमें बहुत कम मतों को प्राप्त करने के बावजूद राज्य में कोई एक दल सभी सीटें जीत लेता है, जिससे राज्य दल विशेष की जागीर बन जाता है।
6) इसमें बड़ी संख्या में ऐसे मत बरबाद हो जाते हैं, जो किसी भी प्रत्याक्षी के चुनाव में सहायक सिद्ध नहीं होते हैं।
7) इस प्रणाली से कई बार कम लोकप्रिय एवं अयोग्य व्यक्ति भी चुनाव जीत जाता है।
8) यह प्रणाली मतदाताओं को हतोत्साहित करती है, क्योंकि मतदाताओं को अपना एक मत मूल्यहीन लगता है।

भारतीय संविधान सभा ने भी निर्वाचन की कई प्रणालियों पर विचार किया था, किन्तु बेहद लम्बी बहस के बाद अन्ततः फस्ट पास्ट द पोस्ट निर्वाचन प्रणाली को स्वीकार किया। इसका मुख्य कारण यह था कि संविधान सभा भारत के लिए स्थिर सरकार चाहती थी। तत्कालीन समय में हुए साम्प्रदायिक दंगे तथा भारत में व्याप्त गरीबी एवं अशिक्षा को देखते हुए स्थिर सरकार भारत की प्राथमिकता थी। इसके अलावा संविधान सभा का यह भी मानना था कि प्रत्याक्षियों को उनके वादों के आधार पर चुना जाएगा। यदि वह अपने वादे पूरे नहीं करेंगे, तो अगले चुनाव में भी इन्हीं मतदाताओं के सामने उन्हें जवाब देना होगा।

निर्वाचन

भारतीय संविधान में लोकतंत्रिक शासन प्रणाली को अपनाया गया है। एक स्वतंत्रत एवं निष्पक्ष निर्वाचन ही लोकतंत्र को सुदृढ़ता प्रदान करता है। इस हेतु भारतीय संविधान के भाग 15 (अनुच्छेद 324–329) में एक स्थायी एवं स्वतंत्र निकाय निर्वाचन आयोग का प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 324 के अनुसार संसद, राज्य विधानमण्डल, राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति के पदों के निर्वाचन के लिए संचालन, निर्देशन व नियंत्रण की जिम्मेदारी चुनाव आयोग की ही है।

❐ गठन

निर्वाचन आयोग का गठन 25 जनवरी, 1950 को किया गया था। 1950 में जब निर्वाचन आयोग का गठन किया गया था, तब से लेकर 16 अक्टूबर, 1989 तक निर्वाचन आयोग एक सदस्यीय आयोग के रूप में ही कार्य करता रहा। 1989 को निर्वाचन आयोग को व्यापक रूप देने के उद्देश्य से 2 अन्य निर्वाचन आयुक्तों की स्थापना की गई, लेकिन 2 जनवरी, 1990 को पुनः निर्वाचन आयोग को एक सदस्यीय बना दिया गया। आगे चलकर संसद ने मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा अन्य निर्वाचन आयुक्त (सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1991 पारित किया, जिसके तहत् निर्वाचन आयोग को 3 सदस्यीय बना दिया तथा उसके द्वारा कोई भी निर्णय बहुमत से लिया जाएगा।

❐ नियुक्ति

अनुच्छेद 324 के अनुसार मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राष्ट्रपति द्वारा ऐसी नियुक्ति प्रधानमंत्री की सलाह के आधार पर की जाती है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

❒ सेवा शर्तें व वेतन

निर्वाचन आयुक्तों की सेवा शर्तें राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित की जाएंगी। मुख्य निर्वाचन आयुक्त व दो निर्वाचन आयुक्त के पास समान शक्ति होती है तथा उनके वेतन-भत्ते व दूसरे अनुलाभ भी एक समान होते हैं। इनका वेतन सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समान होता है, जो भारत की संचित निधि पर भारित है। निर्वाचन आयोग बहुमत के आधार पर निर्णय करता है।

❒ पदावधि व पदरिक्ति

मुख्य निर्वाचन आयुक्त का कार्यकाल 6 वर्ष या 65 वर्ष की आयु, जो पहले हो, तक होता है। वह अपनी पदावधि के दौरान राष्ट्रपति को त्यागपत्र देकर पदमुक्त हो सकता है या संसद द्वारा पारित संकल्प से हटाया जा सकता है। मुख्य निर्वाचन आयुक्त को उसके पद से उसी रीति व उन्हीं आधार पर ही हटाया जा सकता है, जिस रीति व आधारों पर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है। अन्य निर्वाचन आयुक्तों को पदावधि से पूर्व राष्ट्रपति मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश के आधार पर पदमुक्त कर सकता है।

❒ प्रादेशिक निर्वाचन आयुक्त

संविधान में यह प्रावधान किया गया है कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त से परामर्श करके राष्ट्रपति उसकी सहायता के लिए कुछ प्रादेशिक निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति कर सकता है।

❒ निर्वाचन आयोग के कार्य

निर्वाचन आयोग के निम्नलिखित कार्य हैं -

1) **निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन** - निर्वाचन आयोग का सर्वप्रथम कार्य निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन करना है। परिसीमन आयोग अधिनियम, 1952 के अनुसार प्रत्येक 10 वर्ष में होने वाली जनगणना के बाद निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन किया जाना चाहिए। इस कार्य को करने के लिए परिसीमन आयोग का गठन किया जाता है, जिसका अध्यक्ष मुख्य निर्वाचन आयुक्त होगा।

2) **निर्वाचक नामावली तैयार कराना** - निर्वाचक आयोग द्वारा लोकसभा तथा विधानसभा के प्रत्येक सामान्य या मध्यावधि चुनाव के पूर्व निर्वाचक नामावली तैयार कराई जाती है। निर्वाचक नामावली में शामिल के आधार निम्नलिखित हैं -
   - **a)** जो 18 वर्ष की आयु पूरी कर चुका है। पहले यह आयु 21 वर्ष थी, लेकिन 61वें संविधान संशोधन द्वारा यह आयु घटाकर 18 वर्ष कर दी गई,
   - **b)** जो भारत का नागरिक हो, तथा
   - **c)** जो संविधान या समुचित विधानमण्डल द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन अनिवास, चित्त विकृति, अपराध या भ्रष्ट अथवा अवैध आचरण के आधार पर अयोग्य घोषित नहीं कर दिया गया है।

3) **राजनीतिक दलों को मान्यता देना** - निर्वाचन आयोग विभिन्न राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय दल या राज्य स्तरीय दल के रूप में मान्यता प्रदान करता है। किसी राजनीतिक दल को राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता तब प्रदान की जाती है, जब वह निम्नलिखित शर्त पूरी करता हो -
   - **a)** यदि वह लोकसभा अथवा विधानसभा के आम चुनावों में 4 अथवा अधिक राज्यों में वैध मतों का 6 प्रतिशत मत प्राप्त करता है तथा इसके साथ ही वह किसी राज्य या राज्यों में लोकसभा में 4 सीट प्राप्त करता है,
   - **b)** यदि वह लोकसभा में 2 प्रतिशत सीट जीतता है तथा ये सदस्य 3 विभिन्न राज्यों से चुने गए हो,
   - **c)** यदि कोई दल कम से कम 4 राज्यों में राज्य स्तरीय दल के रूप में मान्यता प्राप्त करता हो।

   इसी प्रकार किसी राजनीतिक दल को राज्यस्तरीय दल के रूप में मान्यता तब प्रदान की जाती है, जब वह निम्नलिखित शर्तें पूरी करता है -
   - **a)** यदि उस दल ने राज्य की विधानसभा के आम चुनाव में डाले गए कुल वैध मतों का 6 प्रतिशत प्राप्त किया हो तथा इसके अतिरिक्त उसने संबंधित राज्य में 2 स्थान प्राप्त किए हो,
   - **b)** यदि वह राज्य की लोकसभा के लिए हुए आम चुनाव में कुल वैध मतों का 6 प्रतिशत प्राप्त करता है तथा इसके अतिरिक्त उसने संबंधित राज्य में लोकसभा की कम से कम 1 सीट जीती हो,
   - **c)** यदि उस दल ने राज्य की विधानसभा के कुल स्थानों का 3 प्रतिशत या 3 सीटें, जो भी ज्यादा हो, प्राप्त किए हो,

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

d) यदि प्रत्येक 25 सीटों में से उस दल ने लोकसभा की कम से कम 1 सीट जीती हो।

भारत के मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय दल

क्र	पार्टी	प्रतीक	वर्ष
1.	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC)	हाथ	1885
2.	भारतीय जनता पार्टी (BJP)	कमल	1980
3.	कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (CPI)	हसिया व बाली	1925
4.	कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (मार्क्सवादी) (CPI-M)	हथौड़ा, हसिया व तार	1964
5.	नेशनल कांग्रेस पार्टी (NCP)	घड़ी	1999
6.	बहुजन समाज पार्टी (BSP)	हाथी	1984

4) **राजनीतिक दलों को चुनाव चिह्न प्रदान करना** – भारत में चुनाव चिह्न 2 प्रकार का होता है आरक्षित तथा अनारक्षित। आयोग मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय या राज्यस्तरीय राजनीतिक दल को आरक्षित चुनाव चिह्न प्रदान करता है। यदि किसी मान्यता प्राप्त दल का विभाजन होता है और दोनों गुटों में चुनाव चिह्न को लेकर कोई विवाद उत्पन्न होता है, तो उसका निपटारा निर्वाचन आयोग करता है। निर्वाचन आयोग के निर्णय के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है।

5) **निर्वाचन का संचालन करना** – राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, संसद (लोकसभा एवं राज्यसभा) तथा राज्य विधानमण्डलों (विधानसभा एवं विधानपरिषद्) के निर्वाचन का संचालन निर्वाचन आयोग करता है।

6) **चुनाव रद्द करना** – निर्वाचन आयोग चुनाव में धांधली होने की स्थिति में चुनाव को रद्द कर सकता है तथा किसी चुनाव क्षेत्र के कुछ मतदान केन्द्र के मतों को निरस्त करके वहां पुनः मतदान की आज्ञा दे सकता है।

7) **उपचुनाव करवाना** – जब कभी संसद या विधानमण्डल का स्थान रिक्त होता है, तब निर्वाचन आयोग उस स्थान को भरने के लिए उपचुनाव कराता है।

8) **उम्मीदवारों को अयोग्य ठहराना** – यदि चुनाव के पश्चात् चुनाव में कोई उम्मीदवार निर्वाचन आयोग द्वारा नियत अवधि के अन्तर्गत अपने चुनाव से संबंधित व्यय का विवरण नहीं देता, तो निर्वाचन आयोग उसे अयोग्य घोषित कर सकता है।

9) **राष्ट्रपति या राज्यपाल को सलाह देना** – निर्वाचन आयोग संसद सदस्यों की अयोग्यता के प्रश्न पर राष्ट्रपति तथा राज्य विधानमण्डल के सदस्यों की अयोग्यता के प्रश्न पर सम्बद्ध राज्य के राज्यपाल को सलाह देता है।

10) **अन्य कार्य** – निर्वाचन आयोग उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त निम्नलिखित कार्य भी करता है –

a) राजनीतिक दलों के लिए आचार संहिता तैयार करना,

b) राजनीतिक दलों को आकाशवाणी पर चुनाव प्रचार के लिए सुविधा प्रदान करवाना,

c) उम्मीदवारों द्वारा चुनाव में किए जाने वाले व्यय को निश्चित करना,

d) मतदाताओं को राजनीतिक प्रशिक्षण देना,

e) चुनाव याचिकाओं के संबंध में सरकार को परामर्श देना।

❐ निर्वाचन आयोग की स्वतंत्रता

संविधान में निर्वाचन आयोग को स्वतंत्र बनाने के लिए निम्नलिखित प्रावधान किए गए हैं –

1) निर्वाचन आयोग के गठन के लिए संविधान में प्रावधान किया गया है। इसका गठन कार्यपालिका या विधायिका द्वारा नहीं किया गया है, इसलिए यह संवैधानिक निकाय है।

2) मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है।

3) निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत नहीं है।

4) मुख्य निर्वाचन आयुक्त को संसद द्वारा पारित संकल्प पर ही पद से हटाया जा सकता है।

5) मुख्य निर्वाचन आयुक्त को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की श्रेणी में रखा गया है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

6) मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति के पश्चात् उनकी सेवा शर्तों में कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

7) मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा अन्य निर्वाचन आयुक्तों को वेतन भारत की संचित निधि से दिया जाता है।

❐ निर्वाचन व्यवस्था

भारतीय संविधान के भाग 15 में अनुच्छेद 324 से 329 तक में निर्वाचन संबंधी प्रावधानों का उल्लेख किया गया है, जो निम्नलिखित हैं –

1) अनुच्छेद 324 स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की स्थापना करता है, जिसमें राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, संसद तथा राज्य विधानमण्डल के चुनाव के अधीक्षण, निर्देशन तथा नियंत्रण की शक्ति निहित होगी।

2) अनुच्छेद 325 के अनुसार कोई भी व्यक्ति धर्म, मूलवंश (नस्ल) या लिंग के आधार पर मतदाता सूची में नामित होने के लिए अपात्र नहीं होगा।

3) अनुच्छेद 326 के अनुसार लोकसभा और प्रत्येक राज्य की विधानसभा के लिए निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होंगे। जो व्यक्ति भारत का नागरिक है तथा 18 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका है, वह मत देने का अधिकार रखता है।

4) संसद तथा प्रत्येक राज्य की विधायिका के चुनाव के लिए प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में केवल एक मतदाता सूची होगी।

5) अनुच्छेद 327 के अनुसार संसद निम्नलिखित विषयों पर कानून बनाने की शक्ति है – निर्वाचक नामावली तैयार करना, निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन तथा अन्य निर्वाचन संबंधी मामलों।

6) अनुच्छेद 329 के अनुसार निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन तथा इन क्षेत्रों के लिए आवंटित स्थानों से संबंधित कानून न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किए जा सकते हैं। उल्लेखनीय है कि परिसीमन आयोग द्वारा पारित आदेश अंतिम होते हैं, उन्हें किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।

संसद ने अनुच्छेद 327 में दी गई शक्ति का प्रयोग करते हुए निर्वाचन संबंध में निम्नलिखित कानून बनाए हैं –

1) **जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950** – यह अधिनियम मतदाता की योग्यता, मतदाता सूची की तैयारियों, निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन, संसद तथा राज्य विधायिकाओं में स्थानों के आवंटन आदि के बारे में प्रावधान करता है।

2) **जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951** – यह अधिनियम निर्वाचन कराने, मतदान, निर्वाचन अपराध, चुनावी विवाद, उपचुनाव, राजनीतिक दलों के पंजीकरण तथा निर्वाचन में प्रशासन तंत्र की भूमिका आदि के बारे में प्रवाधान करता है।

3) **परिसीमन आयोग अधिनियम, 1952** – यह अधिनियम स्थानों की पुनर्व्यवस्था, क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन तथा आरक्षण आदि के बारे में प्रावधान करता है।

4) राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति निर्वाचन अधिनियम, 1952।

5) निर्वाचक पंजीकरण नियम, 1960।

6) निर्वाचन नियम संहिता, 1961।

7) निर्वाचन चिह्न (आरक्षण व आबंटन) आदेश अधिनियम, 1968।

❐ निर्वाचन सुधार

1) **मतदाता की आयु में कमी** – 61वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1988 के द्वारा लोकसभा तथा विधानसभा के निर्वाचन के लिए मतदान की उम्र को 21 घटाकर 18 कर दिया गया।

2) **प्रस्तावकों की संख्या में वृद्धि** – राज्यसभा तथा राज्य विधानपरिषद् के चुनावों के लिए 1988 में प्रस्तावकों की संख्या में वृद्धि की गई। प्रस्तावकों की संख्या निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या का 10% अथवा 10 निर्वाचक, जो कम हो कर दी गई।

3) **निर्वाचन आयोग में प्रतिनियुक्ति** – 1988 में यह प्रावधान लाया गया कि निर्वाचन संबंधी कार्यों को सुचारू रूप से करने के लिए कुछ अधिकारियों एवं कर्मचारियों की प्रतिनियुक्ति निर्धारित समय के लिए चुनाव आयोग में की जा सकेगी। यह अधिकारी व कर्मचारी निर्वाचन आयोग द्वारा नियंत्रित एवं अनुशासित होंगे।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

4) **इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन का प्रयोग** – चुनाव सुधारों के क्रम में 1998 में पहली बार प्रयोग के तौर पर राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा दिल्ली विधानसभा चुनावों के कुछ चुने हुए निर्वाचन क्षेत्रों में किया गया। इवीएम का पहला प्रयोग पूर्णरूप से 1999 में गोवा विधानसभा चुनाव के दौरान किया गया।

5) **मतदान का रद्द होना** – 1989 में यह प्रावधान किया गया कि यदि मतदान केन्द्रों में मतदान के दौरान किसी भी प्रकार की बाधा पहुंचाई जाती है, जैसे – मतदान केन्द्र को लूटना, मतदान केन्द्र पर कब्जा करना, मतदाता को धमकाना आदि, तो मतदान को स्थगित या रद्द किया जा सकता है।

6) **उम्मीदवारों के नाम की सूची बनाना** – चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों को 3 श्रेणियों में विभाजित किया गया है –
a) मान्यता प्राप्त दलों के उम्मीदवार। **b)** गैर–मान्यता प्राप्त पंजीकृत दलों के उम्मीदवार। **c)** निर्दलीय उम्मीदवार।

7) **शराब बिक्री पर रोक** – चुनाव के दौरान मतगणना तिथि के 48 घंटे पहले से निर्वाचन क्षेत्र में शराब नहीं बेची जाएगी।

8) **प्रस्तावों की संख्या** – चुनाव के दौरान नामांकन भरते समय निर्दलीय उम्मीदवार को 10 प्रस्तावकों का समर्थन होना चाहिए, किन्तु मान्यता प्राप्त दल के उम्मीदवार के लिए मात्र एक प्रस्तावक ही आवश्यक है।

9) **मतदान के दिन अवकाश** – मतदान के दिन सार्वजनिक अवकाश रहेगा। साथ ही किसी भी उद्योग, व्यापार या किसी संस्थान में कार्यरत् पंजीकृत मतदाता को उस दिन का वेतन भी देना पड़ेगा।

10) **उम्मीदवारों पर प्रतिबंध** – कोई भी उम्मीदवार 2 से अधिक संसदीय अथवा विधानसभा क्षेत्रों में चुनाव नहीं लड़ सकता है।

11) **प्रचार समय में कमी** – नाम वापसी की अंतिम तिथि तथा मतदान की तिथि के मध्य न्यूनतम अन्तर 20 दिन से घटाकर 14 दिन कर दिया गया है।

12) **राष्ट्रपति–उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में सुधार** – राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार हेतु प्रस्तावकों एवं अनुमोदकों की संख्या 10 से बढ़ाकर 50 तथा उपराष्ट्रपति पद के उम्मीदवार हेतु प्रस्तावकों एवं अनुमोदकों की संख्या 5 से बढ़ाकर 20 कर दी गई है। इसके साथ ही जमानत राशि 2,500 से बढ़ाकर 15,000 कर दी गई है।

13) **डाक मत पत्र द्वारा मतदान** – 1999 से कुछ विशेष व्यक्तियों के मतदान के लिए डाक मत पत्र का प्रावधान किया गया है।

14) **उम्मीदवारों के संबंध में सुधार** – 2003 से निर्वाचन आयोग ने प्रत्येक उम्मीदवार को आवेदन पत्र दाखिल करते समय कुछ जानकारियां भरना अनिवार्य कर दी, जैसे – आपराधिक प्रकरण के संदर्भ, सम्पत्ति का ब्यौरा, शैक्षणिक योग्यता, देनदारी आदि। शपथ पत्र में झुठी सूचना दिए जाने पर उसे निर्वाचन नियमावली के विरुद्ध अपराध माना जाएगा।

15) **राज्यसभा निर्वाचन में परिवर्तन** – 2003 में राज्यसभा चुनावों में निवास संबंधी बाध्यता को समाप्त कर दिया गया है। अब कोई भी उम्मीदवार किसी भी राज्य से राजसभा का चुनाव लड़ सकता है, बस उसे केवल भारत के किसी भी संसदीय क्षेत्र का पंजीकृत मतदाता होना चाहिए। इसके अलावा राजसभा के निर्वाचन में गुप्त मतदान के स्थान पर खुले मतदान व्यवस्था को लागू किया गया है।

16) **चंदा लेने की स्वतंत्रता** – 2003 से राजनीतिक दलों को किसी व्यक्ति या कंपनी से कोई भी राशि का चंदा स्वीकार करने की स्वतंत्रता है। साथ ही आयकर में राहत प्राप्त करने के लिए 20,000 रुपए से अधिक हर चंदे की जानकारी चुनाव आयोग को देनी होगी।

17) **नोटा (NOTA) को लागू करना** – चुनाव निर्वाचन आयोग ने वर्ष 2013 में NOTA सिंबल को चुनाव में सम्मिलित किया। नोटा का मतलब है – None of the Above (इनमें से कोई नहीं), अर्थात् – यदि मतदाता को दिए गए चुनाव चिह्न एवं उनके उम्मीदवार में से कोई भी पद के लिए उपयुक्त नहीं लग रहा है, तो वह NOTA पर निशान लगा सकता है।

18) **राष्ट्रीय गौरव का अनादर करने पर अयोग्य होना** – राष्ट्रीय गौरव अपमान निरोधक अधिनियम, 1971 के तहत् यदि कोई व्यक्ति राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रगान एवं भारतीय संविधान के अनादर अपराध करता हो, तो वह 6 वर्ष तक लोकसभा तथा विधानसभा का चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य होगा।

19) **एक्जिट पोल पर प्रतिबंध** – 2009 के निर्वाचन सुधार के अनुसार लोकसभा और राज्य विधानसभा के चुनावों के दौरान एक्जिट पोल करने और उनके परिणामों को प्रकाशित करने पर रोक लगा दी गई है। इस प्रावधान का उल्लंघन करने वाले

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

व्यक्ति को 2 वर्ष की सजा व जुर्माने का प्रावधान है।

20) **जमानत राशि में वृद्धि** – लोकसभा व विधानसभा के उम्मीदवारों के लिए जमानत राशि में वृद्धि की गई। लोकसभा चुनाव में सामान्य जाति के उम्मीदावरों के लिए 10,000 से बढ़ाकर 25,000 रुपए तथा अनुसूचित जाति एवं जनजाति के उम्मीदवार के लिए 5,000 से बढ़ाकर 12,000 रुपए कर दी गई। इसी प्रकार विधानसभा चुनाव में सामान्य जाति के उम्मीदावरों के लिए 5,000 से बढ़ाकर 10,000 रुपए तथा अनुसूचित जाति एवं जनजाति के उम्मीदवार के लिए 2,500 से बढ़ाकर 5,000 रुपए कर दी गई।

21) **विदेशों में रहने वाले भारतीयों को मतदान का अधिकार** – 2010 में विदेशों में रहने वाले भारतीयों (NRI) को मतदान का अधिकार प्रदान किया गया है।

22) **निर्वाचन खर्च में वृद्धि** – वर्तमान में लोकसभा चुनाव में बड़े राज्य के लिए निर्वाचन खर्च 70 लाख रुपए और छोटे राज्य के लिए 54 लाख रुपए हैं। इसी प्रकार विधानसभा चुनाव में बड़े राज्यों के लिए निर्वाचन खर्च 28 लाख रुपए तथा छोटे राज्यों के लिए 20 लाख रुपए हैं।

❐ निर्वाचन आयोग की चुनौतियां

संविधान लागू होने के पश्चात् निर्वाचन आयोग ने भारतीय लोकतंत्र के संरक्षक के रूप में कार्य किया है। भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में मतदाताओं की बहुत बड़ी संख्या के साथ निर्वाचन आयोग ने कई सफल चुनाव सम्पन्न कराए हैं। विगत वर्षों में न्यायपालिका के निर्णयों तथा विधायिका के द्वारा बनाए गए कानूनों से भी निर्वाचन आयोग की शक्ति में वृद्धि हुई है, किन्तु अभी भी निर्वाचन आयोग को अपने स्तर पर कई चुनौतियों का समाना करना पड़ता है, जो निम्नलिखित हैं –

1) आयोग को राजनीतिक दलों के वित्तीय खातों का लेखा-परीक्षण करने से रोका गया है। ज्यादातर राजनीतिक दल आयोग को अपने वित्तीय खातों का ब्यौरा नहीं सौंपते हैं या फिर आधी-अधूरी जानकारी प्रदान करते हैं। ऐसे मामलों में आयोग के पास राजनीतिक दलों पर सख्त जुर्माना लगाने का कोई कानूनी प्रावधान नहीं है।

2) चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति में बढ़ता राजनीतिक झुकाव भी निर्वाचन आयोग की निष्पक्षता पर प्रश्न चिह्न लगाता है। वस्तुत: चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति में पारदर्शिता लाने हेतु कॉलेजियम व्यवस्था लाना चाहिए।

3) अपराधियों को चुनाव लड़ने से रोकने के लिए अधिनियमित कानूनों में स्पष्टता नहीं है। परिणामस्वरूप निर्वाचन आयोग सख्त कार्यवाही नहीं कर पाता है।

4) निर्वाचन आयोग के पास स्वतंत्र सचिवालय नहीं है।

5) विभिन्न राजनीतिक दलों में आन्तरिक लोकतंत्र का अभाव है। निर्वाचन आयोग को राजनीतिक दलों के आन्तरिक चुनाव कराने का जिम्मेदारी भी देना चाहिए।

6) संविधान में निर्वाचन आयोग के सदस्यों की योग्यता भी निर्धारित नहीं की गई है तथा इस बात का भी उल्लेख नहीं किया गया है कि अन्य निर्वाचन आयुक्तों का कार्यकाल कितना होगा।

7) निर्वाचन आयुक्तों की सेवानिवृत्ति के पश्चात् संविधान द्वारा अन्य नियुक्तियों पर रोक नहीं लगाई गई है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

दल-बदल की राजनीति

दल-बदल का अर्थ है - जनप्रतिनिधि द्वारा अपनी राजनीतिक निष्ठाओं बदलना। डॉ. सुभाष कश्यप के अनुसार जब कभी कोई विधायक व्यक्तिगत या राजनीतिक मतभेदों की वजह से अपने दल से इस्तीफा देता है और किसी दूसरे दल में शामिल हो जाता है या नए दल का गठन करता है या अपने दल की सदस्यता न छोड़ते हुए भी सदन में उसके विरुद्ध मत डालता है, तब वह राजनीतिक दल-बदल कहलाता है। दल-बदल की इस प्रक्रिया को 'फ्लोर क्रॉसिंग' भी कहा जाता है। वस्तुत: इंग्लैण्ड में हाउस ऑफ कॉमन्स में विरोधी दल तथा सरकारी दल के सदस्य आमने-सामने बैठते हैं। यदि उनमें से किसी दल का सदस्य एक तरफ से दूसरी तरफ जाता है, तो उसे बीच के रास्ते को पार करके जाना होता है, इसीलिए वहां इस प्रक्रिया को फ्लोर क्रॉसिंग का नाम दिया गया है।

भारत में दल परिवर्तन की राजनीतिक समस्या 1967 के आम चुनाव के पश्चात् मानी जाती है। 1967 में विभिन्न राज्यों में व्यापक पैमाने पर दल परिवर्तन हुए, जिसके जरिये राज्यों में सरकारें गिराने, बनाने एवं बचाने का खेल प्रारंभ हो गया। 1967 में आठ राज्य विधानसभाओं के चुनाव हुए, जिसमें गैर-कांग्रेसी सरकार अस्तित्व में आई, किन्तु दल-बदल के कारण सरकार बनती-बिगड़ती रही। 1977 में केन्द्र में पहली बार जनता दल की सरकार बनी, किन्तु दल-बदल के कारण मुरारजी देसाई की सरकार मात्र ढाई वर्ष चली। इस प्रक्रिया का व्यापक रूप 1977 में सिक्किम में देखने को मिला, जब सम्पूर्ण सरकार ने ही दल-बदल लिया।

इस राजनीतिक समस्या पर गंभीरतापूर्वक आठवें आम चुनाव के बाद राजीव गांधी सरकार ने सोचा। राजीव गांधी सरकार ने दल-बदल पर रोक लगाने हेतु 52वां संविधान संशोधन कर दल-बदल अधिनियम, 1985 लागू किया तथा संविधान में 10वीं अनुसूची जोड़ी गई।

- **दल-बदल अधिनियम, 1985**

10वीं अनुसूची में दल-बदल के आधार पर सांसदों व विधायकों की अयोग्यता से संबंधित प्रावधान का उल्लेख किया गया है। कोई सांसद या विधायक दल-बदल कानून के आधार पर अयोग्य होगा -

1) यदि वह स्वेच्छा से अपने राजनीतिक दल से त्यागपत्र दे देता है।
2) यदि वह सदन में अपने राजनीतिक दलों के निर्देशों (Whip) के विपरीत मतदान करता है या मतदान के समय अनुपस्थित रहता है और उसे राजनीतिक दल ने 15 दिनों के अन्दर क्षमा न किया हो।
3) यदि कोई मनोनीत सदस्य शपथ लेने के 6 माह बाद किसी राजनीतिक दल की सदस्यता ग्रहण कर ले।
4) कोई निर्दलीय सदस्य चुनाव के बाद किसी राजनीतिक दल की सदस्यता ग्रहण कर ले।

दल-बदल अधिनियम के कुछ अपवाद भी है, जिनमें यह लागू नहीं होता है -

1) जब कोई सदस्य अध्यक्ष/सभापति चुने जाने पर अपने दल से त्यागपत्र देता है।
2) यदि दो या उससे अधिक दल अपनी कुल सदस्यता के दो तिहाई बहुमत से विलय का निर्णय करे।
3) यदि किसी दल के एक तिहाई सदस्य अपना दल सामूहिक रूप से छोड़कर किसी नए दल का निर्माण कर ले।

उल्लेखनीय है कि किसी राजनीतिक दल के एक तिहाई सदस्यों द्वारा दल छोड़ने संबंधी प्रावधान को 91वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा इस प्रावधान को समाप्त कर दिया गया है। यदि दल-बदल अधिनिमय के आधार पर किसी सदस्य की अयोग्यता संबंधी कोई प्रश्न उत्पन्न होता है, तो पीठासीन अधिकारी इसका निर्णय करेगा। यद्यपि उसके इस निर्णय की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है।

- **दल-बदल अधिनियम, 1985 की कमियां एवं आलोचनाएं**

1) यह अधिनियम किसी सदस्य की व्यक्तिगत संसदीय विशेषाधिकारों पर चोंट करता है तथा दलीय के अनुशासन के नाम पर सदस्य व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन करता है। दल द्वारा जारी किए गए निर्देशों (Whip) का पालन करना सदस्य के लिए अनिवार्य होता है, चाहे वह कितना ही गलत और सदस्यों की अंतरात्मा के प्रतिकूल ही क्यों न हो।
2) यह अधिनियम विधायिका के बाहर सदस्यों द्वारा किए गए दल विरोधी गतिविधियों के संदर्भ में कोई व्यवस्था नहीं करता। विधायिका के अंदर ठीक आचरण ही इसकी एकमात्र कसोटी है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

3) यह अधिनियम निर्दलीय एवं मनोनीत सदस्यों मध्य अतार्किक विभेद करता है।

4) इस अधिनियम के अनुसार अयोग्यता संबंधी निर्णय करने की शक्ति पीठासीन अधिकारी के पास होती है। पीठासीन अधिकारी ही सामान्यत: सत्तारूढ़ दल का सदस्य होता है। स्वाभाविक तौर पर उसका झुकाव अपने राजनीतिक दल की ओर होता है। अत: वह इस कानून का मनमाने तरीके से दुरुपयोग कर सकता है।

5) इस अधिनियम के अनुसार दल-बदल संबंधी मामलों के निर्णय हेतु कोई समयसीमा तय नहीं की गई है, जिससे पीठासीन अधिकारी इसका प्रयोग सत्तारुढ़ दल के पक्ष में करता है।

6) पीठासीन अधिकारी के पास न्याय निर्णयन हेतु विधिक ज्ञान एवं अनुभव की कमी होती है, जिससे उसके निर्णय पर कई बार संदेह किया जाता है।

ध्यातव्य है कि हमने ब्रिटिश संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली को अपनाया है और अक्सर ब्रिटिश संसदीय परम्परा के उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं। ब्रिटिश संसद में कोई भी निर्वाचित सदस्य सदन में पार्टी के विरुद्ध अपनी स्पष्ट असहमति व्यक्त कर सकता है, वह पार्टी के अधिकारिक निर्देश के खिलाफ वोट भी दे सकता है, लेकिन 2 मौकों पर उसे पार्टी निर्देशों (Whip) का पालन अनिवार्य रूप से करना होता है - **पहला,** अविश्वास प्रस्ताव के समय और **दूसरा,** वित्तीय विधेयक (मनी बिल) के दौरान। इसमें अगर सदस्य अपनी पार्टी के अनुशासन का पालन नहीं करता है तो उसकी सदस्यता समाप्त हो जाती है। कारण यह है कि उपरोक्त दो मौके ही हैं, जब शक्ति परीक्षण में हारने पर सरकार गिर जाती है अन्यथा नहीं।

आकार IAS
Shaping Your Dreams

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक
Comptroller and Auditor General of India - CAG

भारत सरकार में महान्यायवादी के बाद दूसरा महत्वपूर्ण पद नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक का है। यह भारतीय लेखा परीक्षण तथा लेखा विभाग का मुखिया होता है। यह लोक वित्त का संरक्षक होने के साथ-साथ देश की सम्पूर्ण वित्तीय व्यवस्था का नियंत्रक होता है। यह संघ तथा राज्यों के समस्त आय-व्यय की निष्पक्ष जांच करता है। भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 148-151** में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक का विशद विवेचन किया गया है।

- **नियुक्ति व शपथ**

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति संघ मंत्रिमण्डल की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। यह अपना पद ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति या उनके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के समक्ष पद और गोपनीयता की शपथ लेता है।

- **पदावधि एवं सेवा की अन्य शर्तें**

संविधान में प्रावधान किया गया है कि नियंत्रक महालेखा परीक्षक की पदावधि एवं सेवा शर्तों का निर्धारण संसद द्वारा किया जाएगा। इस अधिकार का प्रयोग करते हुए संसद ने नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1953 पारित किया। बाद में वेतन एवं सेवा शर्तों के निर्धारण के लिए संसद द्वारा नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां तथा सेवा शर्तें) अधिनियम, 1971 पारित किया गया, जिसमें 1976, 1984 और 1987 में संशोधन किए गए हैं। वर्तमान में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की स्वतंत्रता के मुख्य प्रावधान निम्नलिखित हैं -

1) नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को उसके पद ग्रहण की तिथि से 6 वर्ष की अवधि के लिए नियुक्त किया जाएगा, लेकिन वह -
   - **a)** यदि अपनी पदावधि को पूरा करने के पहले ही 65 वर्ष की आयु पूरी कर लेता है, तो वह पदमुक्त हो जाता है,
   - **b)** वह किसी भी समय राष्ट्रपति को अपना त्यागपत्र दे सकता है,
   - **c)** वह राष्ट्रपति द्वारा उसी तरह से हटाया जा सकता है, जैसे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है,
2) उसका वेतन उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के समान होगा,
3) उसका समस्त वेतन, भत्ते, पेंशन आदि भारत की संचित निधि पर भारित होंगे,
4) सेवा मुक्त होने के बाद वह भारत सरकार या राज्य सरकार के अधीन कोई लाभ का पद नहीं धारण करेगा।

- **कार्य और शक्तियां**

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्य तथा शक्तियां निम्नलिखित हैं -

1) वह भारत, प्रत्येक राज्य एवं संघ राज्यक्षेत्र की संचित निधि से किए जाने वाले सभी व्यय की संपरीक्षा करेगा तथा इस संबंध में यह प्रतिवेदन देगा कि व्यय विधि के अनुसार किया गया है या नहीं,
2) वह संघ तथा राज्यों की आकस्मिक निधि तथा सार्वजनिक लेखाओं के लिए किए जाने वाले सभी व्यय की संपरीक्षा करेगा तथा उन पर प्रतिवेदन करेगा,
3) वह संघ या राज्य के विभिन्न विभागों द्वारा किए गए सभी व्यापार तथा विनिमय के लाभ तथा हानि लेखाओं की संपरीक्षा करेगा तथा उन पर प्रतिवेदन देगा,
4) वह संघ और प्रत्येक राज्य की आय और व्यय की संपरीक्षा करेगा, जिससे उसका यह समाधान हो जाए कि राजस्व के निर्धारण, संग्रहण तथा समुचित आवंटन हेतु पर्याप्त जांच करने के लिए उचित प्रक्रिया तथा नियम का पालन किया गया है या नहीं,
5) वह निम्नलिखित निकायों तथा निगमों की प्राप्ति और व्यय की संपरीक्षा करेगा तथा उस पर प्रतिवेदन देगा
   - **a)** संघ और राज्य के राजस्व से वित्तपोषित सभी निकायों और प्राधिकारियों की,
   - **b)** सरकारी कंपनियों की,
   - **c)** अन्य निगमों और निकायों की।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

इस प्रकार नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को अर्द्ध-संसदीय कार्य एवं शक्तियां प्रदान की गई हैं। 1976 से नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्य में परिवर्तन लाते हुए उसे लेखांकन के दायित्व से मुक्त कर दिया गया है। वर्तमान में वह केन्द्र सरकार के लिए केवल अंकेक्षण तथा राज्यों के लिए लेखांकन एवं अंकेक्षण दोनों प्रकार के कार्य को सम्पन्न करता है।

- **प्रतिवेदन**

अनुच्छेद-151 के अनुसार भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक प्रतिवर्ष अपनी संपरीक्षा प्रतिवेदन राष्ट्रपति के माध्यम से संसद को प्रस्तुत करता है। ठीक इसी प्रकार नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक राज्य के लेखा संबंधी प्रतिवेदन राज्यपाल को प्रस्तुत करता है, जो उसे राज्य विधानसभा के समक्ष रखवाता है।

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट एवं सरकार के मामलों में संसदीय लोक लेखा समिति (Public Account Committee - PAC) को तथा राज्यों में राज्य विधानमण्डल की लोक लेखा समितियों को सौंपी जाती है।

❒ मध्य प्रदेश का महालेखाकार (Accountants General of Madhya Pradesh)

मध्य प्रदेश के महालेखाकार का कार्यलय भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग का एक भाग है, जो भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक के अधीन कार्यरत् है। इसकी स्थापना मई, 1985 में हुई थी। इसका मुख्य कार्यालय ग्वालियर में, जबकि शाखा कार्यालय भोपाल में है। यह कार्यालय मध्य प्रदेश सरकार के सिविल व वाणिज्य विभागों तथा मध्य प्रदेश में स्थित केन्द्र सरकार के विभिन्न विभागों व संगठनों की लेखा परीक्षा करता है।

- **कार्य**

मध्य प्रदेश के महालेखाकार के निम्नलिखित कार्य हैं -

1) राज्य सरकार के वार्षिक वित्त खातों एवं विनियोजित खातों को तैयार करना।

2) वित्त लेखों एवं विनियोग लेखों का प्रमाणीकरण।

3) मध्य प्रदेश सरकार के विभिन्न विभागों के आय-व्यय की परीक्षा करना।

4) ट्रेजरी खातों का निरीक्षण व लेखा परीक्षण करना।

5) राज्य सरकार के कर्मचारियों के पेंशन खातों का प्रबंधन करना।

6) केन्द्र सरकार, विश्व बैंक तथा अन्य विदेशी सहायता प्राप्त योजनाओं का लेखा परीक्षण कर उसका प्रमाण-पत्र जारी करना।

उल्लेखनीय है कि लेखा परीक्षण प्रशासन का एक महत्वपूर्ण व आवश्यक अंग है। इस कार्य को सम्पादित करने का मुख्य कर्तव्य भारत के नियंत्रक लेखा परीक्षक का होता है। इसी के नियंत्रणाधीन मध्य प्रदेश का महालेखाकार राज्य सरकार के लेखा संबंधी कार्यों का परीक्षण कर भारत के नियंत्रक लेखा परीक्षक की सहायता करता है।

आकार IAS
Shaping Your Dreams

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

भारत का महान्यायवादी
Aattorney General of India

❐ नियुक्ति

संविधान के अनुच्छेद 76 के अनुसार भारत के महान्यायवादी की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी। लेकिन राष्ट्रपति महान्यायवादी की नियुक्ति संघ मंत्रिपरिषद् की सलाह पर करता है।

❐ योग्यता

महान्यायवादी के पद पर उसी व्यक्ति को नियुक्त किया जाएगा, जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश होने की योग्यता रखता हो।

❐ पदावधि, पदरिक्ति एवं वेतन

संविधान में महान्यायवादी का कार्यकाल न तो निश्चित किया गया है और न ही उसे हटाने की प्रक्रिया दी गई है। वह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत पद धारण करता है, अर्थात् – वह तब तक अपने पद पर बना रहता है, जब तक राष्ट्रपति चाहता है। इसके अलावा वह राष्ट्रपति को त्यागपत्र देकर पदमुक्त हो सकता है। परम्परा के अनुसार जब सरकार बदल जाती है, तो महान्यायवादी अपना त्यागपत्र प्रस्तुत कर देता है। महान्यायवादी के वेतन को निर्धारित करने की शक्ति राष्ट्रपति में निहित है।

❐ कार्य

महान्यायवादी भारत सरकार का सर्वप्रथम विधि अधिकारी है और इस रूप में वह निम्नलिखित कार्य करता है –

1) भारत सरकार की विधि सम्बन्धी ऐसे विषयों पर सलाह देना, जो राष्ट्रपति समय-समय पर उसको निर्देशित करें या सौंपे।

2) विधिक स्वरूप के ऐसे अन्य कर्तव्यों का पालन करना, जो राष्ट्रपति द्वारा उसे सौंपे गए हो।

3) उन कर्तव्यों का निर्वहन करना, जो भारतीय संविधान द्वारा या किसी अन्य विधि द्वारा उसे प्रदान किया गया हो।

राष्ट्रपति महान्यायवादी को निम्नलिखित कार्य सौंपता है –

1) भारत सरकार से संबंधित मामलों को लेकर उच्चतम न्यायालय में भारत सरकार की ओर से पेश होना।

2) संविधान के अनुच्छेद 143 के तहत् राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय में भारत सरकार का प्रतिनिधित्व करना।

3) सरकार से संबंधित किसी मामले में उच्च न्यायालय में सुनवाई करना।

❐ अधिकार

1) महान्यायवादी को अपने कर्तव्यों के पालन में भारत के राज्यक्षेत्र में सभी न्यायालयों में सुनवाई का अधिकार होता है।

2) अनुच्छेद 88 के अनुसार महान्यायवादी संसद के किसी सदन में संसद की संयुक्त बैठक में और संसद की किसी समिति में, जिसमें उसका नाम सदस्य के रूप में दिया गया हो, बोले और उसकी कार्यवाहियों में भाग ले, लेकिन उसे मत देने का अधिकार नहीं है।

3) महान्यायवादी को अपने पद के आधार पर संसद के सदस्यों के अनुरूप विशेषाधिकार और विमुक्तियां प्राप्त हैं।

❐ सीमाएं

महान्यायवादी को उसके निजी प्रैक्टिस पर रोक स्थापित नहीं की गई है, किन्तु उसकी कुछ सीमाएं हैं, जो निम्नलिखित हैं –

1) वह भारत सरकार के खिलाफ कोई सलाह या विश्लेषण नहीं कर सकता।

2) बिना भारत सरकार की अनुमति के वह किसी आपराधिक मामले में व्यक्ति का बचाव नहीं कर सकता।

3) बिना भारत सरकार की अनुमति के वह किसी परिषद् या कंपनी के निदेशक का पद ग्रहण नहीं कर सकता।

भारत के महान्यायवादी की सहायता के लिए 1 सॉलिसिटर जनरल तथा कुछ अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल नियुक्त किए जाते हैं, लेकिन भारत के महान्यायवादी की तरह इन पदों को संवैधानिक दर्जा प्राप्त नहीं है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

कुछ वर्गों के संबंध में विशेष प्रावधान

संविधान में भाग 16 (अनुच्छेद 330-342) तथा अन्य अनुच्छेदों में अल्पसंख्यक, अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति, आंग्ल भारतीय समुदाय और पिछड़े वर्गों के संबंध में विशेष प्रावधान किया गया है, जो निम्नलिखित हैं -

1) **अल्पसंख्यक वर्ग के लिए प्रावधान** - भारतीय संविधान के अल्पसंख्यक वर्ग के लिए निम्नलिखित विशेष प्रावधान किए गए हैं -
   - **a)** धार्मिक स्वतंत्रता के लिए प्रावधान,
   - **b)** शिक्षा तथा सांस्कृतिक अधिकारों के लिए प्रावधान,
   - **c)** मातृभाषा में शिक्षा की सुविधा [अनुच्छेद 350(A) - प्रत्येक राज्य शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की सुविधा का प्रयास करेगा],
   - **d)** भाषायी अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकारी [अनुच्छेद 350(B) - राष्ट्रपति भाषायी अल्पसंख्यक वर्गों के लिए एक भाषायी अधिकारी नियुक्त करेगा],
   - **e)** अपनी रूचि के अनुसार शिक्षा संस्था की स्थापना।

2) **एंग्लो इंडियन के लिए प्रावधान** - अनुच्छेद 331 के तहत् यदि राष्ट्रपति को प्रतीत होता है कि लोकसभा में एंग्लो इंडियन समुदाय का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है, तो वह लोकसभा में उस समुदाय के 2 सदस्यों को मनोनीत कर सकता है। इसी प्रकार अनुच्छेद 333 के तहत् राज्यपाल विधानसभा में 1 एंग्लो इंडियन समुदाय के सदस्य को मनोनीत कर सकता है।

3) **अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लिए प्रावधान** - संविधान में अनुसूचित जाति तथा जनजाति के सदस्यों के लिए विशेष प्रावधान किया गया है। कौन व्यक्ति अनुसूचित जाति या जनजाति का सदस्य है, इसका निर्धारण करने का अधिकार राष्ट्रपति को प्राप्त है। राष्ट्रपति प्रत्येक राज्य के राज्यपाल से परामर्श कर अनुसूचित जाति तथा जनजाति की सूची तैयार करता है। संसद को इस सूची का पुनरीक्षण करने की शक्ति है। संविधान में अनुसूचित जातियों, जनजातियों के संबंध में निम्नलिखित प्रावधान किए गए हैं -
   - **a) लोकसभा तथा राज्य विधानसभाओं में स्थानों का आरक्षण** - अनुच्छेद 330 और 332 के अधीन अनुसूचित जाति तथा जनजाति के सदस्यों के लिए लोकसभा तथा राज्स विधानसभाओं में स्थानों का आरक्षण किया गया है। यह आरक्षण इन जातियों की संख्या के आधार पर होता है तथा इनके लिए आरक्षित स्थानों में भी परिवर्तन होता रहता है।
   - **b) सेवाओं और पदों के लिए अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के दावे** - अनुच्छेद 335 के अनुसार संघ या राज्य से संबंधित सेवाओं और पदों की नियुक्ति करने में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्यों के दावों का प्रशासन की दक्षता बनाए रखने की संगति के अनुसार ध्यान रखा जाएगा। अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्यों के पक्ष में संघ या राज्य किसी परीक्षा में मूल्यांकन के मानकों को घटा सकता है।
   - **c) राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग** - अनुच्छेद 338 के अधीन अनुसूचित जातियों के लिए राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग का गठन किया गया है। इस पांच सदस्यीय आयोग में 1 अध्यक्ष, 1 उपाध्यक्ष और 3 अन्य सदस्यों का प्रावधान किया गया है। इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी। इनकी सेवा शर्तें और पदावधि ऐसी होगी, जो राष्ट्रपति नियम द्वारा अवधारित करे। आयोग को अपनी प्रक्रिया स्वयं विनियमित करने की शक्ति प्राप्त है।
   - **d) राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग** - संविधान के 89वें संशोधन द्वारा शामिल अनुच्छेद 338 (A) के तहत् राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग का गठन किया गया है। आयोग में 1 अध्यक्ष, 1 उपाध्यक्ष और 3 अन्य सदस्यों का प्रावधान किया गया है, जिनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी। इनकी सेवा शर्तें और पदावधि ऐसी होगी, जो राष्ट्रपति नियम द्वारा अवधारित करे। आयोग को अपनी प्रक्रिया स्वयं विनियमित करने की शक्ति प्राप्त है।

3) **पिछड़े वर्गों के लिए प्रावधान** - पिछड़े वर्ग के अन्तर्गत उन समुदायों को शामिल किया जाता है, जो सामाजिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े हों। सामाजिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ेपन का निर्धारण केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 340 में पिछड़े वर्गों की दशाओं के अन्वेषण के लिए आयोग की नियुक्ति के संबंध में प्रावधान है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

ऐसे आयोग का गठन राष्ट्रपति करता है तथा आयोग में कितने सदस्य हों, इसका निर्णय भी वही करता है। राष्ट्रपति ने अब तब 2 पिछड़ा वर्ग के आयोग का गठन किया है, पहला 29 जनवरी, 1953 को काका कालेलकर की अध्यक्षता में तथा दूसरा 20 सितम्बर, 1978 को वी. पी. मण्डल की अध्यक्षता में। पिछड़े वर्गों के कृयाण के लिए संसद ने राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग अधिनियम, 1993 पारित किया, जिसके तहत् अगस्त, 1993 में 5 सदस्यीय राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग की स्थापना की गई।

राजभाषा

संविधान द्वारा 22 भाषाओं को राजभाषा की मान्यता प्रदान की गई है। संविधान के अनुच्छेद 344 के अन्तर्गत पहले केवल 14 भाषाओं को राजभाषा की मान्यता दी गई थी, लेकिन 21वें संविधान संशोधन द्वारा सिन्धी को तथा 71वां संविधान संशोधन द्वारा नेपाली, कोंकणी तथा मणिपुरी को भी राजभाषा का दर्जा प्रदान किया गया। बाद में 92वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 के द्वारा संविधान की 8वीं अनुसूची में 4 नई भाषाओं बोडो, डोगरी, मैथिली तथा संथाली को राजभाषा का दर्जा प्रदान किया गया है।

❒ संघ की भाषा

संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी, लेकिन संविधान के बाद 15 वर्षों तक, अर्थात् - 1965 तक संघ की भाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग किया जाना था और संसद को यह अधिकार दिया गया था कि वह चाहे तो संघ की भाषा के रूप में अंग्रेजी के प्रयोग की अवधि को बढ़ा सकती थी। इसलिए संसद ने राजभाषा अधिनियम, 1963 पारित करके यह व्यवस्था कर दी कि संघ की भाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग अनिश्चतकाल तक रहेगा।

❒ राजभाषा आयोग

संविधान के अनुच्छेद 344 में राष्ट्रपति को राजभाषा आयोग को गठित करने का अधिकार दिया गया है। राष्ट्रपति अपने इस अधिकार का प्रयोग प्रत्येक 10 वर्ष की अवधि के पश्चात् करेंगे। राजभाषा आयोग में उन भाषाओं के प्रतिनिधियों को शामिल किया जाएगा, जो संविधान की 8वीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं। राष्ट्रपति ने अपने इस अधिकार का प्रयोग करके 1955 में राजभाषा आयोग का गठन किया था। बी. जी. खेर को उस समय राजभाषा आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था।

❒ राज्य की भाषा

संविधान के अनुच्छेद 345 के अधीन प्रत्येक राज्य के विधानमण्डल को यह अधिकार दिया गया है कि वह संविधान की 8वीं अनुसूची में अन्तर्विष्ट भाषाओं में से किसी एक या अधिक को सरकारी कार्यों के लिए राज्य की भाषा के रूप में अंगीकार कर सकता है, किन्तु राज्यों के परस्पर संबंधों में तथा संघ और राज्यों के परस्पर संबंधों में संघ की राजभाषा को ही प्राधिकृत भाषा माना जाएगा।

❒ उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों की भाषा

संविधान में प्रावधान किया गया है कि जब तक संसद द्वारा कानून बनाकर अन्यथा प्रावधान न किया जाए, तब तक उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की भाषा अंग्रेजी होगी और संसद तथा राज्य विधानमण्डलों द्वारा पारित कानून अंग्रेजी में होंगे। किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की अनुमति से उच्च न्यायालय की कार्यवाही को राजभाषा में होने की अनुमति दे सकता है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

समुदाय आधारित संगठन
Community Based Organizations

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है, जो अपने देश की जनता के समक्ष सामाजिक व आर्थिक न्याय उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखता है। विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं व कार्यक्रमों के माध्यम से सरकार इस लक्ष्य को प्राप्त करने की कोशिश कर रही है। विगत कई वर्षों से सरकार को स्वैच्छिक संगठनों और समुदाय आधारित संगठनों का भी सहयोग प्राप्त हो रहा है। वर्तमान में स्वैच्छिक व समुदाय आधारित संगठन समाजिक उन्नयन एवं आर्थिक विकास में योगदान देने वाली एक नई शक्ति के रूप में उभरे हैं। अनुमानत: भारत में 33 लाख पंजीकृत संगठन हैं, जो सहभागी लोकतंत्र की संकल्पना को भारत में साकार कर रहे हैं।

समुदाय आधारित संगठन ऐसे गैर-लाभकारी संगठन होते हैं, जो स्थानीय स्तर पर लोगों का जीवनस्तर बेहतर बनाने हेतु कार्य करते हैं। इनका गठन एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्रफल के स्थानीय लोगों द्वारा समान उद्देश्य की प्राप्ति हेतु किया जाता है। यह मुख्यरूप से समाज सेवा, पर्यावरण संरक्षण व नवीनीकरण, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण व पुनर्भरण की दिशा में कार्यरत् हैं। इनका मुख्य लक्ष्य समाज के विभिन्न वर्गों एवं क्षेत्रों में समानता स्थापित करना है। वस्तुत: ऐसे संगठन निरन्तर सामाजिक परिवर्तन के लिए एक बेहतर लोकतांत्रिक साधन है। सामान्यत: यह संगठन सहकारिता के आधार पर संचालित होते हैं।

भारत सरकार ने भी इन संगठनों की रचनात्मक व क्रियात्मक भूमिका को स्वीकार किया है। इन संगठनों की महत्ता को देखते हुए वर्ष 2002 में योजना आयोग को सरकारी संगठन व स्वयं सेवी संगठन के समन्वय के लिए नोडल एजेंसी बनाया गया। इन संगठनों से सरकार को भी कई लाभ प्राप्त होते हैं, जैसे - यह स्थानीय स्तर पर लोगों को सुविधाएं, सूचनाएं एवं उनकी समस्याओं का समाधान उपलब्ध कराने हेतु सरकार की सहायता करती है। इनके द्वारा संग्रहित सूचना व डाटा सरकार के सूचना प्रबंधन हेतु उपयोगी होती है। ये लोगों की प्रत्यक्ष भागीदारी सुनिश्चित करते हैं।

गैर-सरकारी संगठन
Non-governmental Organization

विकास एक बहुउद्देशीय और एक व्यापक विचार है। विकास के अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक नैतिक और पर्यावरणीय कारक समाविष्ट होते हैं। इस संदर्भ में विकास सामाजिक संतुष्टि, राजनीतिक सहभागिता और आर्थिक विकास का सूचक है। इस प्रकार विकास सम्पूर्ण उन्नति की प्रक्रिया है। विकास की यह प्रक्रिया एक सामूहिक प्रयास है। इसमें के सभी अंग भाग लेते हैं। इन्हीं अंगों में से एक अंग है नागरिक समाज। इस नागरिक समाज का एक महत्वपूर्ण भाग 'गैर-सरकारी संगठन' है।

गैर-सरकारी संगठन एक निजी संगठन होता है, जो सरकार से स्वतंत्र होकर सामाजिक व आर्थिक विकास हेतु विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों को संचालित करता है। ऐसे संगठन सरकारी अधिनियमों के द्वारा अधिनियमित होते हैं। इनका उद्देश्य लाभ कमाना नहीं होता है, बल्कि नि:स्वार्थ भाव से समाज कल्याण के लिए अपना योगदान देना है।

अपने इसी उद्देश्य के कारण आज ये गैर-सरकारी संगठन, प्रशासन एवं जनता के मध्य विकास को एक सजीव कड़ी बन गए है। गैर-सरकारी संगठन वास्तव में विकास प्रशासन में सहभागी प्रशासन को यथार्थ रूप देने वाली एक महत्वपूर्ण संरचना है।

नीति निर्माण में इसकी सहभागिता निम्नलिखित प्रकार से सम्पन्न होती है -

1) अधिनियमों या नीतियों के लिए जनमत तैयार करके।
2) संसदीय या विभागीय समितियों के समक्ष नागरिक समाज का पक्ष रखना।
3) न्यायालय में जनहित याचिकाएं दाखिल करना।
4) प्रदर्शन, रैली, घरनों के माध्यम से सरकार पर दबाव डालना।
5) शोध एवं अनुसंधान के आधार पर नवीन नीति सुझाना।

नीति क्रियान्वयन के चरण में 'NGO' निम्नलिखित प्रकार से अपनी सहभागिता पूर्ण करते हैं -

1) सुविधाओं से वंचित वर्ग को प्रशासन तक या प्रशासन को उस तक पहुंचाना।
2) सरकार की नीतियों के संबंध में जनजागरूकता अभियान चलाना।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

3) योजनाओं का लाभ प्राप्त करने के लिए स्वयं सहायता समूहों का निर्माण करना।

4) आकस्मिक विपत्ति के समय प्रभावित क्षेत्रों के लोगों को राहत पहुंचाना।

नीति मूल्यांकन एवं निगरानी के समय यह (NGO) निम्नलिखित प्रकार से प्रशासन में अपनी सहभागिता को निभाता है –

1) क्रियान्वयन में उत्पन्न दोषों का पता लगाकर इसे प्रकाश में लाना।

2) जनता की कठिनाइयों एवं शिकायतों से प्रशासन को अवगत कराना।

3) सरकारी कार्यक्रमों की प्रगति पर नियंत्रण निगरानी रखना।

4) क्रियान्वयन संबंधी आंकड़े एवं सूचनाओं का स्वयं संकलन करना, ताकि निष्पक्ष मूल्यांकन हो सके।

गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका विकास के संबंध में जनजागरूकता का प्रचार एवं प्रसार में भी महत्वपूर्ण है। जनसभाओं, गोष्ठियों, नुक्कड़ नाटकों आदि के माध्यम से यह जनता को जागरूक बनाते है, ताकि वह अपनी समस्याओं के प्रति संवेदनशील हो सके।

इस प्रकार NGO की भूमिका को विकास के क्षेत्र में निम्नलिखित प्रकास से प्रतिबिम्बित किया जा सकता है –

1) निर्धनों एवं अशक्तजनों को सामाजिक आर्थिक विकास के लिए संगठित एवं गतिशील करते हैं।

2) वे जनता को सरकारी प्रयास विकास संबंधी योजनाओं एवं रणनीतियों में अवगत करते हैं।

3) ये प्रशासनिक प्रक्रिया में जनता की सहभागिता को सुलभ बनाते हैं।

4) वे प्रशासनिक तंत्र को जनता की आवश्यकताओं एवं आकाक्षाओं के प्रति अधिक संवेदनशील बनाते हैं।

5) प्रशासन में भ्रष्टाचार की संभावनाओं को कम करते हैं।

6) प्रशासन को जरूरतमंद लोगों तक पहुंचाता है।

7) जनता में राजनीतिक चेतना का विकास करता है, ताकि वह स्वयं अपने विकास की मांग रख सके।

इतने महत्वपूर्ण कार्यों को करने के लिए गठित कई समस्याओं एवं बाधाओं से ग्रसित है, जैसे –

1) वित्तिय एवं कुशल मानव संसाधन का अभाव।

2) नैकरशाही का असहयोगात्मक रवैया।

3) उन पर्याप्त सूचना आधार।

4) इनके स्वयं के दृष्टिकोण में सम्पूर्णता का अभाव है। ये केवल एक क्षेत्र विशेष तक सीमित रहते हैं।

5) राजनीतिक हस्तक्षेप एवं दबाव।

6) समाज में व्याप्त क्षेत्रवाद, जातिवाद, गरीबी, अशिक्षा आदि के कारण नागरिक इसके प्रति जागरूक नहीं है।

7) ये स्वयं भी भ्रष्टाचार से युक्त नहीं है।

गैर-सरकारी संगठनों का विकास के क्षेत्र में इतनी महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि सरकार द्वारा इन्हें और अधिक उत्तरदायित्व सौंपे जाए। इनके समक्ष उत्पन्न होने वाली बाधाओं को दूर करके इन्हें और अधिक प्रभावी बनाया जाए, ताकि सहभागी लोकतंत्र व समावेशी विकास की संकल्पना को साकार किया जा सके।

❐ समुदाय आधारित संगठन एवं गैर-सरकारी संगठन में अन्तर

समुदाय आधारित संगठन	गैर-सरकारी संगठन
यह मानदेय या पारिश्रमिक की आशा नहीं करता है।	यह मानदेय या पारिश्रमिक पर कार्य करता है।
यह इच्छानुरूप कार्यों का चुनाव करता है, किन्तु कार्य का प्रारंभ, अवधि व समापन के संबंध में स्व-नियंत्रण होता है।	यह भी इच्छानुरूप कार्यों का चुनाव करता है, किन्तु कार्य का प्रारंभ, अवधि व समापन संबंधी नियंत्रण वित्त प्रदाता संस्था का होता है।
इसका निश्चित संविधान, पंजीयन, कार्यपद्धति व पदाधिकारी की अनिवार्यता नहीं होती है।	इसका निश्चित संविधान, पंजीयन, कार्यपद्धति व पदाधिकारी की होते हैं।
इसका नियमित कार्यालय एवं कार्यविधि नहीं होती है।	इसका नियमित कार्यालय एवं कार्यविधि होती है।
दस्तावेजों का लेखा-जोखा रखने की अनिवर्याता नहीं होती है।	दस्तावेजों का लेखा-जोखा रखने की अनिवर्याता होती है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

स्वयं सहायता समूह
Self Help Groups

स्वयं सहायता समूह एक समान सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति वाले निर्धन लोगों का समूह है, जो अपने सदस्यों के मध्य समान समस्याओं को आपसी सहायता से सुलझाते हैं। इन समूहों का गठन सामान्यत: गैर-सरकारी संगठनों अथवा सहकारी निकयों के रूप में किया जाता है। ये अनौपचारिक समूह होते हैं। इनका निर्माण 15-20 लोग आपस में मिलकर करते हैं, किन्तु पर्वतीय या मरुस्थलीय या कम जनसंख्या घनत्व वाले क्षेत्रों में सदस्यों की संख्या 5 भी हो सकती है।

भारत में स्वयं सहायता समूहों की उत्पत्ति 1970 के दशक में हुई, जब 1972 में सेल्फ एम्प्लाई वुमेन्स एसोसिएशन (SEVA) का गठन हुआ, जिसने निर्धनता उन्मूलन, महिला रोजगार व महिला सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आगे चलकर सरकार की विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों के तहत् इन समूहों के गठन व निर्माण किया गया। उदाहरणार्थ - स्वर्ण जयंती ग्राम स्व-रोजगार योजना, 1999 आदि।

समूह के सभी सदस्य एक साधारण निधि के तौर पर योगदान करने के लिए सहमत होते हैं। इस निधि का प्रयोग समूह के जरूरतमंद सदस्यों को उत्पादक कार्यों के विकास हेतु किया जाता है, ताकि उसकी आय में वृद्धि हो और उसके जीवनस्तर में सुधार हो सके। स्वयं सहायता समूह का उद्देश्य केवल वित्तीय मध्यस्थता का नहीं है, बल्कि यह स्व-प्रबंधन एवं विकास के जरिये कम लागत वाली वित्तीय सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लक्ष्य को लेकर संचालित होता है।

❐ आवश्यकता

भारत में जनसंख्या का 70 प्रतिशत गांवों में निवास करता है। इन ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक सुविधा या अवसंरचात्मक विकास की कमी के कारण प्रत्येक व्यक्ति तक वित्तीय सुविधा की पहुंच एक चुनौती बनकर उभरी है। दूसरे शब्दों में कहे तो अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों को वित्तीय समावेशन की प्रक्रिया से नहीं जोड़ा जा सका है। ऐसी स्थिति में स्वयं सहायता समूह बिना किसी अवसंरचना के लोगों को छोटी-छोटी बचत एकत्र करने हेतु प्रोत्साहित करते हैं, ताकि उस एकत्रित राशि को किसी बड़े उद्देश्य की प्राप्ति में लगाया जा सके। इन समूहों से ग्रामीण लोगों के जीवनस्तर में सुधार हुआ है, तो वहीं दूसरी ओर महिलाओं का योगदान भी बढ़ा है। इससे गांवों में सामाजिक-आर्थिक न्याय के आदर्श को प्राप्त करने में सहायता मिली है।

❐ उद्देश्य

1) निर्धनों का जीवनस्तर उच्च बनाना।
2) उनको छोटी बचतों से लाभ कमाने हेतु प्रेरित करना।
3) महिलाओं को वित्त प्रबंधन व सामुहिक निर्णयों में भागीदार बनाना।
4) महिलाओं को सक्रिय भागीदारी से महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देना।
5) स्व-रोजगार को बढ़ाकर समावेशी व सतत् विकास करना।
6) ग्रामीण निर्धनों की ऋण जरूरतों की पूर्ति के लिए पूरक ऋण नीतियां बनाना है।
7) बैंकिंग गतिविधियों को बढ़ावा देना, बचत तथा ऋण के लिए सहयोग करना।
8) समूहों के सदस्यों के मध्य आपसी विश्वास को बढ़ाना भी इसके लक्ष्यों में शामिल है।

❐ निर्धारक तत्व

1) एक जैसे सामाजिक-आर्थिक स्तर के व्यक्तियों का समूह होने से उनकी रुचियों में मतभेद कम होगा।
2) इन समूहों में जाति, धर्म, लिंग आदि आधार पर विभेद नहीं किया जाता है।
3) इन समूहों का आकार 15 से 20 व्यक्तियों का होता है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्रतापूर्वक अपनी बात रख सकता है।
4) इन समूहों में व्यक्तियों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु नियमित उपस्थिति होनी चाहिए, जिससे समूह की गतिविधियों में पारदर्शिता बनी रहेगी।
5) यह बचत को गतिशील बनाकर पूंजी निर्माण में सहायक है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

मीडिया की भूमिका एवं समस्याएं
Issues and Role of Media

मीडिया की उत्पत्ति वस्तुत: मनुष्य की जिज्ञासु प्रवृत्ति का परिणाम है। मानव स्वभावगत ही जिज्ञासु प्राणी है तथा अपने आस-पास घटित होने वाली घटनाओं को जानना चाहता है, जिसे व्यापक अर्थों में 'सूचना' शब्द से अभिहित किया जा सकता है। सूचनाओं को सम्प्रेषित करने में माध्यम की अनिवार्यता ने ही मीडिया शब्द को जन्म दिया।

मीडिया शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द Medium से बना है, जिसका अर्थ होता है माध्यम, अर्थात् - जिन माध्यमों के द्वारा सूचनाओं का आदान-प्रदान एवं सम्प्रेषण किया जाता है, उन्हें हम मीडिया के अन्तर्गत रखते हैं।

❐ भारतीय संविधान में मीडिया की स्वतंत्रता

भारतीय संविधान में प्रेस एवं मीडिया की स्वतंत्रता को अलग से परिभाषित नहीं किया गया है, अपितु इसे अनुच्छेद 19(1)(a) वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अन्तर्गत ही रखा गया है। वस्तुत: भाषण की स्वतंत्रता एवं विचारों की अभिव्यक्ति किसी भी लोकतंत्र का मूल आधार होती है। सुप्रीम कोर्ट की व्याख्या के अनुसार भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को हम सीमित अर्थों में स्वीकार नहीं कर सकते हैं। इस स्वतंत्रता के अन्तर्गत विचारों के प्रचारों की भी स्वतंत्रता आती है।

भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ है - शब्दों, लेखों, चित्रों, मुद्रणों या किसी भी प्रकार से अपने विचारों को व्यक्त करना। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में किसी व्यक्ति के विचारों को किसी ऐसे माध्यम से अभिव्यक्त करना भी सम्मिलित है, जिसमें वह दूसरों तक उन्हें सम्प्रेषित कर सके। दूसरे शब्दों में भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता केवल अपने ही विचारों के प्रसार तक सीमित नहीं है, इसमें दूसरे के विचारों एवं प्रकाशन की स्वतंत्रता भी सम्मिलित है, जो प्रेस/मीडिया की स्वतंत्रता के अन्तर्गत ही आता है।

❐ मीडिया पर युक्तियुक्त निर्बंधन [अनुच्छेद - 19(2)]

भारत में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार पूर्ण नहीं है - अनुच्छेद 19(1)(a) द्वारा नागरिकों को प्रदत्त स्वतंत्रता का अधिकार पूर्ण नहीं है। इस अधिकार पर अनुच्छेद 19(2) द्वारा अंकुश लगाए गए हैं। किसी भी समय समाज में भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पूर्ण नहीं हो सकती है। इस स्वतंत्रता पर नियंत्रण आवश्यक है। भारतीय संविधान द्वारा भाषण की स्वतंत्रता पर युक्तियुक्त निर्बन्धन लगाए गए हैं, जो निम्नलिखित प्रकार हैं -

1) कोई भी नागरिक इस प्रकार का भाषण नहीं दे सकता है, जिससे भारत की प्रभुता एवं अखण्डता प्रभावित हो। यदि कोई नागरिक इस प्रकार का भाषण करता है, तो उस व्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है।

2) कोई व्यक्ति इस प्रकार का भाषण नहीं दे सकता है, जिसके कारण भारत की विभिन्न मित्र देशों से मित्रता समाप्त हो जाए।

3) इस प्रकार के भाषण पर रोक लगाई जा सकती है, जिसके कारण सार्वजनिक व्यवस्था भंग होती है। राज्य सुरक्षा को प्रभावित करने वाले वह भाषण भी प्रतिबंधित किए जा सकते हैं, जो अपराधों को करने की प्रेरणा देते हैं।

4) भाषण देने की स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं है कि कोई व्यक्ति अशिष्ट एवं अनैतिक भाषण दे तथा लोक शालीनता को त्याग दे।

5) कोई व्यक्ति इस प्रकार का भाषण नही दे सकता है, जिससे न्यायालयों का अवमान (Contempt of Court) हो।

6) भाषण की स्वतंत्रता के अन्तर्गत यह प्रतिबंध किया गया है कि भाषण अपमानकारी नहीं होना चाहिए।

◆ मीडिया के कार्य

परम्परागत अर्थों में मीडिया के कार्य को निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है -

1) सूचना देना (To Inform)। 2) शिक्षा देना (To Educate)।

3) मनोरंजन प्रदान करना (To Entertain)।

1) **सूचना देना (To Inform)** - सूचना देना मीडिया का पहला महत्वपूर्ण कार्य है। सूचना ही शक्ति है। सूचना के इस बढ़ते प्रभाव की वजह से ही आज के विकसित समाज को '**सूचना समाज**' कहा जाने लगा है। आज वास्तव में ज्ञानी वह है, जिसके पास सूचनाओं का अम्बार है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

2) **शिक्षा देना (To Educate)** – शिक्षा देना मीडिया का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है। यहां शिक्षा का अर्थ औपचारिक शिक्षा ही नहीं है, बल्कि ज्ञान सम्प्रेषण के समस्त रूप शिक्षा के अन्तर्गत आते हैं। शिक्षा के लिए माध्यम की आवश्यकता होती है तथा मीडिया द्वारा सम्प्रेषित होने वाला प्रत्येक संदेश, चाहे वह सूचना के रूप में हो या मनोरंजन के लिए, उसमें शिक्षा का तत्व किसी न किसी रूप में अवश्य होता है।

3) **मनोरंजन प्रदान करना (To Entertain)** – मीडिया का तीसरा महत्वपूर्ण कार्य मनोरंजन प्रदान करना है। वास्तव में मनोरंजन निष्क्रिय भाव नहीं है, अपितु वह रचना, अभिव्यक्ति और आस्वादन तीनों क्रियाओं में निहित होता है। प्रत्येक संचार माध्यम की अपनी संरचना होती है, जिसके द्वारा मनोरंजक कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं।

मीडिया एक सजग प्रहरी की भाँति पूर्वानुमान द्वारा खतरों से आगाह कराते हैं, उचित अनुचित कार्यों की पहचान कराते हैं एवं विचारों को सकारात्मक बनाने के लिए उचित मंच प्रदान करते हैं। साथ ही एक शिक्षक की भाँति विकास में सहायक होते हैं।

संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने सूचनाओं की पहुंच एवं तीव्रता को अतिविस्तारित कर दिया है और इसी अनुक्रम में मीडिया की भूमिका में भी बहुआयामी परिवर्तन हुए हैं। जनमत पर आधारित आधुनिक लोकतांत्रिक प्रणाली में मीडिया की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो गई है, जिसे लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ के रूप में जाना जाता है।

❐ मीडिया के प्रकार

आधुनिक संदर्भ में माध्यमों के अनुप्रयोग के आधार पर मीडिया को 3 भागों में बांटा जा सकता है –

- **प्रिंट मीडिया**

मुद्रण तकनीक पर आधारित सूचनाओं का सम्प्रेषण ही प्रिंट मीडिया के अन्तर्गत आता है।

माध्यम – मुद्रण तकनीक (लिपि आधारित), उदाहरण – समाचार पत्र, पत्रिकाएं, उपन्यास, पम्पलेट आदि।

- **इलेक्ट्रॉनिक मीडिया**

इलेक्ट्रॉनिक साधनों के माध्यम से जो जनसंचार होता है, उसे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया कहते हैं। इस संचार माध्यम में तीव्र प्रवाह एवं तीव्र नियंत्रण की क्षमता होती है, इसलिए इन्हें '**साइबरनेटिक्स माध्यम**' की संज्ञा भी दी जाती है।

माध्यम – संचार तकनीक (दृश्य एवं श्रव्य माध्यम के रूप में), उदाहरण – टी. वी., रेडियो, फिल्म, वीडियो, स्लाइडें, कम्प्यूटर आदि।

- **सोशल मीडिया**

सामाजिक मीडिया पारस्परिक संबंध के लिए अंतर्जाल या अन्य माध्यमों द्वारा निर्मित आभासी समूहों को संदर्भित करता है। दूसरे शब्दों में यह व्यक्तियों और समुदायों के साझा, सहभागी बनाने का माध्यम है। इसका उपयोग सामाजिक संबंध के अलावा उपयोगकर्ता सामग्री के संशोधन के लिए उच्च पारस्परिक प्लेटफार्म बनाने के लिए मोबाइल और वेब आधारित प्रौद्योगिकियों के प्रयोग के रूप में भी देखा जा सकता है।

माध्यम – इंटरनेट पर आधारित सूचनाओं का आदान-प्रदान (समय एवं स्थान की बाध्यता से परे : Without Time & Space Limitation), उदाहरणार्थ – इन्टरनेट फोरम, वेबलॉग, सामाजिक ब्लॉग, माइक्रोब्लागिंग, वाट्सअप, फेसबुक आदि।

❐ विभिन्न क्षेत्रों में मीडिया की भूमिका एवं समस्याएं

लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ के रूप में मीडिया की भूमिका एक सजग प्रहरी के रूप में है। यह लोकतांत्रिक व्यवस्था के आधारभूत स्तम्भों एवं जनता के बीच एक मध्यस्थ की भूमिका भी निभाता है। फलतः समाज एवं राष्ट्र निर्माण में इसकी भूमिका बहुआयामी प्रवृत्ति की हो जाती है। भारतीय संदर्भ में मीडिया ने लोकतांत्रिक संस्थाओं के मजबूतीकरण में अहम भूमिका का निर्वहन किया है। लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ के रूप में स्थापित मीडिया ने राजनीतिक जनजागृति बढ़ाने के साथ-साथ निचले ल्तर पर स्थापित स्वाशासी संस्थाओं को भी विकास में सहभागी बनाने का कार्य किया है।

चुनावों में बढ़ता मत प्रतिशत, पिछड़े एवं वंचित वर्गों की सहभागिता का बढ़ता स्तर लगातार लोकतांत्रिक संस्थाओं को मजबूत एवं परिपक्व कर रहा है, परन्तु वर्तमान समय में हावी बाजारवाद एवं व्यावसायिकता की प्रवृत्ति ने मीडिया को नकारात्मक रूपसे प्रभावित

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

भी किया है। 'पीत पत्रकारिता' के रूप में मीडिया उद्देश्यों से भटककर अनैतिक आचरण भी कर रहा है। 'पेड न्यूज' के रूप में वह जनता का नकारात्मक तरीके से प्रभावित करने की कोशिश करता है, तो कभी मीडिया ट्रायल के रूप में खुद को सर्वोच्च रूप से स्थापित करने का स्वयंभू प्रयास करता है। बाजारवाद एवं व्यावसायिकता की इस बढ़ती प्रवृत्ति ने सूचना एवं समाचारों को एक उत्पाद के रूप में स्थापित कर दिया है। व्यावसायिकता की इस बढ़ती प्रवृत्ति ने TRP (Television Rating Programme) के रूप में नई स्पर्धा को भी जन्म दिया है। मीडिया की साख को बचाए रखने के लिए इस प्रवृत्ति को रोकने की आवश्यकता है। इसके लिए नियामक तंत्र की मजबूत पहल के साथ-साथ मीडिया को स्वयं में भी सुधारों को जन्म देना पड़ेगा। ऐसा ही एक प्रयास इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के अन्तर्गत BEA (Broadcast Editors Association) की स्थापना के रूप में सामने आया है।

'विकास पत्रकारिता' के रूप में मीडिया की अहम भूमिका विकास कार्यों की समीक्षात्मक रिर्पोर्टिंग के साथ-साथ क्षेत्रीय असमानता को दूर करने के लिए विशेष रूप से समाचारों को रेखांकित करने की आवश्यकता है, ताकि विकास को गति प्रदान की जा रके। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र के विकास के दृष्टिगत रखते हुए मीडिया को विशेष प्रयास करने चाहिए।

सामाजिक जनजागृति हेतु मीडिया ने उल्लेखनीय कार्य किया है। चाहे महिला सशक्तिकरण का मुद्दा हो या महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों के बढ़ते ग्राफ का मीडिया सदैव मुखर होकर सामने आया है। उदाहरणार्थ - निर्भया केस आदि। इसके अलाव बाल समास्याओं दिव्यांगो की समस्याओं एवं वर्तमान में ट्रांसजेंडरों की समस्याओं को भी मीडिया ने प्रभावी रूप से रेखांकित किया है, लेकिन अभी इस दिशा में और प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।

सामाजिक के साथ-साथ सांस्कृतिक मूल्यों का प्रचार-प्रसार करना भी मीडिया की महती भूमिका में शामिल है, लेकिन व्यावसायिक होड़ में मीडिया को इस दिशा में गंभीर प्रयास करने होंगे, ताकि पश्चिमीकरण के अंधानुकरण को रोका जा सके तथा सामाजिक विघटन की बढ़ती प्रवृत्ति पर भी अंकुश लगाया जा सके।

इसके साथ-साथ मीडिया को वैश्विक सूचना तंत्र के साथ भी सामंजस्य स्थापित करना होगा, ताकि विदेशनीति के हर पहलू से सरकार एवं जनता को सूचित करने के साथ-साथ इंडियन डायस्पोरा (NRI + PIO) के हितों का भी संरक्षण एवं संवर्द्धन किया जा सके एवं उन्हें राष्ट्रीय विकास के साथ हितबद्ध किया जा सके।

❐ निवारक उपाय

1) संविधान एवं कानूनों के अनुरूप व्यवहार।
2) मूल्यपरक पत्रकारिता का विकास।
3) नियामक संस्थाओं की मजबूती।
4) जनता की मनोवृत्ति में परिर्वतन।
5) स्वयं नियामक की भूमिका।
6) जनता के साथ प्रत्यक्ष संवाद।

महत्वपूर्ण टिप्पणियां

❐ प्रसार भारती निगम

प्रसार भारती, देश का लोक सेवा प्रसारक है, जिसके 2 घटक आकाशवाणी और दूरदर्शन है। 23 नवम्बर, 1997 को प्रसार भारती का गठन किया गया, जिसका मुख्यालय दिल्ली में है। इसके वर्तमान अध्यक्ष डॉ. ए. सूर्य प्रकाश तथा मुख्य कार्यकारी अधिकारी जवाहर सिरकार हैं। प्रसार भारती का मुख्य उद्देश्य रेडियो और दूरदर्शन पर संतुलित प्रसारण का विकास सुनिश्चित करके लोगों को सूचित, शिक्षित और उनका मनोरंजन करना है। प्रसार भारती की वेबसाइट www.prasarbharati.fov.in है।

◆ उद्देश्य

प्रसार भारती अधिनियम, 1990 के अन्तर्गत प्रसार भारती निगम के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

1) देश की एकता, अखण्डता और देश के संविधान द्वारा स्थापित मूल्यों को बनाए रखना।
2) राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देना।
3) लोक हित के सभी मामलों की सूचना पाने के नागरिकों के अधिकार की रक्षा और निष्पक्ष और संतुलित सूचना प्रदान करना।
4) शिक्षा और साक्षरता के प्रसार, कृषि, ग्रामीण विकास, पर्यावरण, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, विज्ञान एवं तकनीक जैसे क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देना।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

5) महिलाओं से जुड़े मुद्दों के बारे में जागरूका फैलाना और बच्चों, वृद्धों और समाज के अन्य कमजोर वर्गों के हितों की रक्षा के लिए विशेष कदम उठाना।

6) विभिन्न संस्कृतियों, खेलों और युवा मामलों पर पूरा ध्यान देना।

7) सामाजिक न्याय को बढ़ावा देना और कामगारों एवं अल्पसंख्यकों तथा आदिवासी समुदायों के अधिकारों की रक्षा करना।

8) प्रसारण तकनीक का विकास, इसकी सुविधाओं का विस्तार और शोध को बढ़ावा देना।

- **प्रसार भारतीय बोर्ड**

प्रसार भारती निगम, प्रसार भारती बोर्ड द्वारा संचालित किया जाता है, जिसमें एक अध्यक्ष, एक कार्यकारी सदस्य (मुख्य कार्यकारी अधिकारी), सदस्य (वित्त), सदस्य (कार्मिक), 6 अंशकालिक सदस्य, सूचना और प्रसारण मंत्रालय का एक प्रतिनिधि और आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के महानिदेशक पदेन सदस्यों के रूप में होते हैं। बोर्ड अध्यक्ष एक अंशकालिक सदस्य होता है, जिसका कार्यकाल 3 वर्ष और सेवानिवृत्ति की आयु 70 वर्ष होती है। कार्यकारी सदस्य पूर्णकालिक सदस्य होता है, जिसका कार्यकाल 5 वर्ष और सेवानिवृत्ति की आयु 65 वर्ष होती है। सदस्य (वित्त) एवं सदस्य (कार्मिक) भी पूर्णकालिक सदस्य होते हैं, जिनका कार्यकाल 6 वर्ष और सेवानिवृत्ति की आयु 62 वर्ष होती है। प्रसार भारती बोर्ड की बैठक समय-समय पर होती है, जिसमें महत्वपूर्ण नीतिगत मामलों पर विचार-विमर्श होता है तथा कार्यकारी को नीतिगत दिशा-निर्देशों का पालन करने के निर्देश दिए जाते हैं।

❐ दूरदर्शन

दूरदर्शन (अंग्रेजी - Doordarshan) भारत का सरकारी दूरदर्शन प्रसारण (चैनल) है। यह भारत सरकार द्वारा नामित परिषद् प्रसार भारती के अन्तर्गत चलाया जाता है। दूरदर्शन के प्रसारण की शुरुआत भारत में दिल्ली से 15 सितम्बर, 1959 को शैक्षिक एवं विकास पर आधारित कार्यक्रमों के साथ प्रायोगिक तौर पर हुई। नियमित दैनिक प्रसारण की शुरुआत 1965 में ऑल इंडिया रेडियो के एक अंग के रूप में हुई थी। 1972 में सेवा मुम्बई (तत्कालीन बंबई) व अमृतसर तक विस्तारित की गई। 1975 तक यह सुविधा 7 शहरों मे शुरू हो गई थी। राष्ट्रीय प्रसारण 1982, जिस वर्ष रंगीन दूरदर्शन का जनता से परिचय हुआ था, शुरू हुआ था।

❐ आकाशवाणी

ऑल इंडिया रेडियो भारत की सरकारी रेडियो सेवा है। भारत में रेडियो प्रसारण की शुरुआत 1920 के दशक में हुई। पहला कार्यक्रम 1923 में मुंबई के रेडियो क्लब द्वारा प्रसारित किया गया। इसके बाद 1927 में मुंबई और कोलकाता में निजी स्वामित्व वाले 2 ट्रांसमीटरों से प्रसारण सेवा की स्थापना हुई। 1930 में सरकार ने इन ट्रांसमीटरों को अपने नियंत्रण में ले लिया और भारतीय प्रसारण सेवा के नाम से उन्हें परिचालित करना आरंभ कर दिया। 1936 में इसका नाम बदलकर ऑल इंडिया रेडियो कर दिया और 1957 में आकाशवाणी के नाम से पुकारा जाने लगा।

❐ प्रेस परिषद्

भारतीय प्रेस परिषद् का गठन प्रेस आयोग की सिफारिशों के आधार पर 1966 में किया गया। प्रेस की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने तथा भारत में प्रेस के स्तर को बरकरार रखने व उसे सुधारने के दोहरे कार्यों की पूर्ति के लिए यह परिषद् बहुआयामी भूमिका निभाती है। जहां एक ओर यह दीवानी न्यायालय के अधिकारों के साथ अर्द्धन्यायिक प्राधिकरण की तरह कार्य करती है, दूसरी तरफ सलाहकार की भूमिका में यह प्रेस की स्वतंत्रता और उसके संरक्षण के लिए प्रेस और साथ ही साथ अधिकारियों का मार्गदर्शन भी करती है। वर्तमान में इसके अध्यक्ष माननीय न्यायमूर्ति श्री चंद्रमौली कुमार प्रसाद हैं।

❐ समाचार समितियां

- **प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया (पीटीआई)**

प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया भारत की सबसे बड़ी बिना मुनाफे वाली सहकारी संस्था है, जो देश के अखबारों द्वारा संचालित की जाती है और अपने सभी ग्राहकों को संतुलित और निष्पक्ष खबरें देती है। पीटीआई की स्थापना अगस्त, 1947 में हुई, लेकिन इसने काम करना 1 फरवरी, 1949 से शुरू किया। '**भाषा**' पीटीआई की हिन्दी समाचार सेवा है।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS

Success Pana Chahte Hai . Com

- **यूनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया (यूएनआई)**

यूनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया का गठन कम्पनी अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत 19 दिसम्बर, 1956 में हुआ, किन्तु इसने 21 मार्च, 1961 से काम करना प्रारंभ किया। यूएनआई ने 1982 में पूर्ण रूप से हिन्दी सेवा 'यूनीवार्ता' की शुरुआत की।

❐ विज्ञापन एवं दृश्य प्रचार निदेशालय (Directorate of Advertising and Visual Publicity - DAVP)

विज्ञापन और दृश्य प्रचार निदेशालय (DAVP) भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों और विभागों के लिए बहु-माध्यम विज्ञापन तथा प्रचार का कार्यभार उठाने वाली एकमात्र नोडल एजेंसी है। कुछ स्वायत्त संस्थाएं भी अपने विज्ञापन DAVP के माध्यम से देती हैं। सर्विस एजेंसी के रूप में, यह केंद्र सरकार के विभिन्न मंत्रालयों की ओर से जमीनी स्तर पर सम्प्रेषण करने का प्रयास करता है। इसके प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं -

1) केन्द्र सरकार के लिए बहु-माध्यम विज्ञापन एजेंसी का कार्य करना।

2) केन्द्र सरकार के मंत्रालयों/विभागों की प्रचार संबंधी आवश्यकताओं, जैसे - मीडिया इनपुट का उत्पादन तथा संदेश/सूचना के प्रचार को पूरा करने के लिए सर्विस एजेंसी के रूप में कार्य करना।

3) केन्द्र सरकार के विभागों को सम्प्रेषण कार्यनीति/मीडिया प्लान तैयार करने में सहायता करना तथा इन्हें मल्टी-मीडिया समर्थन प्रदान करके जमीनी स्तर पर कार्यान्वित करने में सहायता करना।

- **सम्प्रेषण के लिए प्रयोग किए जाने वाले माध्यम**

1) विज्ञापन - प्रेस विज्ञापनों को जारी करना।

2) प्रदर्शनियां - प्रदर्शनियां लगाना।

3) बाह्य प्रचार - होर्डिंग, क्योस्क, बस पैनल, भित्ति-चित्र, सिनेमा स्लाइड, बैनर आदि को प्रदर्शित करना।

4) मुद्रित प्रचार - बुकलेट, फोल्डर, पोस्टर, लीफलेट, कैलेंडर, डायरी आदि।

5) श्रव्य दृश्य प्रचार - स्पॉट्स/क्वीकीस, जिंगल्स, प्रायोजित कार्यक्रम, लघु फिल्में आदि।

6) प्रचार सामग्री का प्रेषण - प्रचार सामग्री का वितरण।

❐ माध्यम

मध्य प्रदेश माध्यम 1983 में स्थापित किया गया था और तब से मल्टी मीडिया के संचार के क्षेत्र में अपनी सेवाएं प्रदान कर रहा है। माध्यम एक मंच है, जिस पर मध्य प्रदेश और इसके विभिन्न विभागों और एजेंसियों तथा सरकार की संचार जरूरतों को व्यावसायिकता और रचनात्मकता की स्वतंत्रता के साथ उच्च मानकता स्थापित करते हुए पूरा किया जा रहा है। रोजगार और निर्माण का प्रकाशन माध्यम के द्वारा ही किया जाता है।

❐ पीत पत्रकारिता (Yellow Journalism)

सामान्य रूप से पीत पत्रकारिता शब्द उस पत्रकारिता के लिए प्रयोग में आता है, जिसमें विशेष रूप से सनसनीखेज, उत्तेजक, अपुष्ट, अल्पपुष्ट, अश्लील, चटपटे समाचारों को प्रमुखता दी जाती है। पीत पत्रकारिता का प्रारंभ 1833 में हुआ, जब जोसेफ पुलित्जर ने न्यूयार्क वर्ल्ड को खरीद लिया और कुछ ही दिनों बाद उसका न्यूयार्क वर्ल्ड के स्वामी हर्स्ट के साथ वाद-विवाद हो गया। उक्त विवाद के कारण अमेरिका में सनसनीखेज तथा उत्तेजनात्मक पत्रकारिता का प्रारंभ हुआ। इसे पत्रकारिता के इतहास में पीत पत्रकारिता कहकर संबोधित किया जाता है। उस दिनों पुलित्जर और हर्स्ट अपने-अपने समाचार पत्रों में व्यंग्य-चित्र पट्टी पीली स्याही में छापा करते थे। कदाचित् इस स्याही को ध्यान में रखकर ही सनसनीखेज पत्रकारिता का नाम पीली पत्रकारिता पड़ा।

like Success Pana Chahte Hai . Com Education page on Facebook and youTube FOR HPSSC, HPPSC,HPU,HPBOSE,HPU DAILY UPDATE & PREVIOUS PAPAER & CURRENT AFFAIRS